* ओ३म् *

त्योहारपद्धति ।

लेखक—हरिशङ्कर दीक्षित

विषय सूची।

नाम	पृष्ठांक
नामकरण पर विचार	२
मंगलदिवसों का आविष्कार	५
मंगल दिवसों का श्रोत	१०
मंगल दिवसों का नाम उत्सव संस्कार भी है	१०
मंगल दिवसों की पूर्व दशा वर्त्तमान स्वरूप	१२
मंगल दिवस भारत के सब प्रान्तों में एकरूप से होने का कारण	१४
मंगलदिवसों पर अपना विचार किस प्रकार होगा	१६
वर्षारम्भ कब से करना चाहिये	२१
एक दृष्टि इधर भी	२४
फुटकर विषयों पर दृष्टिपात की आवश्यकता	३०
आदित्यवार और आमावस्या पर विचार	३५
पौर्णिमा पर विचार	३७
संक्रान्ति	३७
विशेषवक्तव्य और नवरात्र विचार	३६
दुर्गा अष्टमी	४५
रामनवमी	४७
हनुमज्जयन्ति	४८

मेषी संक्रान्ति	५०
सक्तू तृतीया	५५
नृसिंह चतुर्दशी	५७
वर्षागमन अनरनाम वटसावित्री	६१
दशहरा	६६
देवशयनी	६८
व्यास पूर्णिमा	७८
नागपञ्चमी	८६
श्रावणी	१०६
जन्माष्टमी	१२०
कुशोत्पाटनी	१२४
गणेश चतुर्थी	१२६
वामनद्वादशी	१३१
अनन्त चतुर्दशी	१३१
पितृपक्ष	१३१
द्वितीय नवरात्र	१३३
गोवर्धन	१३२
शरद्पौर्णिमा	१४४
आकाश दीपक	१४७
दीपावली	१४८
द्वितीय गोवर्द्धन	१६२

अन्नकूट	१६३
यमद्वितीया	१६७
देव प्रवोधनी	१६८
गंगास्नान	१७३
वसन्त पञ्चमी	१७५
शिवरात्रि	१७८
रंग की एकादशी	१८०
होली विचार	१८०
परिशिष्ट	१६५
शीतला	१६६
निर्जला एकादशी	२११
काजरी तीज	२१२
वहुला चतुर्थी	२१८
चन्दन षष्ठी	२१८
वृद्ध बाबाकी द्वितीया	२१६
हरितालिका	२२०
सूर्य्य षष्ठी	२२१
द्दर्वाष्टमी	२२२
गूगानवमी	२२३
गर्ज बीबी का रोट	२२४
सेरन्ध्री	२२६

करवा चतुर्थी	२२६
ईई विचार	२३०
गोपाष्टमी	२३२
सकट	२३७
मौनी अमावस	२३६
मकर की संक्रान्ति	२४०
पुष्प हरा द्वितीया	२४०
पाठकगण की सेवा में निवेदन	२४२
लेखमें आये सांकेतिक शब्द पर विचार	२४५
पूजन प्रकार	२४६
पाठकगण के प्रति निवेदन	२४७
ग्रन्थ बनने का कारण	२४७
पाठकों के प्रति विशेष सूचना	२४६

* ओ३म् *

अथ मङ्गलदिवमार्णव

उपनाम—

त्योहार पद्धति.

जिसको श्री पं० रामयश जी दीक्षित के पुत्र हरि-
शङ्कर दीक्षित ने श्रीमान् [illegible] देवी की पुत्री
रामरखी देवी अपनी [illegible] के अव-
लोकनार्थ निर्मित किया।

नेमिचन्द जैन के प्रबन्ध से
शर्मा मैशनि "प्रिंटिंग प्रेस"
मुरादाबाद में छपा।

सम्वत् १९८० भाद्रपद कृष्णा ३० चंद्रवार
१० सितम्बर सन् १९२३ ई०

प्रथमवार १०००　　　　मूल्य १)

धन्यवाद ।

लेखक उस बहुमूल्य आर्थिक सहायता के लिए जो श्रीमान् रायसाहब साहू विश्वेश्वरनाथ जी रईस नगीना जिला बिजनौर ने इस पुस्तक के प्रकाशन में प्रदान की है, उक्त महोदय को अनेकशः धन्यवाद देता है और सर्वात्मा सच्चिदानन्द से उन के अभ्युदय और चिरायु की प्रार्थना करता है ॥

हरिशंकर दीक्षित

ओ३म् तत्सत् ब्रह्मणे नमः

प्रथम नामकरण पर विचार।

इस ग्रन्थ का नाम पहिले त्योहार पद्धति रखने का कारण यह था कि संयुक्त प्रान्तको आर्य्यप्रतिनिधि सभा के प्रधान श्रीठाकुर हुक्मसिहजी महाशय ने आर्य्यमित्र साप्ताहिक पत्र में विज्ञापन के साथ यह मुद्रण कराया था कि आर्य्यसमाजों के लिये एक त्योहार पद्धति की आवश्यकता है विज्ञापन के ही नामपर त्यौहार पद्धति नाम रखने का विचार कियागया था। परन्तु कई एक महानुभावों ने त्यौहार इस अशुद्ध नाम के साथ पद्धति शुद्ध शब्द का युक्त करना अनुचित बताया। श्री पं० भीमसेन जी महाराज (जो सम्प्रति ज्वालापुर महाविद्यालय में संस्कृताध्यापक हैं) की यह सम्मति हुई कि प्रसिद्ध नाम छोड़कर अन्य नाम रखने से ग्रन्थ अरुचि कारक होकर जनतामें कुतूहल उत्पन्न करने वाला नहीं होता। त्यौहार शब्द भाषाका अपभ्रंश अवश्य है पर संस्कृत से आविष्कृत होने से खोज करने पर शुद्ध होना सम्भवहै। ऐसे अनेक शब्दहैं जिनकी जननी संस्कृत भाषा है पर लोक में निम्न जातियों के स्त्री पुरुष अपभ्रंश बोलते हैं शास्त्रों में जिनकी शाकपत्र संज्ञा है ग्राम की भाषा में उसे तीवन कहते हैं। चर्मकार जाति के स्त्री पुरुष वस्त्र को चाली बोलते हैं उक्त दोनों शब्द संस्कृत के बिगड़े हुए प्रतीत होते हैं तीवन तृणवत् का और चैल का अपभ्रंश चाली है। एवं यह त्यौहार शब्द भी किसी संस्कृत शब्दही का अपभ्रंश प्रतीत होता है, इसको ही शुद्ध रूप में लाने के अर्थ विचार की आवश्यकता है। यह कहकर आपने कुछ काल विचार कर कहा कि संस्कृत के तापहार शब्द का

अपभ्रंश यह त्यौहार शब्द है। तापहार शब्द की व्युत्पत्ति भी यही सिद्ध करती है कि "तापान् हरतीति तापहारः" जो मानसिक क्लेशों का हरण करे। अतएव त्यौहार शब्द के स्थान में तापहार शब्द प्रयुक्त करना सार्थक होगा। इस के पश्चात् नामकरण के विषय में लाला भवानीप्रसादजी गुप्त महाशय से चर्चा हुई (आपका निवास स्थान हलदौर जिला बिजनौर है संस्कृत तथा भाषा के प्रौढ़ पण्डित हैं) आपने कहा कि श्री पं० जी महाराज का कथन तो ठीक है पर नूतन आविष्कार है। अतएव मेरी सम्मति से नाम पर्वपद्धति रहे तो अच्छा है। इसके पश्चात् एक महाशय की सम्मति यह हुई कि यदि त्यौहार शब्द के साथ पद्धति शब्द प्रयुक्त करने में अयुक्तता प्रतीत होती है तब इसके साथ मीमांसा या आदर्श तथा दर्पण शब्द प्रयुक्त करदेना चाहिये। इस प्रकार विविध विचारोंसे अब यही निश्चय करलिया कि इससमय नामकरणका झंझट छोड़ा जाय। जन्म से पूर्व नामकरण हो भी नहीं सकता नाम गुणों के द्वारा रक्खा हुआ सार्थक होता है। प्रथम जन्म तो हो फिर जैसा उचित होगा वैसा ही करना योग्य होगा।

अपना विचार इस विषय में यह है कि नाम वही होना योग्य है जिसको जनता उत्साह से ग्रहण करें। गुप्त नाम चाहे कितना ही सुन्दर हो पर जनता में कुतूहल उत्पन्न करने वालाहो इस में सन्देह होता है। वेदों का वेद यह नाम जनता में प्रसिद्ध है इसी नामसे जनता वेदों का आदर करती है। वेद के छंद आम्नाय श्रुति आदि नाम भी हैं परन्तु विद्वानों को छोड़ कर साधारण जनता वेद इस प्रसिद्ध नाम पर मुग्ध होती है इत्यादि कारणों से प्रसिद्ध नाम ही रहे तो अच्छा है। अब हम इस नामकरण के विषय को छोड़ अपने

लेखमें मंगलदिवस के नाम से उल्लेख करेंगे। पाठक! 'मंगल' दिनहो के संकेत से त्यौहार का दिन समझें!

इन मंगल दिवसों का आविष्कार किस कारण हुआ और किसने किया।

मंगल दिवसों के आविष्कार का कारण जनता अभिलषित सुख है मानवात्माओं के अतिरिक्त अन्य प्राणी भी सुख हीको वाञ्छा करते हैं। अन्य जन्तुओं को स्वभाववद्ध करके उनके सुखादि का भार प्रभु ने अपने आधीन रक्खा है। मानवात्माओं को ज्ञान विशेष देकर कुछ कार्य्य इनके आधीन भी कर दिये हैं उन्हीं के करने का उपदेश भी वेद द्वारा दिया है। विद्वद्वरों का यह निश्चय निश्चित रूप से है कि मानवात्मा संसार में भोगों के अर्थ नहीं आया इसका मुख्य उद्देश है धर्मार्थ काम मोक्ष की प्राप्ति, इस वर्ग चतुष्टय का मूल है

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।
रोगास्तस्यापहर्त्तारः श्रेयसो जीवितस्यच॥

नीरोगता, रोग उसके हन्ता और जीव के कल्याणके नाशक हैं। इत्यादि कारणों से ऋषिवरों ने मानवात्माओं के सुखार्थ और वर्गचतुष्टय की प्राप्ति के लिये मंगल दिवसों का आविष्कार किया॥

इन मंगल दिवसों का प्रकाश प्रभु की वेद वाणी का सम्यक् अवगाहन करने के बहुत पश्चात् हुआ है। पूर्व इस ब्रह्माण्ड की रचना का पूर्णतया विचार और उसके साथ जनता का सम्बन्ध क्या है और किस प्रकार है इस विषय पर ऋषिवरों के बहुत विचार हुए जिनका परिणाम यह निकला कि यह

प्रपञ्च पांच तत्वों ही का विकार है उक्त पांच तत्व जिन के द्वारा यह समस्त रचना हुई है सत्व, रज, तम इन तीन गुणों वाली प्रकृति से उत्पन्न हुए हैं। यद्यपि तत्वों की संख्या पांच है परन्तु इन पांचों में उक्त तीन गुण ओतप्रोत हैं। आयुर्वेद विद् आचार्य्यों ने सुगमतया बोध के अर्थ पाचों तत्वों के जो सत्व रज तम तीन गुणों से युक्त हैं दोही वीज माने हैं। एक शीत और द्वितीय उष्ण। इस विषय के साक्ष्य के अर्थ दो ऋषिवर और जगत् की रचना विद्यमान हैं। ऋषियों में आयुर्वेदाचार्य्य श्री धन्वन्तरि जी महाराज स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि :—

लोकोहि द्विविधः स्थावरो जंगमश्च।
द्विविधात्मक एवाग्नेयः सौम्यश्च ॥

यह जंगम और स्थावर सृष्टि दोही प्रकार की दृष्टिगोचर होती है। एक आग्नेय और द्वितीय सौम्य इसी विषय को प्रश्नोपनिषद् के रचयिता पिप्पलाद ऋषि भी पुष्ट करते हैं। पिप्पलाद ऋषिका मत है कि यह समस्त रचना "रयिंच प्राणश्च" रयि और प्राण से उत्पन्न होती है। इन महाशय के कथन में प्राण शब्द से सूर्य का ग्रहण है। और रयि से चन्द्रमा का। तात्पर्य्य दोनों का शीत और उष्ण इन्हीं दोनों वीर्य्यों से है। उक्त दोनों ऋषियों के वाक्यों तथा मन्तव्यों की पुष्टता प्रभु की रचना करती है। वर्ष के दोनों अयन एक उत्तरायण और द्वितीय दक्षिणायन। उत्तरायण सूर्य्य भगवान् की प्रखर किरणों वाला उष्ण और दक्षिणायन चन्द्र शक्ति प्रधान होने से शीत है। एवं दिन और रात्रि दिन उष्ण रात्रि शीत मास, मास का कृष्ण पक्ष उष्ण शुक्ल शीत

यदि और गम्भीर विचार से देखा जाय तो दिशाओं की रचना भी इस विषय की पुष्टि के अर्थ विद्यमान है। पूर्व दिशा का स्वामी अग्नि उस के समक्ष में पश्चिम दिशा का स्वामी जल दक्षिण दिशा का स्वामी इन्द्र उष्ण स्वभाव वायु उत्तर दिक का स्वामी सोम जहां तक इस ब्रह्मांडका स्वभाव निश्चय करने का प्रयत्न कराजायगा यही दोनों उष्ण और शीत वीर्य्य हस्तगत होंगे। इस अकाट्य मन्तव्य को निश्चय करने के पश्चात् इस विषय पर विचार करने की आवश्यकता प्रतीत हुई कि इन दोनों शीतोष्ण कारणों की कौन दशा ब्रह्माण्ड की स्थिति का कारण है। इस विचार से ऋषिगण को यह विदित हुआ कि उक्त दोनों कारणों की समता जंगम तथा स्थावर रचना की स्थिति का कारण है। न्यूनाधिकता विकृति उत्पन्न करती है। अतएव अपनी रक्षार्थ सदैव शीतोष्ण दोनों वीर्य्यों की समता का ध्यान रखना श्रेय है। इस समस्त बृहत् ब्रह्माण्ड की रचना के समान ही इस पाञ्चभौतिक शरीर की रचना है। यह बृहत् ब्रह्माण्ड सूर्य्य सहित अनेक तारागण युक्त पांच तत्वों से परिपूर्ण है जैसे इस ब्रह्माण्ड में आकाश वायु अग्नि जल और पृथिवी कार्य्य कर्त्ता हैं इसी प्रकार इस मनुष्य शरीर में उक्त पांच तत्व कार्य्य करते हैं। ऐसा ही निश्चय आयुर्वेदविदों ने किया है। शरीर में अग्नि का नाम पित्त और जल का श्लेष्मा वायु प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता ही है। शरीर में उक्त तीनों का यथाप्रमाण रहना ही नीरोगता है। पार्थिव शरीरों की उत्पत्ति स्थिति तथा विनाश इन्हीं पांच तत्वों के आधीन है। इस हमारी निवासस्थानीय पृथ्वी का खगोल से अटूट संबंध है। यह पूर्व कह आये कि इस स्थावर तथा जंगम रचना में धर्मार्थकाममोक्ष का

अधिकारी यह मनुष्य देह वाला जीव है। धर्म्मार्थकाम मोक्षमें चार शब्दों का समावेश है एक धर्म दूसरा अर्थ तीसरा काम चौथा मोक्ष इन चारों शब्दों में अर्थ और काम का संबंध शारीरिक सुखों की प्राप्ति से है। धर्म्म और मोक्ष आत्मा की सुदशा के अर्थ हैं (भोगायतनं शरीरम्) यह शरीर भोगों का स्थान माना गया है। शारीरिक भोगों की प्राप्ति नीरोग शरीर ही द्वारा होती है। नीरोगता केवल शारीरिक भोगों का ही कारण नहीं आत्मा के धर्म मोक्ष का भी कारण है। उक्त वर्ग चतुष्य में भोगों को केवल शरीर की सम्यक् स्थितिका ही कारण मानकर मुख्यता धर्म्म एवं मोक्षकी ही मानी गई है। ऋषियों ने शरीर तथा शरीराभिमानी जीव के अर्थ इस प्रकार के कार्य्य निश्चित किये हैं आगे चलकर पाठक यह देखेंगे कि ऋषिकृत मंगल दिवसों के मूल में हमारे कौनसे अभिलषित सुखका बीज वपन नहीं किया गया। तीन ही भागोंमें मानवात्माओं के सब सुख विभक्त हैं। एक शारीरिक द्वितीय आत्मिक तृतीय सामाजिक इन तीनों की सुदशा का ध्यान पूर्णतया इन मंगल कार्य्यों में पाया जाता है। अतएव जनता परम श्रद्धा से इन कार्य्यों को करकेही उन सुखोंको प्राप्त कर सकती है जो ऋषिगणने वेदोपदेश के तथा रचना के अन्वेषणके पश्चात् इन मंगल दिनों के मूलमें स्थापन किये हैं। कार्यकर्त्ताओं के उद्देशानुकूल कार्य्य करना फलदायक होता है ये मंगल दिन मानवात्माओं के कल्याणार्थ ऋषिगण की कल्पना है इनको प्रमाद वा आलस्य से न करना अपने कल्याण मार्ग में कंटक वपनकर स्वयं दुःख भोगना है, ऋषिवरों की इसमें कुछ हानि नहीं ॥

मंगल दिवस अपने मंगल स्वरूप के स्वयं साक्षी हैं

क्या यह पाठक गण से अप्रकट है कि यह मंगल दिवस जिस दिन मनाया जाता है जनता में क्या प्रभाव उत्पन्न होता है नर हो वा नारी वृद्ध हो या तरुण बालक हो या बालिका धनाढ्य हो वा दरिद्र स्वस्थहो वा रोगी आजके दिन सब का मन आमोद प्रमोद से परिपूर्ण और मुख पर प्रसन्नता दृष्टिगोचर हो अन्यों की प्रसन्नता का कारण होती है। स्थान अपनी स्वच्छताले निराले ही ढंग के दृष्टि आते हैं। जैसे सूर्य अपनी कंचुली से मुक्त होकर एक निराली चमक को धारण करता है इसी प्रकार मंगल दिवस के प्रभाव से नरनारी बाल बालिका वृद्ध युवा सुखी दुःखी शरीर की स्वच्छता तथा वस्त्रों की उज्वलता से निराले ही दृष्टिगोचर होते हैं। बाल बालिकाओं के आभूषण किस के मन को आकर्षित नहीं करते इत्यादि कारणों से यह मंगल दिवस मुदिता का उत्पादक मोक्ष के साधनों में से भी एक साधन माना वा कहा जाय तो अनुचित नहीं। कारण यह है कि पुराण आचार्यों ने मुदिता को अन्तःकरण की शुद्धि का कारण विशेष माना है। वह मुदिता आज सब के मनों में व्याप्त है अतएव मंगल दिन केवल मंगल रूप ही नहीं, मानवात्मा के एक मुख्योद्देश का साधन भी है। अतएव यह मंगल दिवस जनता के उपयोगी कार्यों में से एक उपयोगी कार्य्य है। उपयोगी कार्य से वंचित रहना मनुष्यत्व से बाह्य है। केवल आकृति मात्र से अपने को मनुष्य मानना मनुष्यता नहीं गुणों से अपने को मनुष्य मानना चाहिये। मनुष्य में मनुष्यता स्थापन करना मंगल दिवसों ही का कार्य्य है।

मंगलदिनों के स्रोत गृह्यसूत्र हैं ।

ऋषिवरों ने वेद तथा प्रभु की रचना का सम्यक् अवगाहन करने के पश्चात् अपने विचारों को उक्त सूत्र ग्रन्थों में जनता के सुखार्थ एकत्रितकर दिया है । सूत्र ग्रन्थ दो प्रकार के हैं एक श्रौत और द्वितीय गृह्य, श्रौत सूत्रों में वेद से संबंध रखने वाले अश्वमेधादि यज्ञों का विधान है, और जिनमें गृहस्थियों के, नित्य नैमित्तिक कार्य्यों का वर्णन है, उन का नाम गृह्य है, गृहस्थियों से संबंध रखने से ही इनका नाम गृह्यसूत्र पड़ा है एक प्रामाणिक के ग्रन्थ में मंगल दिवसों के करने की आज्ञा है इसलिये भी द्विजातियों को श्रद्धा पूर्वक कर्त्तव्य ही हैं ॥

मंगल दिवसों को उपसंस्कार भी कहा जा सकता है ।

आयुर्वेद विद् ही सृष्टिरचनामें मुख्य माने जाते रहे हैं । जिन को पूर्व से ऋषिगण शब्दसे कहते चले आरहेहैं ये सबआयुर्वेद विद्‌हीथे । बिना आयुर्वेद ज्ञानके एक परमाणुभी दूसरे परमाणुसे नहीं मिलाया जा सकता । अनेक रूपों वाली रचना प्रभु के आयुर्वेदीय ज्ञान के द्वारा ही रची गई है । आयुर्वेदविदों के ही द्वारा रचना की रक्षा नित्य होती है, यह प्रत्यक्ष ही है । यद्यपि राजा एक व्यक्ति प्रजा की रक्षा के अर्थ आवश्यक है तथापि आयुर्वेदविदों की सहायता के बिना राजा प्रजा की रक्षा करने में असमर्थ है, राजा का कार्य्य है प्रजा को धर्म्म में चलाना दुष्ट स्वभाव वाले बलवानों से सेना द्वारा निर्बलों की रक्षा करना । धर्म्म के अर्थ स्वस्थता की आवश्यकता है

स्वस्थावस्था के बिना स्थावर तथा जंगम सृष्टि एक दूसरी का उपकार करने में असमर्थ है वह स्वस्थता पूर्णतया ईश्वर के और बहुत अंशों में आयुर्वेदविदों के आधीन है ईश्वर प्रथम कक्षामें रक्षक, उससे दूसरी कक्षामें जनता के रक्षक आयुर्वेदविदही हैं। जनता का आहार विहार आयुर्वेदविदों के ही द्वारा निश्चित हुआहै। आयुर्वेदविदों का विचारहै कि यह समस्त रचना संस्कारों के द्वारा ही निमार्ण हुई है आयुर्वेद विदों ने संस्कार के शुद्ध करने वाले संकुचित अर्थों को ग्रहण न कर संस्कार को चार अर्थों में विभक्त किया है पदार्थ को शुद्ध करना, पदार्थ में पदार्थ का समावेश करके द्वितीय आकृति में परिणत करना, हीन गुण को अद्वितीय गुण वाला कर देना, मृदुको कठोर और कठोर को मृदु करना, पदार्थों में जो कुछ गुण हैं सब संस्कार ही द्वारा प्राप्त होते हैं। यहां यह बात जाननी भी आवश्यक है कि जिस पदार्थ में जिस संस्कार द्वारा जिस गुण का आधान करा गया है यदि उसकी स्थिति का ध्यान समयानुकूल न रक्खा जाय तो आधान किये हुए का शनैः २ ह्रास होकर पदार्थ का स्वरूप में रहना कठिन है। उदाहरण के लिये बहुत पदार्थ हैं पर नित्य व्यवहार में आने वालों के उदाहरणों से पाठक सुगमता से जानेंगे। ऊख सरकंडे से बनाई गई है नारंगी नींबू से मूली का आविष्कार तरेसे हुआ है शलजम का निकास लाई से है। जिन संस्कारों द्वारा उक्त ऊख आदि की आकृति निर्माण करी गई है यदि उन आकृतियों तथा गुणों की स्थिति का ध्यान न रक्खा जाय तो प्रत्येक का अपने २ पूर्वरूप में परिणात होजाना सहज बात है। एवं मनुष्य शरीर में मनुष्यता के पोषक जो संस्कार जन्मतः ऋषिगण द्वारा उत्पन्न करे गये

हैं उनका समय २ पर पुष्ट करते रहना उन्हों ने अपना परम कर्त्तव्य जाना। पूर्व किये संस्कारों के अर्थ ही मंगल दिवसों के व्यापार देखे जाते हैं अतएव मंगल दिवसों को उपसंस्कार भी कह सकते हैं॥

मंगल दिनों की पूर्व दशा और वर्त्तमान स्वरूप

इन दोनों दशाओं को चित्र रूप से आगे रखकर यदि देखा जाय तो एक दूसरे का विपर्य्यय है। पुरा काल में मंगल दिवस धर्म का अंग माने जाते थे मनुष्य में मनुष्यता स्थापन करना इन का उद्देश था शारीरिक आत्मिक सामाजिक दशाओं का अपने२ स्वरूप में पुष्ट रूप से स्थित करना मंगल दिवसों के ही द्वारा माना जाता था। पुरा काल में जनता श्रद्धा और भक्ति से मंगल दिवसों को करती थी वर्त्तमान में मंगल दिवस क्रीड़ा मात्र पुरानी रेखा पीटी जाती है। मनुष्यता स्थापन करने के स्थान में पशुता स्थापन करना ही मुख्योद्देश है। पुराकाल में मंगल दिवसों के निमित्त से द्रव्य का सदुपयोग अभीष्ट था सम्प्रति द्रव्य का दुरुपयोग दृष्टिगोचर होता है। बहुत से मंगल कार्य्यों का तो सम्प्रति अभाव ही होगया। यदि इसी प्रकार जनता की श्रद्धाभक्ति का ह्रास होता चला गया तो जो क्रीड़ा रूप से दृष्टिगोचर होरहे हैं उनका भी नाम ही कर्णागत हुआ करेगा। यदि यहां यह प्रश्न हो कि इतने अंतर का कारण क्या है तो उत्तर यह होगा कि हमारा प्रमाद और अपने हिताहित का विचार न करना।

पाठक गण को यह विदित हो कि जनता में दो प्रकार की व्यक्तियां मिश्रित हैं। एक सामान्य और दूसरी विशेष इन में सामान्य व्यक्तियों का कार्य्य केवल व्यवहार मात्र है विशेष

व्यक्तियों का कार्य्य है सामान्य व्यक्तियों के व्यवहारार्थ कार्य्यों का निर्माण करना। साधारण व्यक्तियां असाधारण व्यक्तियों के निर्माण किये हुए व्यवहार मात्र की बुद्धि वाली होती हैं। यह भी हम से अप्रकट नहीं कि व्यवहार से कार्य्यमें विकृति होना सहज ही बात है। कार्य्य दोषदूषित होकर फलदायक नहीं रहता दोष का निकालना असाधारण व्यक्तियों का कार्य्य है असाधारण व्यक्तियों के इधर ध्यान न देने से जो दशा साधारणों के द्वारा होने की सम्भावना थी वही वर्त्त-मान में होरही है। किसी विद्वान् का कथन है कि विचार शीलों के द्वारा सकारण उत्पन्न कार्य्य मूर्खों के हस्तगत होकर क्रीड़ा में परिणत हो जाता है। अग्निक्रीड़ा के चिह्नों ने व्योमयान निर्माण के अर्थ गुब्बारा एक यन्त्र निर्माण किया था यह नहीं कहा जा सकता कि इसके निर्माता की बुद्धि ही ने आगे को काम न दिया वा वह निर्माता संसार से उठ गया यह क्यों अधूरा रह गया। सम्प्रति मूढ़ जनता के द्वारा यह क्रीड़ारूप हो रहा है साथही में सहस्रों नहीं लाखों करोड़ों का व्यय इस क्रीड़ा में हो जाता है यदि यह प्रश्न हो कि इसको विद्या क्यों कहा जाताहै यह तो प्रत्यक्ष ही मूर्खों का कार्य्य है। तब उत्तर इसका यह होगा कि यदि यह किसी विशेष बुद्धि के द्वारा किसी विशेष कार्य्य के अर्थ निर्माण न होता और केवल मूर्खों द्वारा निर्माण होकर क्रीड़ा मात्र ही होता तो जो फल आज हमें इसका दृष्टि गोचर होरहा है वह न होता। जो जिसमें होता है वही उससे प्राप्त होताहै। आज जिस अद्भुत व्योमयान को श्रवण करने के स्थान में दृष्टि से देख रहे हैं इसी यन्त्र का फल है। अन्तर कितना हुआ कि विद्वानों की विद्या जो मूर्खों में क्रीड़ा रूपसे

व्याप्त थी उसको एक बुद्धि का बल प्राप्त होगया। इसी प्रकार मंगल दिवस जो आविष्कर्त्ताओं के समय में कार्य्य रूपसे जनताके सुखस्त्रोत थे शोधकों के अभाव से साधारण जनता में क्रीड़ा रूप होगये। इसमें इतना हर्ष भी है कि क्रीड़ा रूपसे पकड़े रहने से आसाधारण व्यक्तियों के बुद्धि संयोगसे पुनरपि अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त करलें और साथही में लुप्तप्रायों के दर्शन का भी सौभाग्य प्राप्त हो। इनके निर्माताओं ने जनता का जो सुख इनके मूल में स्थापन किया था, प्राप्त होने लगे।

मंगल दिवस भारत के सब प्रान्तों में एक रूप से होने का कारण

वैदिकमतावलम्बी एक ही शासक की आज्ञा विदित होती है। बिना किसी ऐसी शक्ति के कि जो समस्त प्रजा पर एक सा ही अधिकार रखती हो सब जातियों तथा सब प्रान्तों में एक रूप से कार्य्यों का होना कठिन है। अल्प शक्तियों का कार्य्य अल्पदेशवर्ती होता है॥ राजाज्ञा का पालन राज्य भर में होता है। पाठक गण को यह भी स्मरण रखना योग्य है कि देश काल के परिवर्त्तन से शब्दों का ही परिवर्त्तन होता देखा जाता है कार्य्य का प्रकार ज्यों का त्यों बना रहता है जिस प्रकार वर्त्तमान में राज्य की सभा द्वारा कार्य्य होने की प्रथा है इसी प्रकार पूर्व भी व्यवहार था सम्प्रति जिस प्रकार राजसभा के द्वारा कार्य्यों का निश्चय अनेक तर्क वितर्कों के द्वारा होकर प्रजा में उस के कर्त्तव्याकर्त्तव्य की घोषणा होती है इसी प्रकार पुरा काल में भी राज्य सभा द्वारा प्रजा के हितार्थ कर्त्तव्याकर्त्तव्य कार्य्यों का विचार होकर ही घोषणा होती थी। केवल नामों का भेदमात्रहै। वर्त्तमान में इस घोषणा

का नाम क़ानून है। पुरा काल में धर्म्म था। जिस प्रकार वर्त्तमान राजसभा में पाश्चात्य विद्या के विद्वान् रहते हैं। इसी प्रकार वैदिक धर्म्मावलम्बी सम्राट् की राज्यसभा में वेदों के ज्ञाता होते थे। भेद केवल इतना है कि पुरा काल के वैदिक मतावलम्बी राजा प्रजा को अपनी सन्तान और अपने को उनका पिता समझ व्यवहार करते थे। वर्त्तमान में प्रजा राजा का भक्ष्य समझी जाती हैं। पुरा काल में राजा के प्राण प्रजा के अर्थ होते थे वर्त्तमान में प्रजा के प्राण राजा के अर्थ हैं। जितना परिवर्त्तन राज्य शक्ति में होगया है उतनीही कार्य्य प्रणाली भी बदली है किन्तु कार्य्य उसी प्रकार होते हैं। इस स्थान पर पाठकों के सुगमतया बोध के अर्थ एक छोटे से विषय को उदाहरण में रख यह दिखाते हैं कि वैदिक धर्म्मावलम्बी राज्य के समय में वेदज्ञाता ऋषि प्रजा के काल का किस प्रकार सदुपयोग करते थे। जिस प्रकार वर्त्तमान में शिक्षाविभाग के अधिकारी गण ने पाठशालाओं में अनध्यायों की आवश्यकता समझ कुछ अनध्याय रक्खे हैं। ये अनध्याय दो प्रकार के हैं एक नित्य और दूसरे नैमित्तिक, नैमित्तिक का पता उन के निमित्तों से चलता है। हमें तो नित्यों के विषय में विचार करना है। यवन राज्य के समय में शिक्षाविभाग के अधिकारियों ने डेढ़ दिन का अवकाश प्रति सप्ताह मनाने की आज्ञा दी थी आधा दिन बृहस्पति का और पूरा दिन शुक्र का कारण इस का यह विदित हुआ है कि यवनमतानुसार यह डेढ़ दिन पीरों तथा पैगंबरोंका माना गया है। पाश्चात्य विद्वानों ने अपने कार्य्यों तथा शिक्षालयों के अवकाशका दिन आदित्य-निश्चित किया है। इस दिन का जितना प्रभाव भारत के विद्यालयों पर पड़ा है उतना यवन राज्य के माने अवकाश का

नहीं पड़ा था। इस दिन के अवकाश का कारण यह बतलाया जाता है कि सृष्टि रचकर परमात्मा ने इस दिन विश्राम किया था। अतएव इतवार का दिन विश्रामके हा अर्थ है। यवन और पाश्चात्य विद्वानों के माने वा निश्चित किये अवकाशों का मूल पैगम्बरों का मान्य और सृष्टिकर्त्ता का आदर वा अनुकरण है। जनता के हानि लाभ का ध्यान कुछ नहीं रक्खा गया इसी प्रकार अवकाशों की आवश्यकता पुराकाल में भी हुई उस समय जनता के हितचिन्तकों ने जनता के हितार्थ ही विचार किया। इस विषय पर राजविद्यासभा द्वारा विचार होने पर प्रथम यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि अवकाशकी आवश्यकता है वा नहीं इस विचार का परिणाम यह निश्चित हुआ कि श्रम के पश्चात् विश्राम की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त निरन्तर किसी कार्य्य में लगे रहने से गृह के विशेष कार्य्यों के करने की भी आवश्यकता है जो अध्यापक नित्य पढ़ाने में संलग्न रहते हैं उन्हें शारीरिक तथा गृहकार्य्यों का करनेका अवसर अवश्य दातव्य है किन्तु अवकाश का समय वह होना योग्य है कि जिससे शारीरिक और आत्मिक लाभ तो हो काल जैसा उत्तम द्रव्य निरर्थक व्यय न हो। वस्तुतः अनध्याय का काल निरर्थक ही होना चाहिये यों तो सभी काल सार्थक हैं निरर्थक कोई भी काल नहीं परन्तु व्यवहार मे कालके दो विभाग पाये जाते हैं। सार्थक काल वह है जिसमें कार्य्य की सिद्धि अच्छे प्रकारहो और शारीरिक तथा आत्मिक हानि का लेश भी न हो। निरर्थक काल वह माना गया है कि जिसमें कार्य्यसिद्धिमें तो सन्देहहो वा कार्य्यसिद्धि सम्यकतया न हो और शारीरिक वा आत्मिक हानि हो। अनध्यायों के अर्थ ऐसा काल रखना जनता के काल का सदुपयोग करना

है विद्वानों ने अमूल्य पदार्थों के अन्तर्गत काल को सब से ऊंचा माना है। अमूल्य का सदुपयोग न करना केवल अनादर ही नहीं एक प्रकार का भारी पाप है। इत्यादि विचारों के अनन्तर यह विचार उपस्थित हुआ कि यद्यपि पठन पाठन से शरीर की वाह्येन्द्रियों का संबंध है तथापि अन्तःकरण चतुष्टय ही मुख्य है। कारण की अंधे तथा बहिरे भी पढ़ते सुने तथा देखे गये हैं। अन्तःकरण विछिन पढ़ने में असमर्थ माना गया है। अन्तःकरण में मानसिक शक्ति का कार्य्य विशेषतया पाया जाता है। शरीर और इन्द्रियों के व्यवहारों पर ध्यान देने से यह भी विदित हुआ कि शरीर और इन्द्रियां अपने २ खाद्य को बिना प्राप्त किये निर्बलता को प्राप्त होती देखी जाती हैं। यद्यपि शरीर के अन्नादि खाद्य द्वारा इन्द्रियों को बल प्राप्त होता है तथापि गम्भीर विचार करने से यह ज्ञात हुआ कि इन्द्रियों का शरीर के अन्न खाद्य से अतिरिक्त और भी खाद्य है। अन्न से बल प्राप्त इन्द्रियाँ उस खाद्य की शक्ति बिना कार्य्य करने में असमर्थ प्रतीत होती हैं जैसे कि नेत्र अन्नादि के द्वारा बलवान् बिना प्रकाश के कार्य्य करने में असमर्थ हैं। इस से यह विदित होता है कि नेत्र प्रकाश बल की आकांक्षा रखते हैं प्रकाश का बल बिना दिये नेत्रों से कार्य्य लेना केवल कार्य्य का ही बाधक नहीं किन्तु इन्द्रिय बध होना भी संभव है। अन्य इन्द्रियों को भी यही दशा है अन्तःकरण का खाद्य पृथक् है वेद भगवान् का यह वाक्य है कि (चन्द्रमा मनसो जातः सूर्य्यश्चक्षो रजायत) चन्द्रमा परमात्मा की मनःशक्ति से और सूर्य्य नेत्रों की शक्ति से उत्पन्न हुए हैं। वेद में विभक्तियों का विनिमय भी पाया जाता है अर्थात् षष्ठी के स्थान में चतुर्थी एवं प्रथमा के स्थान में षष्ठी यहां पञ्चमी स्थान

में चतुर्थी का अर्थ करने से यह अर्थ निकलेगा कि मन की शक्ति के अर्थ चन्द्रमा और नेत्र शक्ति को बल देने के अर्थ सूर्य्य है। इस वेद मन्त्र ने ऋषि गण का विचार इस ओर प्रेरा कि मन को शरीर के अन्नादि खाद्य के अतिरिक्त चन्द्र शक्ति की भी आवश्यकता विशेष है चन्द्रशक्ति के न मिलने वा न्यूनाधिक मिलने से मन में निर्बलता होना संभव है। निर्बल अवयव से कार्य्य लेना अवयव का वध करना है। अतएव मन की निर्बल दशाओं में अनध्याय रखना पुण्य और अन्यथा पाप है। यही निरर्थक काल अनध्यायों का परमोत्तम काल है। राजविद्या के सदस्यों द्वारा यह निश्चित हो यह विषय धर्म्म में आगया राजा के द्वारा विद्यालयों को आज्ञा हुई कि अपने विद्यालयों में धर्म धारा में निश्चित हुए अनध्याय नित्य अनध्याय समझें नैमित्तकों की सूचना समय २ पर होगी। पाठकगण को यह विदित ही है कि मनु धर्मशास्त्र में वैदिक पाठशालाओं के अनध्याय के वासर निम्न हैं कृष्ण तथा शुक्ल पक्ष की दोनों प्रतिपदी एवं दोनों अष्टमी और कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी अमावस शुक्ल पक्ष में पूर्णिमा भारत के विद्या लयों में यही अनध्याय मनाये जाते हैं। उक्त अनध्याय में पाठकगण यह अवश्य कहेंगे कि अनध्यायों वाले विचार के कर्त्ता निश्चय जनता के हितचिन्तक थे यह बात बुद्धि में बैठती है। परन्तु वक्तव्य यह शेष रहता है कि कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी अमावस और शुक्ल की प्रति पदा को चन्द्र कला क्षीण होने से यह युक्तियुक्त काल निस्सन्देह कर्त्तव्य है परन्तु पौर्णमा और अष्टमी को तो इसके विपरीत पाया जाता है। साधारण जनता को यह प्रश्न उठना सहज ही है। उत्तर इसका यह है कि आहार के न मिलने से तो निर्बलता प्रत्यक्ष ही है आहार का अधिक मिलना आलस्य

का कारण है। आलस्य में कार्य्य का सम्यक्तया होना नहीं माना गया है। क्षीण दशा में कार्य्य अवयव का सहायक नहीं होता और आलस्य दशा में चित्त कार्य्य में लगता नहीं। अतएव इन दोनों दशाओं में मनको विश्राम देना श्रेयस्कर है। जिस विद्या सभा द्वारा अनध्याय निश्चित हुए हैं उन्ही दीर्घ दर्शियों की कुशाग्र बुद्धियों से पठन पाठन का प्रातः सायं काल निर्णय हुआ जो सज्जन इन सुख परिपूर्ण आज्ञाओं का पालन न कर अदीर्घदर्शियों के अनध्याय और पठन पाठन के काल का अनुकरण करना अच्छा जानते हैं वे अपने शिष्यों तथा सन्तानों को अल्पायु करने में योग देते हैं और साथ ही में हितचिन्तक ऋषि गण का अनादर कर पाप ही अपने शिर नहीं थोपते, अपने सुख स्वयं वंचित रहने का उपाय करते हैं। इत्यादि कारणों से भारत देश के वैदिक समय के निश्चित मंगल दिवस राजविद्या सभा द्वारा तर्क वितर्कों से सिद्ध राज्य घोषणा के कारण देश के सब भागों में होने आरम्भ हुए हैं।

मंगल दिवसों पर अपना विचार किस प्रकार होगा।

मंगल दिवस दो प्रकार के दृष्टि गोचर होते हैं। एक तो वे ही हैं जिनका स्रोत गृह्यसूत्र कहे आचुके हैं। द्वितीय वे हैं जो अन्य विचार शील सज्जनों ने देश कालानुसार उन्हीं ऋषि-कृतों के अनुकूल पश्चात् आरम्भ करे हैं अपना विचार इनके विषय में यह है कि जिनका उल्लेख ग्रन्थ विशेषों में पाया जाता है उन पर पूर्वभाग में विचार करे इनमें भी दो ही प्रकार दृष्टिगोचर होते हैं एक सामान्य और द्वितीय विशेष प्रथम

सामान्यों को कहकर तदनन्तर विषयों का विचार हो और जो पश्चात् हुए हैं उनका उल्लेख द्वितीय भाग में हो ऐसा करने से ग्रन्थ भी दो भाग वाला होकर अच्छा होगा हम इन पर इसप्रकार विचार करेंगे कि जिनका प्रमाण मिलेगा वही होगा वहां युक्ति और उस में होने वाले कार्य्यों पर विचार करेंगे। कारण इसका यह है कि कोई भी कार्य्य विना किसी कारण के नहीं होता यदि वह कारण उपयोगी हो तो मानने में आपत्ति क्या होगी और जो वह कारण सम्प्रति अनुपयोगी होगा तब त्यागने में हठ करना मूर्खता है। बहुत से कार्य्य ऐसे हैं कि उनके उपयोगी व्यवहार तो बदले नहीं किन्तु भाव बदल गये हैं केवल भाव की शुद्धि होना ही कार्य्य की शुद्धि का मुख्य कारण होगा। यह पाठकगण से अप्रकट नहीं कि काल के परिवर्त्तन ने कार्य्यों के अनेकरूप दिखाये कितने उपयोगी कार्य्य सज्जनों के ध्यान न देने से अदर्शन को प्राप्त होगये और अनेक काल तथा द्रव्य का दुरुपयोग करने वाले अनुपयोगी उत्पन्न होगये। यदि हमें पता लगा तो लुप्तों का वर्णन भी करेंगे कितने ही परमोपयोगी जिनका प्रभाव जनता में अच्छा होता था वर्त्तमान राज्य के प्रभाव से पञ्चत्व को प्राप्त होगये हमारा विचार है कि हम इस ग्रन्थ को केवल मंगल दिवस ही न रक्खें ऐतिहासिक घटनायें भी इस में रहें तो अच्छा है जिस से सज्जनों को लाभ विशेष हो। सज्जनों से यह प्रार्थना है कि वे इस ग्रन्थ को विचारदृष्टि से देखने की कृपा करें पौराणिक-समय को समझकर पूर्ण मंगल दिवसों से घृणा न करें उन की शुद्धि करना ही हमारा कर्त्तव्य है।

—:०:—

वर्षारम्भ कब से करना चाहिये।

रचना के आरम्भ ही से वर्षारम्भ करना अच्छा है। वर्ष का आरम्भ चैत्र शुक्ला प्रतिपदा से माना गया है यदि यहां यह शंका हो कि यह परिपाटी तो विक्रम संवत् की है इसको सृष्टि का आरम्भ मानना निर्मूल है। पाठकगण का यह कथन वर्त्तमान शैली के अनुसार तो ठीक है परन्तु केवल इस परिपाटी के आधार पर मानना कि वैक्रम वत्सर [illegible] से होता है कोई प्रमाण इसमें नहीं है। ऐसा होजाना कोई असम्भव नहीं कि विक्रम ने ही अपना संवत् [illegible] चलाया हो कि सृष्टि का आरम्भकाल यही है, मैं अपनी राज गद्दी पाने का यही मंगल दिन निश्चित करूँ विक्रम ने भी अपना संवत् यहींसे आरम्भ करना अच्छा माना। विचारशील विद्वानों के मन्तव्य की अपेक्षा यह विचार उत्पत्ति दिन का पुष्ट प्रमाण नहीं मान। जासकता कि यह विक्रमके राज्य सिंहासन आरूढ़ होने का काल है, यद्यपि ज्योतिष शास्त्र के फलित भाग ने ज्योतिष शास्त्र से सज्जनों को अश्रद्धा उत्पन्न करदी तथापि गणित भाग का महत्त्व श्रद्धा को स्थित रखने के अर्थ अभी तक नष्ट भी नहीं हुआ। ज्योतिष वेदांगों में ग्रहण होने से आदरणीय है। ज्योतिष वेदांगो में प्रधान अङ्ग है। शिक्षाग्रन्थ में वेदों का चक्षु ज्योतिष को माना है। जैसे विना नेत्रों के मनुष्य कुछ नहीं देख सकता एवं ज्योतिषशास्त्र रूप नेत्रों के विना वेदों के रहस्य को भी विद्वान् देखने में असमर्थ रहता है। ज्योतिष का मुख्य उद्देश है खगोल का ज्ञान और काल का निर्णय करना काल का यज्ञों से घनिष्ठ सम्बन्ध है यज्ञों का घनिष्ठ सम्बन्ध है वेदों से अतएव ज्योतिष और वेद का भी परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध माना गया है, खगोल के ज्ञान तथा काल के

निर्णय में ज्योतिष का सज्जनों को सदैव आदर करना योग्य है। ज्योतिर्विद् आचार्यों ने रचना का काल यही निश्चय किया है। ज्योतिष के हेमाद्रि ग्रन्थ में लिखा है कि—

चैत्रे मासि जगद्ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेहनि।
शुक्लपक्षे समग्रन्तु तदा सूर्य्योदये सति॥

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को सूर्योदय के समय ब्रह्मा सृष्टि रचता हुआ इस प्रमाण में वार नहीं कहा वार की पुष्टि ज्योतिर्निबंध ग्रन्थ से पाई जाती है ज्योतिर्निबंध में ऐसा पाठ है—

चैत्र सित प्रतिपद्यो वारोऽर्कोदये सति।

चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को आदित्यवार और सूर्य्योदय के समय रचना हुई सिद्धान्त शिरोमणि ग्रन्थ का भी यही अभिप्राय है उक्त ग्रन्थ का यह कथन है कि—

लंका नगर्य्यामुदयाच्च भानौ तस्यैववारे
प्रथमो बभूव मधोसितादेर्दिनमासवर्ष
युगादिकानां युगपत्प्रवृत्तिः॥

लङ्का में अर्थात् विषुवत् रेखा पर सृष्ट्युत्पत्ति का प्रथम काल सूर्य्योदय तथा आदित्यवार चैत्र शुक्ला प्रतिपदा है उसी समय से मास वर्ष युगादि की एक साथ प्रवृत्ति हुई। इन प्रमाणों में ऋतु नहीं कहा गया ऋतु का उल्लेख ब्राह्मण ग्रन्थों से निश्चित ही है शतपथ में ऋतुओं के कथन में (मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू) चैत्र तथा वैशाख को वसंत ऋतु में ग्रहण किया है केवल नक्षत्र का उल्लेख नहीं पाया जाता नक्षत्र का समावेश उक्त लेख की शैली के अनुसार होना दुस्तर नहीं जैसे मासों में प्रथम चैत्र तथा तिथियों में प्रथम

प्रतिपदा पक्षों में प्रथम शुक्ल वारों में आदित्य एवं ऋतुओं में प्रथम वसन्त इसी प्रकार नक्षत्रों में प्रथम नक्षत्र आश्विनी का ग्रहण है सब प्रमाणों तथा नक्षत्र का युक्ति से ग्रहण करने से सृष्ट्युत्पत्ति का काल चैत्रशुक्ला प्रतिपदा वसन्त ऋतु आदित्य वार आश्विनी नक्षत्र सूर्योदय है। इन प्रमाणों के समक्ष विक्रमादित्य के समय से संवत् मानना प्रबल प्रमाण नहीं है। सृष्ट्युत्पत्ति के इस प्रामाणिक काल से यह स्पष्ट विदित होता है कि यही जनता की उत्पत्ति का काल है और यही काल वेदों की रचना का भी मानना इस कारण से उचित है कि वेदोपदेश का सम्बन्ध मानव जाति से ही विशेष है। पृथिवी तथा मानवात्माओं के निर्वाहार्थ अन्य पदार्थों की एवं जल अग्नि वायु आकाश की उत्पत्ति का काल इस काल से भी पूर्व माना जाता है। इस काल विषय के निर्णय में एक यह सन्देह भी उत्पन्न होता है कि यह एक अरब छानवें करोड़ वर्ष वाला कौन काल है। इसका उत्तर यही है कि वही काल है जिस समय मनुष्य उत्पन्न हुए और उनके अर्थ वेदों का उपदेश हुआ। विद्वानों का कथन है कि यथाबल यथाबुद्धि उपदेश करना विद्वत्ता है अन्यथा मूर्खता है। ईश्वर ने मनुष्यों के अर्थ वेद द्वारा वही उपदेश दिया है जितना उसको दातव्य था। यह बुद्धि में भी आता है कि मनुष्य रचना के पूर्व अन्य आकाश से लेकर पृथिवी पर्य्यन्त अनेक लोक लोकान्तरों की रचना के अर्थ काल की आवश्यकता है। किन्तु उस काल की गणना से मनुष्य जाति का कुछ प्रयोजन सिद्ध भी नहीं था। विद्वानों के अनुभव में वह काल आना कठिन था। और न उस से कुछ अर्थ निकलता न उस काल की संख्या के अर्थ अंक नियत होने संभव थे। वर्त्तमान १९ संख्या वाले अंको से

आगे ही के अंको के नाम किसी से निश्चित नहीं हुए कारण कि वेद ने इस से अधिक संख्या के अंकों का उल्लेख ही नहीं करा मनु धर्म्म शास्त्र में गणना न दिखाकर शेष काल को संकेत मात्र से निर्दिष्ट किया है। यह तो विदित ही है कि ब्रह्म का एक दिन सृष्टि और उतनी ही रात्रि मानी गई है। इस ब्रह्म दिन का मान भी चौदह मन्वन्तर दिन मार्ग निश्चित हो चुका है। चौदह मन्वन्तर दिन के मानने से १४ ही रात्रि के होते हैं। कई मन्वन्तर वर्त्तमान गणना से पूर्व रचना के अर्थ व्यतीत हो चुके हैं। इस विषय में मनु महाराज का यह लेख स्पष्ट है कि

मन्वन्तराण्यसंख्यानि सर्गः संहार एव च
क्रीडन्निवैतत् कुरुते परमेष्ठी पुनः पुनः अ० १ श्लो० ८०

ब्रह्म क्रीड़ा की तरह वार २ प्रति कल्प रचना करता है प्रत्येक सर्ग और प्रलय में अनेक मन्वन्तर व्यतीत होते हैं। यह विचार ठीक ही है। जिस काल से जनता का संबंध है उसी का उल्लेख वेद कर्त्ता ने जनता को दिया है। मनुष्य रचना तथा वेदोपदेश का वही काल ज्योतिष शास्त्र ने निश्चय किया है जिस का वर्णन पूर्व कराया गया है। इतने काल में न जाने जनता के व्यवहारों के कितने परिवर्त्तन हो चुके वर्त्तमान काल में जो कुछ व्यवहार हो रहे हैं उन पर ही विचार होगा जहां से रचना का आरम्भ निश्चित हुआ है वहीं से मंगल दिवसों के आरम्भ का अपना विचार है॥

एक दृष्टि इधर भी।

द्विजातियों में प्रायः मंगल दिवसों के साथ व्रत का विधान भी पाया जाता है। इस पर भी विचार विशेष की आवश्यकता

है कारण यह है कि व्रत के पुरा काल और वर्त्तमान काल को आकाश पाताल का अंतर है जिन महापुरुषों ने मंगल दिवस के साथ व्रत का समावेश किया है उन का विचार बहुत ऊंचा था व्रत जीवन यात्रा के अर्थ एक उपयोगी अंग है। व्रत को धर्म्म का अंग मानना इसलिये अनुचित नहीं कि कुलों के द्वारा दोषों की शुद्धि होकर शरीर को निरोगता प्राप्त होती है। निरोगता वर्ग चतुष्टय की मूल कही जा चुकी है। अतएव व्रत अवश्य करणीय है। विद्वानों के द्वारा किये कार्य्य एक ही अर्थ के साधक न हो अनेक अर्थों की प्राप्ति के अर्थ होते हैं। यह माना कि अज्ञानियों ने व्रत के आशय को न समझ कुछ का कुछ कर दिया जिससे स्वयं तो सुखके स्थानमें दुःख प्राप्त किया और सज्जनों को व्रत व्यवहार को नष्ट करने के अर्थ उतारू करा दिया। व्रत विधान के गर्भ में निम्नलिखित आशयों का आधान व्रत प्रचालक ने किया था ऐसा प्रतीत होता है मुख्यतया तो निरोगता की प्राप्ति का ही उद्देश्य था, द्वितीय एक दो समय भोजन न मिलने से शरीर कार्य्य करने में शिथिलता को प्राप्त न हो तृतीय मंगल कार्य्य के दिन आलस्य बाधित न करें चौथे शरीर सहिष्णुता का अभ्यासी बना रहे व्रत के द्वारा शरीर के मल परिपक्व होकर अग्नि के वर्द्धक होते हैं। जाठराग्नि की सम्यक् स्थिति निरोगता का मुख्य कारण है। आयुर्वेद विदों का कथन है कि "अजीर्ण प्रभवाः रोगाः" समस्त रोगों का जनक अजीर्ण है। आयुर्वेदाचार्य्यों ने अन्न के अजीर्ण को ही अजीर्ण नहीं माना। दोष धातुओं की अपक्वता भी अजीर्ण है। वैद्य वर धन्वन्तरि ऋषि का उपदेश है कि सद्वैद्य का परम कर्त्तव्य यही है कि—

व्याध्युप सृष्टानां व्याधि परिमोक्षः स्वस्थस्यरक्षणम्

व्याधि ग्रसतों की व्याधि को नाश करना और स्वस्थों की व्याधि-यों से रक्षा उत्तम वैद्य की प्रशंसा में समस्त आचार्य्यों का मत यही है कि जो (विनापि भैषजैव व्याधिम् पथ्या देव निवर्त्तयेत्) विना औषधि सेवन के पथ्य से ही रोग निवृत्ति करने का यत्न करे। साधारण स्त्री पुरुषों को खान पान के विषय में अपने हिताहित का ज्ञान होना कठिन है। अतएव शरीर रक्षा के निमित्त जाठराग्नि को बल देने के अर्थ यह विधान अत्यन्त उत्तम जनता के व्यवहार में सम्मलित करा प्रतीत होता है। संस्कृत में व्रत शब्द का नाम उपवास भी है वैद्यक शास्त्रों में रोग की निवृति के अर्थ लंघन का विधान है जो व्यक्ति उप-वास का अभ्यास करते हैं उनको लंघन का मुख देखने का अवसर प्रायः नहीं होता है। जिन हितैषी व्यक्तियों ने व्रत विधान स्थापन करा था वे जनता के सच्चे पिता कहे जांय तो अनुचित नहीं।

द्वितीय उद्देश्य भी गम्भीर आशय वाला है प्रायः स्त्री पुरुषों को ऐसे अवसर भी प्राप्त होते हैं कि जिसमें एक २ दो२ दिवस विघ्न बाधाओं से अन्न का भेटा नहीं होता है। ऐसे समय पर व्रत के अभ्यासी को उस व्यक्ति की अपेक्षा न्यून कष्ट होता है जो व्यक्ति व्रत का अभ्यासी नहीं ऐसा बहुत बार देखा गया है जब कभी गृह में अन्न का ऐसा समय आगया कि स्त्रियों को व्रत रखने की आवश्यकता प्राप्त हुई तब प्रातः काल ही गृहस्वामी से यह प्रश्न होता है कि हम सब तो व्रत करेंगी भोजन केवल आपके ही लिये बनैगा इसपर व्रत के अनाभ्यासी उत्तर देते हैं कि केवल हमारे ही अर्थ भोजन बनाने में कष्ट होगा अतएव हम भी तभी पा लेंगे स्त्रियाँ निश्चित हो अपने व्रत संबंधि अन्य कार्य्यों

में पराधत हो जाती हैं व्रत के अनाभ्यासी महाशय भी भोजन के समय पर्य्यन्त तो अपने कार्य करते रहते हैं किन्तु भोजन का समय व्यतीत होते ही हाथ पैर गिरने लगे और शिर झांय झांय करने लगा इस दशामें कार्य्यों को छोड़ विश्राम करने लगे अब इन महाशय को उठना बैठना चलना बोलना कठिन प्रतीत होने लगा दैवात् कहीं गृह में से यह शब्द आया कि अमुक वस्तु नहीं है बिना उसके निर्वाह नहीं होगा तब अनाभ्यासी महाशय उत्तर देते हैं कि कल वा प्रातः क्यों नहीं कहा था यहां भूख के मारे नेत्र निकले पड़ते हैं ज्यों त्यों करके समय काट रहे हैं हम से नही चला फिरा जाता किसी समीप वर्त्ती के यहां से लेकर कार्य्य करलो इन महाशय की यह दशा क्यों होगई अनाभ्यास से भला ऐसी दशा में अन्य आवश्यक कार्य्य उपस्थित होजाय तो कैसे कष्ट से होगा उभय पक्ष भ्रष्ट होनेका भय है अपने को कष्ट विशेष और कार्य्य अच्छी प्रकार न होना। इस विषय में महिला मण्डल की ओर भी दृष्टि देने की आवश्यकता है स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा व्रत का विशेष अभ्यास करती हैं। इसका फल क्या होता है यह प्रत्यक्ष ही है। भारत की स्त्रियों में बहुत काल से यह प्रथा चली आती है कि अन्य ऋतुओं की अपेक्षा वर्षा ऋतु में कठिन व्रतों को रखती हैं। बहुतसी स्त्रियाँ चार मास लवण न खाने की प्रतिज्ञा करती हैं किन्हीं का व्रत होता है कि सूर्य्य तथा चन्द्रमा का दर्शन ही करके भोजन करैंगी पाठकों को यह प्रकट ही है कि और ऋतुओं की अपेक्षा वर्षा ऋतु में बादलों के कारण सूर्य्य तथा चन्द्रमा के दर्शन नहीं होते सूर्य्य दर्शन यदि हो भी जायँ तो चन्द्र दर्शन तो बिना बादलों के भी मासमें तीन दिनके लिये लोप रहता ही है। अमावस प्रति पदा और द्वितीया अमावस

और प्रति पदा को अहर्निश ही भोजन का अभाव रहता है। द्वितीया को सायंकाल भोजन का अवसर मिलता है। यदि मेघ मण्डल न हुआ तब मेघाच्छन्न होने पर वह दिन भी व्रत ही में रहता है। ऐसे कठिन काल में जबकि कई दिन भोजन नहीं मिला स्त्रियां गृह के पीसने तथा भोजन बनाने के कार्य्य में शिथिल नहीं देखी जाती किसी २ को तो दूर देश से जल भी लाना पड़ता है। स्त्रियों को यह बल कहाँ से प्राप्त हुआ व्रताभ्यास से। यही कारण उनकी सहिष्णुता का है। अतएव दुस्तर कालों में शरीर अपने कार्य्यों में शिथिल न हो व्रत का अभ्यासी होना अच्छा ही है।

तृतीय कारण सबको विदित ही है कि भोजन का झंझट दो तीन महूर्त प्रत्येक गृहस्थी के लेता है। भोजन करने से आलस्य होता ही है जो मंगल कार्य्य में उत्साह को भंग करता है।

चौथा कारण सहिष्णुता भी अपने तथा अन्यों के कार्य्यों के अर्थ अत्यन्त उपयोगी है राजाको सदैव अपनी प्रजा सहिष्णु रखना योग्य है:सहिष्णु प्रजा कदा२ राजा को सेना का कार्य देने में भी समर्थ होती है ऋषिवरों ने बहुत दशाओं में प्राणयात्रा का उपयोगी होने से व्रत को रखना अवश्य हो जाना था किन्तु खेद की बात यह है कि हमारी मूर्खता ने परमोपयोगी कार्य्यों को प्राण संकट बना लिया सम्प्रति व्रतों की गणना करना कठिन है। प्रत्येक तिथि एवं प्रत्येक वार व्रतों से परिपूर्ण दृष्टि गोचर होते हैं। उपयोगी बहुत से छूट गये अनुपयोगी संकट रूप प्राप्त होगये वैदिक व्रत दो पाये जाते हैं एक अमावस्या में द्वितीय पौर्णिमा को अमावस्याको नित्य की अपेक्षा पितृ कार्य्य विशेषता से करना होता है और पौर्णिमा को देव कार्य्य की आज्ञा

है। यदि कोई उपयोगी जाना जाय तो अन्य भी कर्त्तव्य है। उक्त दोनों व्रत आयुर्वेदविद्दाचार्य्यों के बतलाये प्रतीत होते हैं। युक्ति युक्त कार्य्य किसी तत्व ज्ञाता बुद्धि के द्वारा होने सम्भव हैं। आयुर्वेदविदों ने निश्चय किया है। कि जाठराग्नि का बल सूर्य्य है। सूर्य्य के अभाव काल वा किसी अन्य कारण से गति में गड़बड़ होने से जाठराग्नि उतना अच्छा कार्य्य नहीं करती जितना कि निर्विकार सूर्य्य के रहने पर करती है। यह प्रत्यक्ष ही है कि नित्य की गति की अपेक्षा कुछ विकार होता है। अमावस्या से कृष्ण पक्ष को छोड़कर शुक्ल पक्ष से संबंध करता है एवं शुक्ल पक्ष की पौर्णिमा को त्यागने पर कृष्णपक्ष से संगम करता है। सूर्य्य के इस संक्रमण समय में जाठराग्नि में भी गड़बड़ होने की सम्भावना है। अतएव इस गडबड़ काल में जाठराग्नि की रक्षा के अर्थ इन दिनों में व्रत करना अच्छा ही है। अन्य व्रतादि न जाने किस अभिप्राय को ग्रहण करके चलाये गये हैं। पाठक वर्ग को यह भी विदित हो कि बुद्धि द्वारा हुआ कार्य्य सुख दायक ही होता हैं बुद्धि मानों के विहित व्रत युक्ति युक्त और शरीर रक्षा के अर्थ अत्यन्त उपयोगी विदित हुए (अन्नं वै प्राणिनां प्राणः) अन्न प्राणधारियों का प्राण है अन्न प्रमाण से अधिक वा न्यून भक्षण करा हुआ रोगों का कारण है। युक्ति से किया व्रत शरीर का पोषक है। मूर्खता से बिना अन्न के शरीर को कृश करना पाप है। आवश्यकता नुसार व्रत करने से हानि नहीं होती कर्त्तव्य कर्मों में से एक कर्म है श्री स्वामी दयानन्द जी ने व्रतों का बाहुल्येन करने का निषेद करा है यदि आवश्यकीय व्रत उन की बुद्धि में व्यर्थ होते तब उपनयन में व्रत की आज्ञा देते। व्रत में करने वाले भक्ष का नाम फलाहार है वर्त्त-

मान के फलाहार और आयुर्वेद विदों के फलाहार में अन्तर है। सम्प्रति फल शब्द से अमरूद नारंगी ख़रबूज़ा केला आदि का ग्रहण होता है पुरा आचार्य्यों ने इन का ग्रहण शाक पात में करा है। फलों से पिस्ता चिरौंजी बादाम छुहारा किसमिस गोला आदि का ग्रहण है। कारण कि शाकादि से संबंध रखने वाले फल नित्य के आहार से भी अधिक भक्षण होते हैं। जिस का परिणाम अग्नि को तीव्र करने के बदले मन्द करना होता है। आयुर्वेद विदों के माने वा बताये फल संज्ञक, अनेक रोगों के नाशक शरीर को पुष्ट करने वाले हैं थोड़ी मात्रा में भक्षण होने से सुख पूर्वक पचते हैं अतएव ऋषियों के बताये फलों का भक्षण व्रत में कर्त्तव्य और शाक संज्ञा वाले फलों का भक्षण मन्दाग्नि करने से अभक्ष्य हैं। सज्जनों को इस व्रत विषय का ध्यान रखना योग्य है यह मंगल दिनों का एक उपयोगी कार्य्य है अतएव करणीय यही मानना चाहिये॥

फुट कर विषयों पर दृष्टि पात की आवश्यकता है।

पूर्व के लेख से पाठक वर्ग को यह विदित होगया होगा कि शरीर की स्वस्थता ही वर्ग चतुष्ट की साधक है। जो मानवात्मा का मुख्य कर्त्तव्य है। जिस पृथ्वी पर हम निवास करते हैं उस का खगोलस्थ तारा गण से धनिष्ट संबंध है। प्रत्येक ऋतु के परिवर्त्तन समय खगोलस्थ तारागण द्वारा अनेक गुणों का आधान होता है। सृष्टि का मुख्य कारण शीतोष्ण वीर्य्य है। जिनका उदाहरण कई प्रकार से पूर्व दिया गया है। जिस प्रकार पूर्व उदाहरणों से यह सिद्ध किया गया है कि यह प्रपञ्च शीतोष्ण की साम्यता से ही हमारी स्थित का कारण है। जिन द्यूलोकस्थ तारागण वा नक्षत्र तथा राशियों एवं

वारों का नित्य परिवर्त्तन दृष्टिगोचर होता है उन सब में प्रधानता सूर्य्य भगवान् की ही मानी गई है।

अनेक परिवर्त्तनों द्वारा सूर्य्य ही सृष्टि का कर्त्ता हरता धर्ता माना गया है। इसी परिवर्तन का सम्यक् अवगाहन कर ऋषिगणों ने अनेक कर्त्तव्य कर्म्म करने की आज्ञा दी है। सूर्य्य के उदय और अस्त काल के परिवर्त्तन में संध्यो पासन तथा अग्नि होत्र का विधान गम्भीर आशय वाला है यदि इन कर्मों के फलों का वर्णन किया जाय तो ग्रन्थ की समाप्ति इसपर होना सम्भव है। शरीर की सम्यक् स्थिति में दोनों कार्य्य मुख्य तम हैं अतएव इनका विषय न छोड़ कर अपने विषय को ही लिखते हैं। किसी बात को बार २ कहना पिष्टपेषण है कथन वा लेख में पिष्टपेषण दोष है। इस लिये वार २ न कह कर केवल इतना ध्यान वाचक वृन्द के अर्थ दिलाना पर्य्याप्त है कि ये समस्त व्यवहार आत्मिक शारीरिक और सामाजिक दशाओं की सम्यक् तथा स्थिति के अर्थ हैं।

किन्हीं व्यवहारों में केवल आत्मा और शरीर की सुद-शाओं का ही ध्यान रक्खा गया है किन्हीं में सामाजिक संग-का भो समावेश होता है। उक्त तीनों दशाओं के साथ ही मंगल कार्य्यों को कर्त्तव्य कहा वा माना गया है। बहुत से कार्य्य तो ऐसे हैं जो साधारणता से ही होते हैं। जैसे वारों में आदित्य और तिथियों में अमावस तथा पौर्णिमा प्रत्येक मास में संक्रान्ति आदि यदि यहां यह प्रश्न हो कि इन से क्या लाभ है। तब उत्तर यह है कि मूल कारण तो शरीर की सम्यक् अस्थिति ही है। किन्तु यहां संदेह शेष रहता है कि क्या इन्हीं कालों में विशेषता है इन के अतिरिक्त अन्यों को विशेषता क्यों नहीं दीगई। सभी वारों तथा तिथियों में कुछ न कुछ परि-

वर्त्तन होता है। यह कथन महानुभावों का युक्तियुक्त है किन्तु तत्ववेत्ताओं ने यह निश्चय किया है कि पूर्ण परिवर्त्तन पर ही कार्य्य फलदायक होता है युक्ति इस में यह है कि मनुष्य जिस समय से भोजन करना आरम्भ करता है उसी समय से जीर्ण होना आरम्भ होजाता है। यदि भोजन के इस परिवर्त्तन से प्रत्येक ग्रास के जीर्ण होने पर भोजन किया जाय तब यह फल होगा कि न तो भोजन कर्त्ता को भोजन से अवकाश मिलैगा और न भोजन का परिपाक ही ठीक होगा। ऋषिगण काल के प्रतिक्षण परिवर्त्तन का ज्ञान हमसे भी अधिक रखने वाले थे किन्तु प्रतिक्षण परिवर्तन को परिवर्त्तन न समझ उसपर ध्यान नहीं दिया पूर्ण वर्तन पर ही कार्य्य करना फलदायक समझा गया अतएव उन्हीं परिवर्त्तन कालों के कार्य्यों की आज्ञा भी दीगई है। जिन परिवर्त्तनों पर कार्य्य करने की आज्ञा है वस्तुतः वे परिवर्त्तन जीवन में एक प्रकार का परिवर्त्तन उतपन्न करने वाले प्रतीत होते वार सात माने गये हैं आदित्य से उन का आरम्भ होता है पुनरवार आदित्य के आने पर एक परिवर्त्तन होजाता है अतएव आदित्यवार को कृत्य विशेष होना चाहिये।

आदित्यवार को और दिनों की अपेक्षा दो कारणों से यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है प्रथम तो यह कि यह सृष्ट्युत्पत्ति के दिनों में से सप्ताह में आने वाला एक दिन है द्वितीय इस दिन एक परिवर्त्तन भी माना गया है ऋषियों ने जहां पक्ष वर्ष मासादि में परिवर्त्तनों का निश्चय करा है वहां सप्ताह के परिवर्त्तन का निश्चय भी शीतोष्ण वीर्य्यों की साम्यता के आधार पर माना है वार सात माने गये हैं आदित्य, चन्द्र, भौम, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, इन वारों में भी शीतोष्ण वीर्य्यों की साम्यता का ध्यान विशेषतया पाया जाता है आदित्य सूर्य्य

का ही वार माना गया है स्वभाव उष्ण इस अपने वार के दिन सूर्य्य बिना किसी अन्य व्यवधान के जनता के शरीरों तथा वस्तुओं में अपनी प्रखर किरणों का आधान करता है। उष्णता विशेष की शान्ति के अर्थ हो आज दिन के व्यवहार पाये जाते हैं जैसे कि प्रथम स्थान का लेपन दुग्ध मिश्रित भोजनों का भक्षण लवण तैलादि उष्मा को उत्पन्न करने वाले पदार्थों के भक्षण का निषेध। इस दिन के उक्त व्यवहार हमने स्वयं हो कल्पना नहीं करे चिर काल से व्यवहार होता देखकर ऐसा कहने का साहस करा है। आदित्यवार के दिन लेपन की तो एक जन श्रुति भी प्रचलित है (आदित्यवार तब जानिये जब हट्टी लोपें बानिये) तात्पर्य्य इसका यह है कि यदि किसी को वारों का ध्यान बिसर जाय तो जिस दिन वैश्य अपनी हाट लोपें उस दिन आदित्यवार जानो यदि कोई व्यक्ति इस दिन परमात्मा का आराधन विशेष करने के कारण व्रत रखते हैं वे भोजन मिष्ट करते हैं। नगर निवासियों की चाल ढाल का परिवर्त्तन पाश्चात्य चाल ढाल से विशेष परिवर्तित होगया अतएव इन को किसी पुरा प्रथा का स्मरण कराना पूर्व जन्म की सुध कराना है। ग्राम निवासियों की चाल ढाल में भी अन्तर तो बहुत होगया है परन्तु पुराचाल की बहुत सी बातें पाई जाती हैं। ग्रामों में आदित्यवार को दुग्ध का उष्ण करना पाप माना जाता है। पाप शब्द केवल हानि का हो वाचक है यदि किन्हीं महाशय को यह उद्‌कना उत्पन्न हो कि यह सब कल्पना निर्मूल हैं। हम नहीं देखते कि किसी ने आदित्य को तैल वा लवण तथा अन्य तीक्ष्ण पदार्थ खाये हों और वह खटिया पर पड़ गया वा मृत्यु को प्राप्त होगया हो। नित्य कोटी व्यक्तियां मद्यपान तैलादि का भक्षण करते हैं। अतएव इसप्रकार के कथन से यही जाना जाता है कि ये पुराने

समय के निर्मूल विचार हैं सम्प्रति इन विचारों का कुछ मूल्य नहीं है। वर्त्तमान काल में उन विचारों की आवश्यक्ता है जो जनता में स्वतन्त्रता उत्पन्न करने वाले हों। इस कथन के विषय में इतना ही कहा जासकता है कि संप्रति इस प्रकार के विचारों का बाहुल्य होने से उन अन्तःकरणों में जो अपने देश की शिक्षा से शून्य हैं प्रायः उत्पन्न होजाना सहज बात है। अतएव इन विचार वाली व्यक्तियों के कथन पर केवल इतना ही कहा जासकता है कि वे महानुभाव अपनी बुद्धियों को हित अहित के विचार में लगाकर देखें कि हमारा हित अहित किस में है।

दूसरा यह विचार कि हमने विपरीत व्यवहार वालों को रोगी होते वा मरते नहीं देखा ऐसे विचारों की भूमि भी उन का ही अन्तःकरण होता है जो अन्यों के विभक्त असार व्यवहारों के अनुकरण को अच्छा जानते हैं। न जिन को यह ज्ञान है कि जिस ईप्सित सुख की इच्छा सदैव हमारे मन में रहती है वह सुख क्या है। यहां जीवन और मृत्यु का प्रश्न नहीं है। जीवन केवल शरीर और आत्मा के संयोग मात्र का नाम है। क्या जो रोगी है वह जीवित नहीं कहा जाता। रोगी और निरोग के खान पान तथा विहार को बुद्धि की तुला पर रख विचार करो किस की जीवनी सुख पूर्वक है। एक पुरुष मद्यपान से मत्त नित्य विषय भोगों से काल व्यतीत करता है उस के विपरीत दूसरा बिना मद के स्वच्छ भोजन खाकर जीवन व्यतीत करता है दोनों की तुलना बुद्धि से होती है क्या यह हमें विदित नहीं कि जिस दिन हम स्वच्छ भोजन पाते हैं उस दिन शरीर कार्य्यों में कितना उत्साहित होता है इसके विपरीत तमोगुणी पदार्थों का जिस दिन डट कर भोजन करते हैं

क्या दशा होती है जैसा सुख सतोगुणी पदार्थों के खाने से होता है वैसा तमोगुणी भोजन से नहीं होता, अपने हितैषियों को हित बुद्धि से बताये व्यवहारों का अनादर करना अपने मार्ग में स्वयं कंटक वपन करना नहीं तो और क्या है। अतएव भारत हितैषियों के व्यवहार दीर्घदर्शिता से उत्पन्न हुए हैं भारत की जनता के अर्थ सुखदाई हैं अवश्य करणीय भी हैं। यह प्रतीत नहीं होता कि आदित्य के दिन वाले व्यवहारों में दोष क्या प्राप्त है। जिन व्यक्तियों ने सामाहिक पाक्षिक तथा मासिक परिवर्त्तनों के साथ जीवन का संबंध विशेष समझा है उन्हीं व्यक्तियों के बताये हुए ये व्यवहार हैं। इन कार्य्यों में इनका कोई स्वार्थ नहीं पाया जाता वस्तुत इन परिवर्त्तन कालों में उत्पन्न हुए दोषों की शान्ति के अर्थ यह एक प्रकार की चिकित्सा है। शीत और उष्णता की समता करने का एक सुगम प्रयत्न है जिसके गर्भ में जनता की दीर्घायु का स्थापन है इन कर्त्तव्य व्यवहारों को न करना उनकी कुछ हानि नहीं करता अपनी ही हानि करता है।

इति आदित्य (१)

अथ मावस्या पर विचार।

अमावस्या के दिन भी एक विशेष परिवर्त्तन माना गया है अतएव इस दिन भी नित्य कर्त्तव्यों की अपेक्षा विशेषतया कार्य्य करने की आज्ञा है अमावस्या के दिन सूर्य्य कृष्ण पक्ष को छोड़ शुक्लपक्ष को ग्रहण करता है आज के दिन एक और विशेषता भी देखी जाती है वह यह कि सूर्य्य और चन्द्रमा एक ही राशि पर रहते हैं। यह प्रत्यक्ष ही है कि सूर्य्य की ताप शान्त करने के अर्थ ही चन्द्रमा की रचना हुई है। प्रथम तो चन्द्रमा आज स्वयं ही कला क्षीण है कला क्षीण चन्द्रमा

भी किसी न किसी अंश में अमृत से तृप्ति करता ही है। सूर्य्य के साथ होने से अमृत का आज मिलना कठिन है। आदित्य वार के दिन यद्यपि उष्मा विशेष होती है किन्तु रात्रि में चन्द्रमा का अभाव नहीं होता। अमावस्या के दिन आदित्य की अपेक्षा विशेष उष्मा होने की सम्भावना है। जल क्रिया विशेष वाला पितृकर्म्म आज के दिन करना बताया है। यदि पितृ कर्म्म के विषय में किन्हीं महाशय को यह वक्तव्य हो कि यह कथन यतिवर श्री स्वामीजी महाराज के मन्तव्य के विरुद्ध है। तब इसका उत्तर यह है कि पितृ तर्प्पण पञ्च महा यज्ञ विधि में कर्त्तव्य है हमें इस विषय पर विशेष कथन करने की यहां आवश्यकता प्रतीत नहीं होती कारण कि यह प्रकरण इस लेख में असंबद्ध प्रलाप है। परन्तु जीवित मृतक का इस श्राद्ध से कुछ संबंध नहीं यह पितृ कर्म्म अपने ही हितार्थ है। अतएव कर्त्तव्य ही है यदि अवसर प्राप्त हुआ तो इसका विचार पृथक् ही होगा। अमावस्या के दिन भी आदित्य वार दिन वाले उष्ण पदार्थों का सेवन न करना चाहिये कृषीकार अमावस्या को हल नहीं जोतते। हल जोतने में श्रम होता है और निरन्तर धूप में रहना पड़ता है अतएव अमावस्या को हल जोतने का कार्य नहीं करते। अमावस्या यदि आदित्य वार की हो तो अशुभ मानी जाती है। अशुभता क्या है? यही अशुभता है कि जैसे करेला स्वयं कटु होता है निम्ब का सहयोग हो जाने से और विशेष कटुता आजाती है चन्द्र वारी अमावस्या को पर्व माना जाता है कारण कि यदि आज चन्द्रमा स्वयं नहीं है तो उसका सौम्यवार तो है। और वारों की अपेक्षा आज कुछ न्यून उष्मा होना सम्भव है इत्यादि कारणों से अमावस्या के दिन उक्त कर्म्म कर्त्तव्य बताये गये हैं।

इति अमावस्या (२)

अथ पौर्णिमा पर विचार ।

पौर्णिमा को उक्त दोनों दिनों की अपेक्षा शीत का आधिक्य माना गया है । अतएव पौर्णिमा को देव कार्य्य करने की आज्ञा है । देव कार्य्य में अग्नि द्वारा हवन विशेष की आज्ञा है । अग्नि के संबंध से शीताधिक्य की न्यूनता निश्चित ही है । किन्तु यहाँ यह विशेष कर्त्तव्य है कि इन तीनों दिनों में जिस कर्म्म को जितना करना बताया गया है उतना ही करना योग्य है अधिकस्याधिकं फलं के अनुसार अधिकता न करें । कारण कि जिन व्यक्तियों के द्वारा ये कार्य्य बताये गये हैं उन्होंने पूर्व यह विचार कर लिया है कि अमुक दिन इतने ही मान की आवश्यकता है । विहित मान से अधिक में उस लाभ से जोकि इन दिनों के विधानों के कर्त्ताओं ने उचित जाना था वंचित रहने के अतिरिक्त और कुछ अधिक फल न होगा ।

इति पौर्णिमा विचार (३)

अथ संक्रान्ति विचार ।

संक्रान्ति भी एक विशेष परिवर्त्तन का दिन माना गया है संक्रान्ति के दिन सूर्य्य एक राशि से द्वितीय राशिपर आक्रमण करता है । इस परिवर्त्तन में भी सृष्टि के दोनों शीतोष्ण के मुख्य वीर्यों की साम्यता का ध्यान रक्खा गया है । सृष्टि रचना में परमात्मा के अतिरिक्त किसी मनुष्य व्यक्ति विशेष का कार्य्य नहीं पाया जाता । मनुष्य तो प्रभुके ज्ञान वेद के उपदेश द्वारा कार्य्य लेने वाला है । बारह राशियों की रचना इस प्रकार है १ मेष २ वृष ३ मिथुन ४ कर्क ५ सिंह ६ कन्या ७ तुला ८ वृश्चिक, ९ धन १० मकर ११ कुम्भ १२ मीन इनके स्वभाव जो ज्योतिषियों तथा आयुर्वेद विदों ने निश्चय किये हैं ये हैं । मेष स्वभाव

उष्ण स्वामी इसका मंगल है वृष स्वभाव शील स्वामी शुक्र मिथुन स्वभाव सौम्य स्वामी बुध कर्क शीत स्वभाव स्वामी चन्द्रमा सिंह स्वभाव उष्ण स्वामी सूर्य्य कन्या स्वभाव मृदु स्वामी बुध तुला स्वभाव शीत स्वामी शुक्र है वृश्चिक स्वभाव अत्युष्ण स्वामी मंगल धन उष्ण स्वामी बृहस्पति मकर स्वभाव उष्ण स्वामी शनि कुम्भ स्वभाव कुछ उष्ण स्वामी शनि मीन स्वभाव उष्ण स्वामी बृहस्पति उक्त चक्र प्रभुकी ज्ञान भरी रचना का कितना स्पष्ट साक्षी है। इस चक्र द्वारा शीतोष्ण वीर्य्यों में कैसी साम्यता रक्खी गई है। यह चक्र जनता के सुख का श्रोत है। इसी चक्र रचना के प्रभावानुकूल जनता के व्यवहार पाये जाते हैं। संक्रान्ति का कोई एकदिन निश्चित नहीं। जिस दिन जिस वार में होती पाई गई उसी दिन तथा वार के अनुकूल ही उसके व्यवहार बताये गये हैं। इसी आधार पर दोष और गुण पाये जाते हैं। यह माना कि अज्ञान के कारण जैसे वेद इस शब्दको पुरुष मानकर उसकी जाति तथा अन्य वार्त्तायें कल्पित करली हैं एवं संक्रान्ति को स्त्री मान कर उसकी आकृति वाहन भोजन शस्त्र आदि भी कल्पित हैं इन कल्पनाओं का फल कुछ नहीं। फल वही है जो कि परिवर्त्तन कालमें गुण तथा दोष को उत्पन्न करने वाला है। जिन महा पुरुषों ने संक्रान्ति के परिवर्त्तन में प्रकृतियों का परिवर्त्तन होना निश्चित किया है उन्होंने भोजनादि तथा स्नानादि एवं गृह शुद्धि ही का करना बताया है। अन्य कुछ नहीं कहा इतना ही कर्त्तव्य भी होता है। और दिनों की अपेक्षा रविवार अमावस्या के दिन होने वाली संक्रान्ति अशुभ मानी गई है इसका कारण प्रत्यक्ष ही है। उक्त दिन पूर्व कथनानुसार अच्छे योगों वाला नहीं पाया जाता। इत्यादि कारणों से संक्रान्ति एक परिवर्त्तन विशेष वाला दिन है। इस दिन

अन्य दिन की अपेक्षा कर्त्तव्य की विशेष आवश्यकता है। इस कथन से हमारा यह अभिप्राय नहीं कि सज्जन इसे बलात् करने को उद्यत होजायं अपना अभिप्राय तो इस प्रकार के कथनों से यह है कि इन दिनों के विधानों का मूल ऋषि वरों का वह विचार है जिसका वर्णन पहिले हो चुका है बिना आधार के किसी भी अच्छे या बुरे कार्य्य का होना सम्भव नहीं जिन विचारों के आश्रय ये कार्य्य होते हैं यदि जनता इनमें संशोधन करके विहित का व्यवहार करे तो कुछ हानि भी विदित नहीं होती।

इति संक्रान्ति विचार ४॥

विशेष वक्तव्य।

ज्यों ज्यों विचारोंका परिवर्त्तन होता गया त्यों त्यों कार्य्यों का रूप भी कुछ का कुछ होता चला आया यूँ तो प्रत्येक कार्य्य का कुछ न कुछ हेतु होता ही है जितने कार्य्य दृष्टि गोचर होते हैं सब का निमित्त उनके साथ ही होता है। परन्तु इस ग्रन्थ में जिनका वर्णन हुआ है उनका हेतु उनके अन्तर में है जो दिखाना आवश्यकथा सम्प्रति जो बहुत से कार्य्य होते हैं उन की सार असारता उसी स्थान पर कही जायगी जहाँ उनका वर्णन होगा। इससे आगे बड़े कार्य्यों का वर्णन होगा। जोवर्ष आरम्भ से वर्ष के अन्त पर्य्यन्त करने की आज्ञा है और किसी न किसी रूप से होते भी हैं। इनमें भी दो प्रकार के हैं एक सामान्य और द्वितीय विशेषों अब यह नहीं कहेंगे कि सामान्यों को पृथक् कहैं और विशेषों का वर्णन पृथक् हो यहाँ से जो भी जिस स्थल पर आजायगा वहीं उसका वर्णन होगा। उस में इतना अवश्य होगा कि यदि विदित होगा तो उचितानुचितता अवश्य कहेंगे। जो लुप्त प्राय हैं और उनका वर्णन तो

पाया आता है किन्तु उनका वर्णन केवल इतना होगा कि अमुक कार्य्य इस प्रकार होता था और यह उसका अभिप्राय था अग्रे सज्जनों को अधिकार है कि चाहे उसे ग्रहण करें वा न करें॥

यह पूर्व कह आये हैं कि मानवी समस्त रचना का आदि काल चैत्र शुक्ला प्रतिपदा ही ज्योतिर्विदों ने निश्चय करा है। अतएव हमेंभी अपने मंगल कार्य्यों का आरम्भ यहीं से करना योग्य है। यहाँ से आरम्भ करने पर हमें कुछ कल्पना करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। एक मंगल कार्य्य पुराकाल से यहीं से आरम्भ होता हैं इसी तिथि से आरम्भ होता है। सम्प्रति इस मंगल कार्य्य का नाम नवरात्र है। ऐसा विदित होता है कि पुरा आचार्य्यों ने वर्ष के छः २ मास के दो विभाग करके दो ही नवरात्रों का विधान करा है। दूसरे नवरात्र का समय आश्विन शुक्ला प्रतिप्रदा है। इनका वर्णन सहित हेतु के वहीं होगा प्रथम चैत्र के आरम्भ में होने वाले नवरात्र का वर्णन करना योग्य है। दोनों नवरात्रों का समय देखने से यह ज्ञात होताहै कि कार्य्य अत्यन्त उपयोगी और बहुत लाभदायक है। जो कार्य्य आवश्यकीय काल में यथातथ्य प्रकार से करा आता है वह अवश्य फल दायक होता है। चैत्र के महीने को जनता द्वितीय श्रावण कहती है। सूर्य्यभगवान बसन्त ऋतु में अपनी शोभन किरणों द्वारा वनस्पतियों में अनेक गुणों का आधान करते हैं सुगन्धितपुष्प जितने इसऋतुमें स्वतः उत्पन्न होतेहैं उतने और ऋतुमें नहीं होते खेतीभी इसकालमें अर्द्धपक्व दशामें रहती है। जनतामें यहबात प्रसिद्ध है कि अन्नोंमें दुग्ध उत्पन्न होने का समय यही है। वृक्षादि तथा अनेक लता गुल्मादि इसी काल में उत्पन्न होते हैं। सूर्य्य भगवान की प्रखर

किरणों से वायु मण्डल में विकृति आजाने की सम्भावना है। जिस से कि प्राणान्तक करने वाले रोगों की उत्पत्ति की सम्भावना है। जिन गृहों में जनता का नित्य निवास रहता है वह नित्य की शुद्धि होते रहने पर भी कुछ न कुछ अशुद्धि का भाग विशेष होजाता है। जैसे शरीर शुद्धि निरोगता के अर्थ अत्यन्त आवश्यक है वैसे ही शरी का शरीर स्थान भी शुद्ध ही होना योग्य है। यदि यहाँ यह शङ्का हो कि जब नित्य शुद्धि होती है तब फिर शुद्धि की आवश्यकता क्या है। इस शंका के उत्तर में प्रथम तो यह विचारना योग्य है कि जिन वस्त्रों की शुद्धि स्नान के साथ होती है उनमें भी कुछ कुछ अंश अशुद्धि का रहताही है। अधिक मलिनता के होजाने पर एकदिन रजक की शरण में उसे जाना पड़ता है। द्वितीय यह कि स्थानों के अधोभाग की ही शुद्धि नित्य होती है। उर्द्ध्व भाग की नहीं होती। तृतीय एक यह गुप्त बात है कि दीखने वाली मलिनता की शुद्धि तो होजाती है। अदृश्य अशुद्धि का ज्ञान साधारण प्रजा को होना कठिन है। इसका ज्ञान उन्हीं तत्व वेत्ताओं को हुआ कि जिन्होंने इस प्राण घातक अशुद्धि के अर्थ समयोचित इन कार्य्यों को करने की आज्ञा दी है आयुर्वेदविदों का विचार है कि यह शरीर मलों से परिपूर्ण है यद्यपि वे मल नित्य की क्रियाओं के द्वारा बाहर निकलते भी है तथापि उनका बहुतायत से शरीर में रहना यह निश्चय कराता है कि वे निशशेष नहीं होते हमारे शरीरों में दो प्रकार के श्वास नित्य निकलते हैं। एक वह जो बाहर से भीतर को जाता है। द्वितीय भीतर से बाहर को आता है यह शरीर से बाहर को आने वाला दुर्गन्धियों को लेकर ही बाहर निकलता है। जिन स्थानों में हमारा

नित्य निवास रहता है। इस निकलने वाले श्वास की दुर्गंधि से वह परिपूर्ण हो जाते हैं। वह दुर्गंधि विष है यद्यपि परमात्मा ने उस के संशोधन के अर्थ ऐसे जीव भी रच दिये हैं यह दुर्गन्धि जिनका आहार है। वह इस को भक्षण करने के अर्थ स्थान के अध ऊर्ध्व भाग में बहुतायत से रहते हैं। इनको जनता ने गौ महिष अश्व अजा अवि की भांति नहीं पाला उन को किसी हमारे परम हितैषी ने उत्पन्न किया है अतएव वे हमारे एक मात्र प्राण रक्षक हैं। वे स्वयं उत्पन्न नहीं हुए न उन्होंने अपने निवास का वह स्थान नियत किया वे तो क्या कोई भी अपने निवास का स्थान नियत नहीं करता। उनका करता जैसा उनके निवास का स्थान योग्य जानता है करता है। यह भी स्मरण रखना योग्य है कि अनेक प्रकार की सृष्टि अनेक स्थानों में रहने वाली है। जल के जीव जल की शुद्धि का कारण है। आकाश के आकाश की एवं पृथिवी के निवासी पृथिवी के अन्तर भाग की शुद्धि के करने वाले होते हैं स्थानों के अधः ऊर्ध्व भागों के जीव हमारे प्रश्वास द्वारा स्थानों को प्राप्त विष युक्त दुर्गंधित भाग के भक्षण करने वाले हैं। यद्यपि उनके द्वारा भक्षण होकर वह दुर्गन्धि न्यून होती है। तथापि निश्शेष न होकर कुछ भाग रहता ही है। प्राण घातक रोगों के उत्पन्न करने वाले मलों को नाश करने के अर्थ और अपनी पुत्रवत प्रजा के परम सुखार्थ ऋषिवरों ने छः २ मास में दो समय रक्खे हैं यदि यह शंका उत्पन्न होकि यह निश्चय अपना ही था किन्हीं अन्यों का भी है यह अपनी कल्पना नहीं है वर्त्तमान के पाश्चात्य वैद्य भी अपने ज्ञान से यह बताते हैं कि श्वास में एक प्रकार का विष होता है उनका कथन है कि इतने प्रमाण के स्थान में इतने से अधिक प्राणियों के शयन करने से हानि होती है। उन्होंने

इस को जान तो लिया परन्तु उपाय नहीं सोचा। पूर्वज ऋषि वरों ने इस भयंकर दोष को जाना भी और नित्य तथा समयों पर नाश करने के उपाय भी बताये। नित्य के उपायों में से प्रातः सायं का अग्नि होत्र है। और षट्मास वर्ष में अन्य उपाय हैं। छः मास की शुद्धि के अर्थ वर्ष के आरम्भ वाला यह नव रात्र का विधान है। जो कि प्रत्येक गृहस्थि को सहर्ष कर्त्तव्य है। परन्तु एक बात बड़े दुःख की है कि बड़े २ उत्तम हितकारी प्रजा के एक मात्र प्राणरक्षक कार्य्य अज्ञानियों के हाथ पड़ने से घृणित हो गये। यही नवरात्र का उपयोगी मंगल कार्य्य अपने स्वरूप तथा विधान से कितना सुहावना और उत्तम है। परन्तु स्वार्थियों तथा विषयियों ने उपकार करने के अर्थ इस के द्वारा द्रव्य तथा काल का वृथा व्यय और पवित्रता के स्थान में अपवित्रता का आरम्भकर दिया। सम्प्रति यह नव रात्र नाम वाला मंगल कार्य्य देवी की उपासना मानी जाती है। बलिदान मद्यपान इस कृत्यका मुख्य अंग होगये कृत्य के कार्य्य तो उसी प्रकार होते हैं जिन के देखने से इस कृत्य की पुरा आकृति का पता चलता है। परन्तु भाव और व्यवहार बदलने से अर्थ के बदले अनर्थ होता है। इस कृत्य की पुरा आकृति क्या थी इस ओर ध्यान देनेसे यह विदित होता है कि यह बड़ा रम्य और हितकारी कार्य्य था प्रथम तो इस कार्य्य को बहुत थोड़ी जनता उस रूप से करती है जिस रूप से करती है जिस रूपसे यह होना था। सम्प्रति तो यह स्त्रियों के आधीन होगया है। जो केवल व्रत मात्र ही से समाप्त कर-देती हैं। पुरा काल में वा वर्त्तमान में भी जहां कहीं होता है इस प्रकार होता है। प्रतिपदा के दिन गृह का एक भाग लेपन कर एक घट स्थापन करते हैं। उस घट के अग्रभाग में मण्डल जो अनेक चित्रकारियों वाला मैदा हलदी तथा अन्य

विचित्र रंगों से भूषित होता है। अनेक पुष्प यत्र तत्र स्थापित होते हैं। घट के समीप ही ईशान कोण में एक घृत का दीपक प्रज्वलित रहता है। एक व्यक्ति दुर्गा पुस्तक का पाठ करता है कुछ अंश में नित्य हवन होता है। इस प्रकार यह कृत्य सप्तमी पर्य्यन्त होकर अष्टमी को वृहद् हवन होकर समाप्त होता है।

वर्त्तमान में इस कृत्य में केवल दुर्गापाठ और एक दिन कुछ हवन होता है। जिस उपकार के अर्थ यह कार्य्य प्रारम्भ हुआ था वह लाभ उक्त व्यवहारों द्वारा नष्ट होगया। आकृति देखने से यह विदित होता है कि यह एक सप्ताह पर्य्यन्त निरन्तर होने वाला यज्ञ था। जिसमें वेद मन्त्रों के साथ नित्य थोड़ा २ हवन होकर अष्टमी के दिन वृहद् हवन से समाप्त होता था। इस कृत्य में शारीरिक आत्मिक सामाजिक तीनों सुखों का वीर्य्य वपन हुआ था। परन्तु सम्प्रति यह कार्य्य बाल क्रीड़ा वत होकर जनता के धन और काल का वृथाव्यय करके समाप्त होजाता है। इस कृत्य के अङ्ग बहुत नहीं बिगड़े बहुत थोड़े अन्शों में परिवर्त्तन की आवश्यकता है। यज्ञमण्डप उत्तम रीति पर भूषित होना चाहिए। हवन नित्य हो वेद पाठ के ही द्वारा हवन हो समाप्ति में वृहद्हवन उत्तम द्रव्यों द्वारा होना चाहिये। यदि विचार कर देखा जाय तो पाठ और जनता का भाव बदलने से पूर्ण आर्य्य सम्मत हो जाय। ऐसे आर्य्यसम्मत कार्य्यों को आर्य्यसज्जन यदि ध्यान से शुद्ध करने का श्रम उठायें तब बहुत ही उपकार हो। जैसे निरहिंसक हिंसाकारी से जीव को छुड़ाकर अपने को पुण्यात्मा मानता है इसी प्रकार इस परमोत्तम कार्य्य को मूर्खों के हाथ से छुड़ाकर अपने को पुण्यात्मा बनाना योग्य है इसमें भेद इतना है कि अब तक दूसरों के हाथ पड़े कार्य्य को सुधारक स्वयं

करके नहीं दिखाता तब तक अन्यों को उसके करने का साहस नहीं होता अब तक आर्य्यसज्जनों ने मूर्खों के द्वारा होता देख सर्वथा निन्दा पर ही ध्यान दिया इस कृत्य के कृष्ण पक्ष को ही जनता के सम्मुख रक्खा उज्वल पक्ष का रूप नहीं दिखाया। यदि उज्वल पक्ष का रूप दिखाया जाता तो सम्भव था कि ह्रास के स्थानमें वृद्धि होती अब भी कुछ दूर नहीं गये सुबह का भूला सायंकाल को गृह पर आजाय तो भूला नहीं कहाता। अतएव विचार शील सज्जनों को इसपर भिन्न चक्षुषा विचार करना योग्य है। मत्सरता को छोड़ न देना चाहिए। मत्सरता से कार्य्य अपना सिद्ध न हो न दूसरों का। दोनों के कार्य्य न होकर न्याय के बदले अन्याय बनता है। वह विद्वान् नहीं माना जाता जो कार्य्यों को दूसरों का मानता है। कार्य्य सर्व बुद्धिमानों के बताये हुए हैं। उनकी बुराई जो मूर्खों के द्वारा होगई है अवश्य पृथक कर देनी चाहिये। ओ३म् शम् ॥

॥ इति नवरात्र विचार ॥५॥

अथ दुर्गा अष्टमी।

यह कृत्य भी चैत्र शुक्ला अष्टमी को होता पाया जाता है। यह कृत्य किसी काल विशेष से आरम्भ हुआ है। संस्कृत साहित्य इस कृत्य के विषय में यह बताता है कि इस दिन एक महती व्यक्ति का जन्म हुआ है इस व्यक्ति विशेष का नाम श्रीमती दुर्गादेवी था यह व्यक्ति किस काल में हुई इसका पता संस्कृत साहित्य से केवल इतना ही चलता है कि यह त्रेतायुग से पूर्व सतयुगमें हुई जन्मतिथि अष्टमी बताईगई है। इस देवी का इतना मान किस कारण जनता में हुआ इसका कारण यह कहा जाता है कि सतयुग में शुम्भ निशुम्भ रक्त बीजादि नाम के कतिपय व्यक्ति होगये हैं। उनके व्यवहारों तथा कर्त्तव्यों

के देखने से यह पता चलता है कि वे सदाचारी नहीं थे। परन्तु थे शक्तिशाली जिसकाल में इन व्यक्तियों का होना बताया जाता है उस काल में सूर्य वंश का सुरथ नाम राजा आर्यवर्त्त का राजा था। उसके साथ इसका युद्ध हुआ है। सुरथ नाम राजा को पराजय करके राज्य के अधिकारी हो गये। पाठकगण यह आप भलीभांति जानते हैं कि अधर्मी राजों के समय प्रजा की क्या दशा होती आई है। इतिहास इसका साक्षी है अन्य अनेक अत्याचारों के अतिरिक्त जब सतियों के सतित्व नष्ट होने लगे तब इस अत्याचार का सहन इस भगवती दुर्गादेवी से न होसका। स्त्री जाती की क्षति से रोष को प्राप्त होगई। यौवनावस्था के कारण रोष को न सह-सकी। और शास्त्रों को धारण शुम्भनिशुम्भादि से जा जुटि परमात्मा की असीम शक्ति इसकी सहायक हुई। कई वर्षों पर्य्यन्त युद्ध होता रहा। अन्त को धर्म्म की जय हुई निशुम्भा-दि परास्त हुए देवी की जय घोषणा की ध्वनि धरातल में गूंजी। प्रजा में धर्म की स्थापना हुई दुर्दशा में सहायक की महिमा का गान करना क्या अनुचित है। इस महता व्यक्ति का प्रजा ने बड़ा उपकार माना इसकी मृत्यु के पश्चात् यत्रतत्र स्मारक बनने लगे और जन्मतिथि से उत्सव मनाने की प्रथा चली यद्यपि यह एक ऐतिहासिक घटना है परन्तु इस प्रकार की व्यक्तियों के स्मरण दिन से एक उपदेश ग्रहण होता है। सदाचारणी व्यक्ति का स्मरण सदाचार का स्थापन करने वाला है सुनते हैं कि दुर्गादेवी ने प्रजा के उपकार के अर्थ विवाह नहीं कराया यौवनावस्था की तरंगों का सहन करना अच्छा आना। सदाचार इस व्यक्ति का विख्यात है स्त्री तथा पुरुषों को इस व्यक्ति के सद् व्यवहारों से एक प्रकार का उपदेश ग्रहण करना योग्य है अन्य करना न करना सज्जनों के अभि-

कार में है। अपना कार्य तो पुन व्यवहारों की सारता तथा असारता दिखाना है।

॥ इति दुर्गाष्टमी ॥ ६ ॥

अथ रामनवमी।

यह मङ्गल दिवस चैत्र शुक्ला नवमी को होता है। जगत् विख्यात श्री महाराज रामचन्द्र की जन्म तिथि यही नवमी मानी जाती है। इस उत्सव का आरम्भ काल त्रेतायुग का अन्त कहा जाता है। जिसकी संख्या इस समय आठ लाख से ऊपर होती है। श्रीमहाराज रामचन्द्र का जीवन चरित्र बाल मीकीय रामायण में बहुत विस्तार से वर्णित है। आपका धैर्य सत्यवादिता वाक्य पालन निर्लोभता आदि सराहनीय हैं। इस प्रकार की व्यक्ति विशेषों के जन्म उत्सव मनाने के दो कारण प्रतीत होते हैं। एक तो यहां के उनकी उत्पत्ति का काल विदित रहे। द्वितीय यहां की जनता में सदाचार का प्रचार हो। वर्त्तमान में श्रीमहाराज रामचन्द्र के अनन्य भक्त जिस प्रकार इस उत्सव को मनाते हैं प्रत्यक्ष ही है। कौनसा दुराचार है जो आज के दिन नहीं होता जहां महाराज के सद्गुणों का गान कर्त्तव्य था वहां आज वेश्याओं का गान होता है जो समस्त पापों की योनि है। जो महात्माओं के सत्चरित्रों का लोप कर दुराचारों का प्रचार करता है वह स्वर्ग की इच्छा न कर घोर नरक जाने की इच्छा करता है सज्जनों को योग्य है कि ऐसे पवित्रात्माओं के जन्मोत्सवों पर लक्ष्मी का दुरुपयोग न कर उत्सव से कुछ लाभ उठायें। ऐसे महा पुरुषों के जन्मोत्सव समय में उन के उच्च व्यवहारों का स्मरण कर्त्तव्य है। और उन स्मरणसे प्राप्त हुए आचारोंका अपने व्यवहारोंमें नित्य व्यवहार करना कल्याण कारकहै। यदि श्रीमहाराज रामचन्द्र की

मातृ भक्ति ही जनता में आजाय तो जनता का पशुपन नष्ट हो मनुष्यता प्राप्त हो जाय इस प्रकार के जन्मोत्सवों को क्रीड़ारूप से मनाना पशुता है अनर्थ है अपनी इष्ट व्यक्ति का अपमान है इस प्रकार के व्यवहार करके अपने को श्रीरामचन्द्र का भक्त कहते लज्जा नहीं आती अपना प्रत्यक्ष नाश और साथ ही में अन्यों का नाश करना क्या धर्म्म है अतएव सज्जनों को योग्य है कि उच्चकोटि की आत्माओं के जन्मोत्सव से कुछ लाभ प्राप्त करें जन्मोत्सव श्रीमहाराज का मनाना कर्त्तव्य है यदि वह उसी प्रकार से मनाया जाय जैसा कि उसके मानने वालों ने मनाना आरम्भ किया था अन्यथा त्याज्य है इस प्रकार जैसा आज दिन मनाया जाता है न करना ही अच्छा है ॥

॥ इति राम नवमी ॥७॥

अथ हनुमज्जयन्ति

चैत्र शुक्ला पौर्णिमा को उक्त नाम वाला उत्सव दक्षिण प्रान्त में मनाया जाता है। यद्यपि यह कृत्य इस प्रान्त में नहीं होता तथापि जहां भी होता है वहीं की जनता को इस का वृत्त विदित होगा। सुना जाता है कि इस तिथि को श्री हनुमान जी महाराज का जन्म हुआ है। दक्षिण प्रान्त में यह उत्सव समारोह के साथ मनाया जाता है। श्रीमहाराज हनुमान जी का नाम समस्त भारत में विख्यात है। मल्ल युद्ध करने वालों के आप इष्ट देव हैं। हनुमानजी महाराज के गुणों का गान करना इस स्थान पर वृथा है श्रीहनुमानजी के चरित्रों का वर्णन रामायण के भक्त अपनी मूर्खता से इनको बानर ही कहते हैं। यह उनकी भ्रांति है हनुमान जो बानर जाति के थे वह एक 'मनुष्य जाति ही है'। पशुओं का राज्य और राज्य सम्बन्धी विभिन्न सेना आदि आज तक देखने तथा सुनने

में नहीं आये। न पशुओं का भाषण मनुष्यों के तुल्य देखा जाता है हनुमान जी का भाषण श्री महाराज रामचन्द्र के साथ संस्कृत में हुआ है। हनुमान जी का भाषण सुनके रामचन्द्र जी महाराज लक्ष्मण जी से कहते हैं कि (नानृग्वेद विनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः। नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम् ॥ वाल्मीकीये रामायणे किष्किन्धाकाण्डे २८ श्लोकः।

ऋग्वेद का तथा यजुर्वेद एवं सामवेद का न जानने वाला ऐसा भाषण नहीं कर सकता अतएव हनुमान जी वेदों के ज्ञाता हैं इससे आगे कहते हैं कि (नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्। बहुव्याहरताऽनेन न किंचिदपशब्दितम्) केवल पाठ मात्रही वेद नहीं पढ़ा व्याकरण शास्त्र के भी अच्छे ज्ञाता हैं आपने जितना भाषण किया उसमें एक पद भी अशुद्ध नहीं बोला इससे जाना जाता है कि हनुमानजी मनुष्य थे और जाति से ब्राह्मण भी थे यहभी सुनाजाता है कि ये केवल सुग्रीव के मन्त्री ही नहीं थे जामाता भी थे। इनकी शूरता का वर्णन रामायण में वर्णित है आपने श्रीमहाराज के अद्भुत रूप से कार्य करे हैं ऐसे आदर्श पुरुषों के जन्मोत्सवों से जनता को बहुत लाभ प्राप्त होना सम्भव है विशेषतया मल्लों को इनके चरित्रों का अनुकरण करना योग्य है॥

क्या मल्लयुद्ध के करने वाले यह नहीं जानते कि जिस प्रकार हम मल्लयुद्ध की क्रीड़ा से जनता का धन हरण करते हैं यह अनुचित है आप के इष्टदेव हनुमानजी महाराज ने अपने बल से अन्यों का उपकार करा क्या उन्होंने हमारी भाँति धन बटोरा बलवानोंका बल निर्बलोंकी रक्षा के अर्थ होताहै। हनुमान जी को अपना इष्टदेव मानने वालों को अपने बल से

निर्बलों की रक्षा करनी योग्य है। बलका वृथा उपयोग कर के कलँकित मत बनो सम्प्रति बल का प्राप्त करना निर्वलों को सताना ही समझा जाता है यह पाप है। इष्टदेव बनाया ही इसलिये जाता है कि एक सद्व्यक्ति के सच्चरित्रों का अपने में आधान करें। इसके अतिरिक्त उनको अपना इष्टदेव मानना वृथाही नहीं, सद्व्यक्ति को भी कलँकित करना है। ओ३म् शम्

॥ इति हनुमज्जयन्ती ॥ ८ ॥

अथ मेषी संक्रान्तिः ।

यद्यपि संक्रान्ति का वर्णन पूर्व होगया है। तथापि जो संक्रान्तियाँ विशेष कारण से मानी गई हैं उनका वर्णन पृथक् करना भी आवश्यक है। सूर्य्य के एक राशि से द्वितीय राशि पर संक्रमण करने से संक्रान्ति नाम पड़ा है अतएव संक्रान्ति की तिथि निश्चित होना कठिन है परन्तु यह देखा जाता है कि प्रायः यह मेषी संक्रान्ति चैत्र शुक्ल वा वैशाख कृष्ण में ही होती है। यह भी पूर्व कहआये हैं कि पक्ष मास षाण्मासकी अपेक्षा वर्ष का परिवर्त्तन पूर्णरूप से माना गया है सूर्य्य वर्ष में बारहों राशियों का संक्रमण करके फिर उसी स्थान पर आता है जहाँ से भ्रमण आरम्भ हुआ था। मेष की संक्रान्ति को अन्य संक्रान्ति की अपेक्षा विशेष मान्य देने के दो कारण यह प्रतीत होते हैं कि प्रथम तो यह सृष्टि के आरम्भ का स्मरण कराती है द्वितीय परिवर्त्तन का भी पूर्ण काल है। यह काल शीतोष्ण के अधिक न होने से जनता के अर्थ सुखदायी है। ग्रीष्म में घाम की बाधा और वर्षा अति कठिन काल प्रत्यक्ष ही है। शीत में शीत की अधिकता का भय होता है अतएव सर्व प्रकार निर्बाधक यही काल जाना गया। समय सुहावना एक स्मरण योग्य काल का स्मारक वर्ष का पूर्ण परिवर्त्तन इस से उत्तम

और काल मिलना कठिन था। अतएव यह परमोत्तम समय जान यह घोषणा हुई कि अमुक संक्रान्तिको अमुक दिन अमुक स्थान पर एक प्रदर्शनी होगी देशकी समस्त जनता उपस्थित हो। इस प्रदर्शनी में विद्या परिषद् भी होगी जिस में देश के मुख्य विद्वान् एकत्रित हो अनेक विषयों पर सुन्दर व्याख्यान सुनायेंगे धर्म्मप्रेमियों के लिये यह अवसर उत्तम है। देशभर के व्यापारी भी अवश्य पधारें। यद्यपि इसके लिये किसी भी बृहत् नदीका स्थान पर्य्याप्त था तथापि अपनी उत्तमता से तथा भारत के प्रसिद्ध नगरों के समीप होकर जाने से गङ्गा ही ने यह सौभाग्य प्राप्त किया। यदि यहां यह शंका हो कि गंगा भी अनेक बड़े बड़े नगरों के समीप होकर गई है हरिद्वार ही क्यों नियत किया तब इसका समाधान पाठक स्वयं अपन विचारसे यूँ करलें कि उन बड़े नगरोंमें गगा का जल उत्तम नहीं रहता अनेक नदियों के मिलते चले आने से जल में दोष आता गया हैं। उत्तरखण्ड का पवित्र स्थान और गंगा का स्वच्छ स्रोत तथा तपस्वी साधुओं का सुगमतया प्राप्त होना यहीं पाया गया। प्रायः मेषी संक्रान्ति का जन संगठन चिर काल से यहीं होता है अनेक लाभों को प्राप्त कराने वाला यह जनसंगठन विद्वानों ने जिस आशय से आरम्भ किया था उस आशय से सम्प्रति होता नहीं, वर्त्तमानमें तो यह संगठन क्रीड़ा रूप में परिणत होकर कण्टक रूप होगया। विद्वानोंका विचार था कि जनता इससंगठनसे आत्मिक शारीरिक सामाजिक तीनों लाभ प्राप्त करे, जो कि मनुष्य जन्म का मुख्य उद्देश माना गया है। जिस संगठन में देश देशान्तरों के दर्शनीय पदार्थ और अनेक आत्मिक ज्ञान के देने वाले महापुरुष एकत्रित हों उससे उत्तम और क्या होगा। इस संगठन के कई रूप रक्खे गये हैं। यह तो वर्ष का सम्मेलन एक दो

प्रान्त का सम्मेलन था। इसके अतिरिक्त एक संगठन इसका ६ वर्ष में होता है। इसका नाम अर्द्धकुम्भी है इस संगठन का अभिप्राय यह था कि जिन देशों के सज्जन वर्ष भर में नहीं सम्मिलित होसकते वे इस संगठन में अवश्य पधारें। तीसरा संगठन इसका १२ वर्ष में होता है। इसमें साधारण जनता के अतिरिक्त भारतके माण्डलिक राजा तथा चक्रवर्त्तीय सम्राट्भी पधारने की कृपा करते थे। सम्राट् की देख रेखमें अनेक समितियों का सम्मेलन साधारण जनता को अनायास प्राप्त हो यह क्या थोड़ा लाभ कहा जासकता है। कैसा सरल उपाय है जो लाभ साधारण जनता को अवस्था भर प्राप्त होना दुर्लभ है वह इस संगठन के द्वारा सुलभतया होना सम्भव है। इस संगठन के द्वारा पुरा जितना द्रव्य का सदुपयोग होता था सम्प्रति उतना ही दुरुपयोग होता है। इस प्रकार के संगठनों के कार्य्य सम्राट् के आधीन होते थे सम्राट् कोही अधिकार होने से द्रव्य का सदुपयोग हो सकता है। कारण कि अतुल दान का एकत्रित होकर यथोचित व्यय होकर ही सब को यथायोग्य फल मिल सकता है। वर्त्तमान में जनता के दान के ग्रहण करने वाले वे व्यक्तियां हैं जो दुराचारियों के स्वामी बने बैंठे हैं। पण्डों को धन देने की प्रथा इस हेतु से थी कि वे स्थानादि के द्वारा जनता को सुख पहुंचाते थे। जो द्रव्य उनको दिया जाताथा घा है वह केवल स्थान का शुल्क है। इतने हो मात्र देना उचित भी है और अनेक मठधारी धन हर कर लेजाते हैं। इन अनेक लाभों के मूल संगठन पर विचारशील ध्यान देकर उपयोगी बनाने का प्रयत्न करें तो अनेक उत्तम संस्थाये लाभ उठा सकती हैं। सम्प्रति यह संगठन और स्थानों पर भी होता पायाजाता है। जैसे कि मकर की संक्रांति में प्रयाग राज के निकट त्रिवेणी सङ्गम पर एवं उज्जयनी में।

यह कहना कठिन है कि अन्य प्रान्तों में यह संगठन किसी लाभ विशेष से होना आरम्भ हुआ एक स्थान के लाभके कारण अन्य स्वार्थियों ने करना आरम्भ किया वा इस प्रकारके संगठन वस्तुतः देशकी जनता में एक नवीन जीवन के उत्पन्न करने वाले मानेगये हैं। वर्त्तमान की दशा को न देख यदि पुरादशा पर ध्यान दिया जाय तो वह काल हर्ष को उत्पन्न करने वाला है जबकि सर्वसंस्थाओं के कार्य्य सम्राट् के समक्ष निश्चित होते होंगे। प्रजाकी सुदशा तथा दुर्दशा का चित्र सम्राट् स्वयं अपने नेत्रों से देखे और प्रजा सम्राट के दर्शन कर प्रसन्न हो। अपने हितैषी बलवान् व्यक्ति को देख निर्बल साधारण का हृदय भी निःशंक हो जाता है। प्यारे मित्रों ? तुम्हारा सम्राट् तुम्हारी आँखों की ओझल है किसी व्यक्ति की दुर्दशा देखकर वा श्रवण करने पर ही दया का संचार मनमें होता है, हमारे सम्राट् के लिये दोनों ही असाध्य हैं। न सम्राट् को तुम्हारा मोहही है, भारत की जनता सम्राट् को इतनी प्यारी जनता नहीं होसकती जितनी कि उसके देशकी। अतएव इस संगठन को भारत के सज्जन स्वयंही उठायें तो अच्छा हो किसी गिरी हुई दशाको उठाने के अर्थ एक हितैषी सभ्यकी आवश्यकताहै। अतएव जनता को स्वयं सभ्य बनने का प्रयत्न करना योग्य है। संगठन के लाभों पर विचार होकर कार्य्य कर्त्तव्य है। सम्प्रति इस संगठन में उस मूर्ख जनता का बाहुल्य होता है जो केवल शरीर के चर्म्म धोने मात्र ही में अपने को कृतकृत्य मानती है। देशके नेता बनने का अभिमान और कार्य्य महामूर्खों के जिन विचारों को सुन भारत देशके सज्जन भी स्वयं लज्जित होते हैं अन्य देश के विचार शीलतो ऐसी वृत्तिवालों को घृणा की दृष्टि से ही देखते हैं। भला शोचिये तो सही नांगा साधु संन्यासी

निर्मले, उदासी, वैरागी एवं वैरागाराम इसी बात पर प्राण देदेते हैं कि प्रथम स्नान हमारा होगा इस स्नान के दिन साधुओं के अखाड़े बड़ी सज धजसे जाते हैं और एक स्थान विशेष (हरकी पैड़ी) पर ही स्नान का फल मानते हैं। क्या सज्जनों की दृष्टि में साधुओं का यह ज्ञान सांगोगाँग मूर्खता नहीं है। भला इनसे कोई यह प्रश्न करै कि क्या साधारण जनता मुक्ति की इच्छासे यहाँ नहीं आई अरे परोपकार के शत्रुओं मुक्ति की घड़ी तो तुह्मारे संग्राम से तुमसे भी निकल गई. औरों की तो तुमने क्या छीनी तुम्हें भी नहीं मिली निर्लज्ज सभा के सभापति नाँगा बावा अपने को साधुओं में श्रेष्ठ मानते हैं वाहरी श्रेष्ठता तूभी कहाँ जामरी। यह समस्त दिन स्नानके ही समर्पण होता है बहुतों के प्राण पखेरू तो सदा के लिये ही चल बसते हैं कितनेही निर्बल अंग भंग हो जाते है। चुटैल बलवान भी होही जाते हैं। सज्जनों जहाँ आपका तन मन धन देश के सुधार के अर्थ हैं उसमें से इस संगठन के अर्थ भी कुछ व्यय करके इस मूर्खता को निकालो यदि यही विश्वासाभास है कि गंगास्नान से मुक्ति होती है तो गंगा के सभी स्थलों के जलमें मुक्ति देने का गुण होगा जहांभी कहीं अवसर मिले प्रातःस्नानकर अन्य उपकारी कार्य्यों में लगो। इस उत्तम संगठन को विगाड़ पापके भागीमत बनो जो सज्जन इस संगठन को सुदशा पर लाने का उद्योग करें उनकी आज्ञानुसार अपने बलभर तनमन धन से सहायता करो। इस देशनाशनी मूर्खता और निर्लज्जता को त्याग अन्य मतावलम्बियों की दृष्टि में सभ्य बनो तभी अपने मंगलकी आशा करो ईश्वरभक्त तथा देशभक्त ही मुक्ति के भागी हो सकते हैं स्वयं विचारो अपने तथा अन्यों को दुःख दायी कार्य्य पाप हैं पापी पापसे मुक्ति की इच्छा करै यह उलटी बात है। संगठन से लाभ उठाने की यही

विधि है कि इस के उन अंगो की जो कि अपने देशके उन्नत करने वाले हैं बढाओ इसे क्रीड़ा रूपसे जो बालकों का कार्य्य है कार्य्य रूप में परिणत कर स्वयं सुख के भागी बन अन्यों को बनाओ पुराकाल को और वर्त्तमान काल को रात्रि दिवस वा आकाश पाताल का अन्तर कहें तो अनुचित नहीं, ऋषियों के समय भारत कार्य्यक्षेत्र था सम्प्रति क्रीड़ाक्षेत्र हो रहा है। ऋषियों के कालमें भारत अन्य देशों का गुरु माना जाताथा वर्त्तमान में शिष्य कहाजाता है भारत की इस दुर्बलता का मुख्य कारण हमारी मूर्खता ही है। यदि सुख चाहते हो तो सज्जनो के उपदेशों के अनुसार अपने चालढाल रक्खो मूर्खता का परित्याग करो।

इति मेषी संक्रान्ति विचारः ॥ ६ ॥

अथ सक्तू तृतीया विचार

यह भी एक मंगल दिवस माना जाता है। तिथिपत्र देखने से इसके दो कारण विदित होते हैं एकतो यह कि यह दिवस श्री महाराज परशुराम जी का जन्म दिवस है। परशुरामजी अपने बल विद्या से स्वयंही आबाल पर्य्यन्त विख्यात हैं। उनके वर्णन विशेष की आवश्यकता नहीं। द्वितीय कारण यह है कि विधिपूर्वक नवान्न ग्रहण करने का यही दिवस नियत किया गयाथा नवान्न ग्रहण करने के समयभी एक कृत्य विशेष की आवश्यकता है। इसदिन और दिन की अपेक्षा गृहादि की शुद्धि विशेष होकर नवान्न द्वारा विधिवत् हवन आदि कर्त्तव्य है। इस प्रान्त में इस दिन कुछ विशेष कर्त्तव्य नहीं होता सुनते हैं कि पूर्व में यह मंगल दिवस बहुत समारोहके साथ मनाया जाता है। कहीं २ मेले के रूपमें अधिकता

से भी होता है। इस कृत्य के अर्थ वैशाख शुक्ला तृतीया निश्चित की गई है। एक कारण इसके सतुआ तीज नाम पड़ने का यह भी प्रतीत होता है कि आजके दिवस से जनता को सत्तू (यह भुंजे यवों का होता है) भक्षण की आज्ञा दी गई है। यह आज्ञा उन आयुर्वेदविदों की प्रतीत होती है। जनता की स्वस्थता का भार जिन्होंने अपने हाथों में लिया है या प्रभुने सौंपा है। इनका कार्य्य यह है कि रोगियों को रोगसे मुक्त करना और स्वस्थों को रोगों से बचाना। यहभी आयुर्वेदविदों का निश्चित सिद्धान्त है कि रोग दोषों की वृद्धि या क्षयके बिना नहीं होते, दोष किसी हेतु विशेष के बिना क्षय तथा वृद्धि को प्राप्त नहीं होते. वह हेतु मनुष्योंके कर्म अर्थात आहार विहारसे उत्पन्न होता है। कर्म्मज रोग को छोड़ कर शेष रोग आहार विहारकी शुद्धि से प्रायः नहीं होते प्रायःदोषों का सञ्चय तथा प्रकोप ऋतुओं के परिवर्त्तन पर होता है। ऋतु से उत्पन्न होने वाले दोषों की शुद्धि के अर्थ ही आयुर्वेदविदों ने इस प्रकार के व्यवहार नियत करेहैं। यह भी पाठक गण को विदित हो कि वैद्यों में उत्तम वैद्य वही माना गया है—

(विनापि भेषजैर्व्याधिं पथ्यादेव निवर्त्तयेत्)

जो औषधि का प्रयोग न करके केवल पथ्य रूप आहार से व्याधि को शमन करने का अभ्यासी हो। मीन और मेष को वसन्त माना गया है वह काल वसन्त के समाप्त होने का है और ग्रीष्म के आगमन का है सूर्य्य की प्रखर किरणों से पित्त के बढ़ने की सम्भावना है। इस कालमें ऐसे पदार्थों का सेवन श्रेयस्कर मानागयाहै जो पित्तके रोगोंको तथा पित्तकोअधिक होने से शान्त रक्खें। सक्तु के गुण देखने से भी यह विदित होता है कि यह इस समय भक्षण किया हुआ लाभदायक है।

(नवीननिस्तुषोऽभ्रष्टा यवचूर्णञ्च सक्तवः सक्तवो यवजाः शीता दीपना लघवः सराः । कफपित्त हरा रूक्षा लेखनाः पानतस्तु ते ॥ सद्यो बलप्रदाः पथ्या घर्म्मादिक्रान्तदेहिनः । निस्तुषैर्भ्रष्टकैर्भ्रष्टैस्तूर्याशैश्च यवैः कृता । सक्तवः शर्करासर्पिर्युक्ता ग्रीष्मेऽतिपूजिताः ॥)

नवीन यवों को भुंजाकर इसी प्रकार चणों को भुंजाकर दोनों का सक्तु शर्करा घृत से बनाकर भक्षण करने से बल को देता है तृप्ति करता है पित्त के रोगों में तथा पित्ताधिक्य में अत्यन्त हितकर है । ग्रीष्मऋतु में आहार के योग्य है पित्त के रोगों से रक्षा के अर्थ इस तृतीया से सक्तु भक्षण की आज्ञा है । पाठक गण यह जानते ही हैं कि भारतकी ईश्वर भक्त प्रजा सब कार्य्यों को मंगल रूप से आरम्भ करने की अभ्यासी है । यहां इतना वक्तव्य विशेष है कि सब कार्य्य सब प्रकृतियों को अनुकूल नहीं होते जिस स्थान वा काल में प्रकृति को यह अनुकूल न हो वहां केवल माहात्म्य मात्र से ही आरम्भ न करें जहां इस का प्रचार हो वहां निषेध की भी आवश्यकता नहीं । प्रत्येक की सारता तथा असारता को विचारकर कार्य्य करना बुद्धिमत्ता है ॥

इति सक्तु तृतीया विचारः १०

नृसिंह चतुर्दशी ।

सम्प्रति यह नृसिंह चतुर्दशी वाला कृत्य लुप्तप्राय ही दृष्टि गोचर होता है । इसके विषय में जनता को जो कुछ ज्ञान प्राप्त कराया गया है वह निरर्थक है । जनता उससे लाभ प्राप्त

करने के स्थान में उलटा ज्ञान प्राप्त करती है। जो नितान्त असम्भव है। सत्ययुग में हिरण्यकशिपु एक व्यक्ति विशेष हुआ है भगवद्भक्तों के शिरोमणि प्रल्हाद जी हिरण्यकशिपु के ही पुत्र बताये जाते हैं। हिरण्यकशिपु के विषय में कहा जाता है कि वह नास्तिक था नास्तिक इस समय भी बहुत हैं किन्तु हिरण्यकशिपु का नास्तिक पन विचित्र था नास्तिकों का विचार है कि ईश्वर जगत् का कर्त्ता कोई नहीं है यह सृष्टि स्वयं उत्पन्न होती और बिगड़ती है। मनुष्य को अपने कर्म्म उत्तम करने से सुख और अधम करने से दुःख प्राप्त होता है। सुख के अभिलाषियों को अपने कर्म्मों को उत्तम करने का प्रयत्न करना चाहिये। यदि यह भी कल्पना करलें कि ईश्वर एक शक्ति विशेष अवश्य है तब भी उत्तम कर्म्मों के बिना सद्गति होना कठिन है कारण कि ईश्वर भी कर्म्मों के फल का ही देने वाला बताया गया है। हिरण्यकशिपु कहता था कि मेरे अतिरिक्त ईश्वर है ही नहीं जो कुछ भजन पूजा पाठ करा जाय मेरे ही स्मरण द्वारा हो इन्हीं महाशय के औरस पुत्र महाशय प्रल्हाद भक्तों के शिरोमणि हुए हैं। प्रल्हाद के शरीर में जन्मजन्मान्तर के संस्कारों से ईश्वर भक्ति कूट २ कर भरी गई थी जब हिरण्यकशिपु को यह विदित हुआ कि पुत्र के विचार मेरे विचारों के विपरीत हैं तब इसने प्रथम सामनीति के द्वारा समझाया प्रल्हाद के विचारोंने अपने पिता के विचारों से टक्कर न खाई तदनन्तर दामनीति से अनेक प्रकार के त्रास देने आरम्भ किये कभी पर्वत से पतन कराया कभी अग्नि में जलवाया प्रल्हाद ने सबको सहन किया परन्तु आस्तिकत्व न छोड़ा अन्तर्यामी परमात्मा सब अवस्था में शरीराभ्यन्तरस्थ मर्मोंकी रक्षा करते रहे। अन्त को एक दिन सायंकाल के समय स्वयं खड्ग लेकर मारने को उद्यत हुआ हिरण्य

कशिपु के अत्याचारों का भी अन्त हो चुका था इसीसमय एक नृसिंह नाम व्यक्तिविशेष अकस्मात् उपस्थित हुआ और हिरण्यकशिपुका वधकर प्रल्हाद महाशय की रक्षा की निर्बलों के बल भगवान् अन्तर्यामी नित्य ही रक्षा करते हैं । इस कार्य्य को भी वे स्वयं करने को समर्थ थे।परन्तु व्यक्ति विशेष के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से इस कारण कराते हैं कि अन्यों को यह विदित होजाय कि पापी प्राणान्त दण्ड इस प्रकार पाता है। जनता प्रत्यक्ष के ही द्वारा शासन से शिक्षा ग्रहण करने की बुद्धि वाली देखी जाती है। नृसिंह के शब्द के अर्थ यह हैं कि जो पुरुषों में सिंहवत् साहसी हो निर्भय हो नृसिंहके विषय में जो यह कहा जाता है कि वह लोहे के तप्त खम्भ को विदीर्ण करके उत्पन्न हुआ उसका अर्द्धशरीर सिंह काथा सब बेसमझी की बात है। ईश्वरीय नियम के विरुद्ध है यही मानना योग्य है कि वह एक व्यक्ति विशेष हिरण्यकशिपुके अत्याचारों का फल देने और प्रल्हाद भक्तकी रक्षा के अर्थ परमात्मा की ओर से प्राप्त हुए थे। ऐसे महापुरुषों के जन्मोत्सव से यही शिक्षा ग्रहण करनी योग्य है कि परमात्मा को जो इस समस्त प्रपञ्च का सर्वअवस्थाओं में स्वामी जो हमारे अन्तरमें व्याप्त हमारा रक्षक है,कभी भूलना नहीं चाहिये अपने कोअहंकार से सब का स्वामी न मानना चाहिये सृष्टि में हम सब परस्पर सेवक हैं यह मनुष्य की भूल है कि यह अपने को स्वामी मानता है स्वामी और सेवक के लक्षणों पर दृष्टि देने से यह विदित होता है कि स्वामी के लक्षण सेवकों में पाये जाते हैं मनुष्य आकृति से सब एक ही से दृष्टिगोचर होते हैं स्वामी के शरीर में स्वामित्व को प्रकाश करने वाला कोई अंग विशेष नहीं देखा जाता केवल इस एक लक्षणसे कि जो बैठे २ पदार्थों का भोग करे वह स्वामी और देशान्तर से भोग्य वस्तुओं को

लाकर प्राप्त करे वह सेवक है। इस लक्षण द्वारा तो जो स्वामी पन का अभिमानी है वह सेवक है। स्त्रियों के मनुष्य स्वामी कहाते हैं परन्तु इस लक्षण की कसौटी से सेवक हैं स्त्रियां गृहमें रहती हैं पुरुष देशान्तर से उनके अर्थ भोग्य सामग्री लाता है पशु गृह पर रहता है स्वामी संज्ञा वाला उसका सेवक है इत्यादि विचारों से अपने को अहंकार युक्त न करना और सब अवस्थाओं में अपने रक्षक परमात्मा को वेद विहित आज्ञाओं का पालन करना योग्य है। ऐसा न करने और हिरण्य-कशिपु वाले विचारों के करने से वही दुर्गति प्राप्त होनी सम्भव है जो नृसिंह के हाथों हिरण्यकशिपु की हुई। मित्रो भारत को क्रीड़ारूप कार्य्यों से निकाल कार्य्यक्षेत्र बना पुण्य के भागी बनो ऐसे निरर्थक विचार तथा कार्य्य पशुओं के भी नहीं पाये जाते हम मनुष्यों के इन विचारों का फल यही तो है कि स्वयं कुछ लाभ न प्राप्त कर विचारशीलों की दृष्टि में पशु माने गये यह आश्चर्य्य है कि मनुष्य के व्यवहार विचार निर्मूल हों इससे तो प्राणघात करके लोक से चला जाना अच्छा भलों की बुराई उनके सामने हो दुराचारी पुरुषों का जीवन मरण है और मरण उनके अर्थ विश्राम अपने विचारों को शुद्ध करो और महापुरुषों के जीवन चरित्रों से लाभ प्राप्त करो।

इति नृसिंह चतुर्दशी विचार ॥११॥

अथ वर्षांगमनम्

अपर नाम वटसावित्री।

सम्प्रति यह मंगल कृत्य ज्येष्ठकृष्णा अमावस्या को मनाया जाता है। किन्तु भेद इस में इतना है कि इस मंगल दिवस से आगे का दिवस आषाढ़ का प्रथम दिन होना चाहिये वर्त्तमान तिथिपत्र के हिसाब से पन्द्रह दिन आषाढ़ के आने में शेष रहते हैं। यह पन्द्रह दिनका अन्तर इसकारणसे प्रतीत होताहै कि तिथिपत्र देखने वाले मास का आरम्भ कृष्ण पक्षसे मानते हैं। और माना जाना चाहिये शुक्ल से। तिथिपत्र की रचना का यह दोष नहीं है देखने वा व्यवहार करने मात्र का भेद है। तिथि पत्र के अङ्क तो ठीक हैं शुक्ल से मास का आरम्भ होकर पुर्णिमा को पन्द्रह का अङ्क लिखा जाता है। जहाँ मास पूरा तीस का होताहै वहाँ अमावास्या को तीस का अङ्क लिखारहता है जिसका तात्पर्य्य है कि प्रत्येक मासका अन्त अमावस्या को मानना चाहिये तिथिपत्र को चैत्रादि ही कहते हैं। जिसका अभिप्राय है कि चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को चैत्र का आरम्भ होता है इस शैली के अनुसार तिथिपत्र देखने से जहाँ वैशाख कृष्ण की अमावस्या है वहाँ चैत्र की समाप्ति माननी चाहिये। सृष्टि रचना के प्रमाणानुसार भी चैत्र का शुक्ल पक्ष ही आरम्भ होना चाहिये इस गणना के अनुसार प्रत्येक मास में पन्द्रह दिनका अन्तर पड़ता है। इस गणना से वह वर्षाऋतु का मंगलदिवस ठीक हो जाता है। वैशाख कृष्णा को चैत्र को समाप्ति एवं ज्येष्ठ कृष्णा अमावस्या को वैशाख की समाप्ति मानने से आषाढ़ कृष्णा अमावस्या को ज्येष्ठ का अन्त होकर अगला दिवस प्रथम आषाढ़ का ही होगा तिथिपत्र की गणना इस भेद का कारण

है वस्तुतः भेद नहीं अतएव मंगल दिवस के होने का काल अमावस्या ही रहेगा।

यद्यपि यह मङ्गल कृत्य केवल स्त्रियों के द्वारा ही होता है पुरुषों को इसमें कुछ कर्त्तव्य नहीं होता और यह भी कहना निश्चय रूपसे नहीं बनता कि यह अन्य प्रान्तों में होताभी है या नहीं इस प्रान्त में होता है और तिथिपत्र में यह मंगल दिवस के नाम से लिखा होता है एक सामान्य मंगल दिवस है तथापि कुछ विचार इसका भी कर्त्तव्य है। बहुत से कृत्य ऐसे भी दृष्टिगोचर होते हैं कि किसी काल में वे किसी बड़े आशय को ग्रहण कर चलाये गये हैं पश्चात् जनता की अश्रद्धा से उन में सामान्यता होगई है पाठक गण को स्मरण हो कि हम इस मंगल दिवस के दो नाम कहआये हैं। एक वर्षाऋतु का पूजन और द्वितीय वटसावित्री। इन दोनों नामों में से प्रथम वर्षा ऋतु का पूजन नाम करण पड़ने पर विचार करते हैं यदि इस वर्षाऋतु के पूजन शब्द से पाठकों को यह सन्देह हो कि वर्षाऋतु क्या कोई मूर्त्तिमान् है प्रथम तो जड़मूर्त्तिमान् का पूजन भी विद्वानों ने भ्रान्ति ही माना है वर्षाऋतु अमूर्त्ति-मान् का पूजन विचित्र कथन है। प्रथम तो यह शङ्का उन्हीं पुरुषों को होगी जो पूजन का अर्थ स्नान चन्दन लगाना तथा अक्षत धूप दीप नैवेद्य चढ़ाना आदि ही का ज्ञान रखते हैं। जो विद्वान् पूजन के शाब्दिक अर्थों को जानते हैं उनको यह शङ्का नहीं होसकती। तो भी पूजन शब्द के शाब्दिक अर्थों का विचार करके यह भ्रान्ति कि (मूर्त्तिमान् वा अमूर्त्तिमान् का पूजन कैसा) नष्ट कर्त्तव्य है निरुक्तकार एक धातु से ही एक शब्द को बनाना मान कर कई २ धातु के योग से भी शब्दों की उत्पत्ति मानते हैं और उस के निर्वचन करने की रीति

भी बताते हैं। यदि निरुक्तकार महाशय की शैली को ग्रहण कर इस पूजा शब्द को दो धातुओं से बना मानें और निर्वचन भी करें तब तो यह शब्द अपने संकुचित अर्थों को त्याग बड़े विस्तृत अर्थों वाला होजाय, पूजा शब्दकी दोनों धातु यह हैं एक पूञ् और द्वितीय जनि प्रादुर्भावे। निर्वचन इस प्रकार होगा कि "पवित्रता आयत उत्पद्यत यया सा पूजा" जिस कार्य्य के करने से पवित्रता प्राप्त हो वह पूजा है। जो 'पूज' अर्चने से ग्रहण करते हैं अर्थ इसका भी यही होगा स्नानादि कराने से मलिनता हटा शुद्धि कराना ही बनता है। अतएव पूजा शब्द से पवित्रता उत्पन्न करना ही इष्ट है वर्षा ऋतु के आगमन काल में शुद्धि करना वर्षा का पूजन है। यदि यह प्रश्न यहां हो कि वर्षा को शुद्धि की क्या आवश्यकता है तब यह कहना होगा कि प्रत्येक काल की प्राप्ति में शुद्धि कर्त्तव्य है धर्म्मशास्त्र की आज्ञा है कि सूर्य्योदय से पूर्व शौचादि तथा स्नानादि से निवृत्त होजाना चाहिये। इसका तात्पर्य्य यह है कि मार्त्तण्ड भगवान् की पवित्र किरण हमारे पवित्र शरीर पर पड़ नीरोगता स्थापन करें। द्विजातियों में गृह के आभ्यन्तर भाग की अपेक्षा आँगन का भाग बुहारना शुद्ध कहा जाता है इस का अभिप्राय भी यही है कि सूर्य्य भगवान् की किरण प्रथम अजिर भागही में पड़ती हैं सूर्य्योदय से पूर्व गृह का बाह्य भाग शुद्ध रहना अच्छा है। अतएव वर्षाऋतु का आगमन शुद्ध स्थानों में होना योग्य है। वर्षाऋतु में पृथिवी के आर्द्र हो जाने से फिर चार मास पर्य्यन्त अच्छी शुद्धि का अवकाश मिलना कठिन है। द्विजातियों के मंगल कृत्यों में स्थानादि की शुद्धि के अतिरिक्त खान पान में प्रायः पकान्न ही विशेषता से होता है। यह पकान्न केवल जिह्वा की लोलुपता केही अर्थ नहीं बनाया जाता

इसका तात्पर्य्यभी एक दूसराहीहै वहयह कि द्विजातियोंकेसमस्त व्यवहारों के बनाने वाले आयुर्वेद के ज्ञाता ऋषिवर हैं। उनका विचारहै कि यज्ञसे उत्तम दूसराकार्य नहीं यज्ञमें अनेक पदार्थोंके साथ घृत ही आकाश मंडल में पहुंचाया जाता है। घृत विषों के नाश करने वाले द्रव्यों में एक अद्वितीय गुणों वाला है। पाठक गण देखते होंगे कि सर्प विष में घृत ही विशेषता से प्रयुक्त होता है पकवान् बनाने से एक क्रिया से दो अर्थ प्राप्त होतेहैं अपने भक्षण का पदार्थ भी सिद्ध हो और वायुद्वारा गृहों की शुद्धि काभी कार्य्य अनायास प्राप्त हो जाय। पकवान् आमाशय को पुष्ट करने के अतिरिक्त शरीरान्तर के विषों का भी नाशकहै और पुष्टि का देने वाला भी है। इत्यादि कारणों से प्रायः मंगल कार्य्यों में पकवान् ही विशेषतासे होताहै। वर्षा ऋतुके आगमन कालमें होनेवाले मंगल दिवसमें बहुत समारोह से कार्य्य नहोकर केवल इतनाही होता है कि स्थानादि की शुद्धि और खाने में उत्तम पदार्थों का बनाना इस कार्य्य के समस्त कृत्य स्त्रियां ही कर लेती हैं। अब विचार यह शेष रहता है कि इसका द्वितीय नाम वटसावित्री क्यों पड़ा और दोनों में मुख्य कौनसा नाम है। मुख्य नाम तो इसका वर्षाऋतु का पूजन ही है। वटसावित्री नाम पड़ने का कारण यह विदित होता है कि सावित्री नाम वाली स्त्री की वट वृक्ष के समीप कोई घटना विशेष हुई है। यह एक पौराणिक आख्यायिका है कि एक सावित्री नाम की स्त्री थी उसका विवाह सत्यवान् पुरुष के साथ हुआ था दैवात् सत्यवान् का मृत्यु होगया कहा जाताहै कि सावित्री पतिव्रता थी इसने यम से बहुत विवाद के साथ वटवृक्ष के समीप अपने पति को जीवित कराया है। पाठक गण यह स्मरण रक्खें कि पौराणिकीय गाथा या तो किसी इतिहास के आधार पर होती है वा केवल कल्पना

मात्र ही होती हैं। यह आख्यायिका भी कल्पना मात्रही प्रतीत होती है। इस गाथा का अभिप्राय यही है कि पतिव्रत की शक्ति बलवती है। ऐसाभी सम्भव है कि सत्यवान् संन्यास रोगसे वा सर्पदंश से मृतक तुल्य हो गया हो और कोई यमनामा व्यक्ति मिल गया सावित्री के करुणमय रोदन से उसने चिकित्सा करके सत्यवान् को प्राणदान दिया है। यह सब कुछ होते हुए भी यह कहा जा सकता है कि यह घटना इस कृत्य का मूल नहीं ऐसा कहा वा माना जा सकता है कि यह घटना वर्षा ऋतु के मंगल कृत्य के दिन होकर अपने नाम से चली पहले कृत्य का स्मरण छूट गया और इसका स्मरण बना रहा यह कोई नूतन बात नहीं इसका एक उदाहरण तो वर्त्तमान में ही प्रत्यक्ष है आर्य्य सज्जन इस बात को अभी भूले न होंगे कि दीपावली तथा शिवरात्रि यह दोनों मंगल दिन न जाने कितने कालसे होते चले आते हैं। इन्हीं दोनों में यह एकघटना विशेष भी हो गई कि शिवरात्रि के दिन तो आर्य्य समाज के प्रवर्त्तक यतिवर श्री स्वामी दयानन्द जी को बोध हुआ है दीपावली उनकी मृत्यु दिन मानाही जाता है यह दोनों मंगल दिन उक्त कारण से आर्य्यजनता को कर्त्तव्य ही माने जाते हैं आगे आने वाली सन्तान इन दिनों को यतिवर का ही कृत्य मानकर पहिलों को भूल जाय तो कुछ आश्चर्य्य नहीं। इसी प्रकार सावित्री सत्यवान् की गाथा पूर्व कृत्य में संमिलित हो गई पूर्वकृत्य अपने नाम से अपनीमुख्यता का साक्षी है। यद्यपि यह कृत्य सम्प्रति नाम मात्र ही से मनाया जाताहै तथापि इसकी आवश्यकता विशेष रूप से करने की प्रतीत होती है। समारोह तथा विधिवत् करना अपने ही लिये अच्छा है। अग्रे वर्त्तमान काल के सज्जनों का विचार जैसा हो वैसा

करे। प्रत्येक कार्य्य के कर्त्तव्याकर्त्तव्य के विचार कालमें एक तो यह ध्यान अवश्य रखना योग्य है कि यह कार्य्य शास्त्र सम्मत है वा किसी व्यक्ति के द्वारा प्रचिलित हुआ है यदि वह शास्त्रसम्मत हो तो वर्त्तमान में जो दोष प्राप्त हो गये हैं उनको हटा कर शुद्ध रूप प्रकाशित होना चाहिये। और जो यह किसी व्यक्ति विशेष की बुद्धि का विकाश है तब उसके व्यवहारों पर यह ध्यान देना चाहिये कि कौन किस आशय से रक्खा गया था और सम्प्रति वह उस रूपसे होता है वा नहीं न होने पर शुद्धरूप बनाना और अनुपयोगी होने पर उसको हटाने का प्रयत्न करना चाहिये या अन्ध प्रवाह में पड़कर तिरस्कार करना अपनी निर्बलता जनाता है न यह विद्वान् का कर्त्तव्य होना योग्य है।

इतिवर्षा ऋतु आगमन विचार १२।

अथ दशहरा विचार।

वर्त्तमान तिथिपत्र के देखने की रीति से यह समय जिसका वर्णन पहिले किया गया ज्येष्ठ का कृष्ण पक्ष ही कहा जाता है तिथि पत्र उस रीति से देखने पर जो हमने पूर्वमें वर्णन की है यहां ज्येष्ठ पूर्ण नहीं होता यहां वैशाख समाप्त होता है। परन्तु वर्त्तमान शैली का उलंघन भी पाठक गण को भ्रान्ति में डाल देगा अतएव वर्त्तमान शैली का ही आश्रय बलात् लेना पड़ गया वर्त्तमान रीति से अभी ज्येष्ठ शुक्ला के पन्द्रह दिन रहते हैं। शुक्ल पक्ष के कृत्य को वर्त्तमान शैली के ही अनुसार कहते हैं। ज्येष्ठ शुक्ला में १०मी तिथि भी पर्व रूप मानी गई है इस दिन गंगास्नान करना पुण्य माना जाता है। जिनको गंगास्नान का अवसर नहीं प्राप्त होता वे गृह पर ही स्नान करते हैं यह तो एक अंध विश्वास है। गंगा

स्नान ही का महात्म्य विशेष माना जाता है जनता में यह प्रचार किस कारण विशेष से हुआ और किसके द्वारा हुआ क्या इसमें कुछ सार भी है। इस विषय का अन्वेषण करने से यह पता लगा है कि यह वह पवित्र दिन है रघुकुल भूषण श्री भगीरथ महाराज अनेक वर्षों के असाधारण परिश्रम से गंगा भागीरथ को भारतमें लाये हैं। भारत की जनता इस दिन को गंगा जी का जन्म दिन मानती हैं। इसमें कोई सन्देह भी नहीं कि वह दिन एक अपूर्व दिन होगा। हरिद्वार तथा अन्य उन नगरों में जनसमूह गणना की संख्या से बाहर होगा। एक महान् कार्य्यकी सिद्धि के समय जो आनन्द होता है उसका वर्णन में आना कठिन है। प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं रहती वर्त्तमान में जो नहर गंगा से निकाली गई है सुना जाता है कि इसके आविष्कर्त्ता काटली साहबथे जिसदिन मायापुरीके पुलमें नहर छोड़ी गई थी उसदिन कौतुकी जनता एक अच्छी संख्या में उपस्थित थी और उत्सव के ठाठ भी अधिकता से उपस्थित थे सुनाजाता है कि दीपावली हुई अग्निक्रीड़ा में भी सहस्रों का व्यय हुवा काटली साहब अपने अपूर्व कार्य की सिद्धि से इतने प्रसन्न थे कि जिसका चित्र आकर्षित करना सुगम नहीं यह तो एकछोटीसी बात थी हरिद्वार में गंगा उपस्थित ही थी यद्यपि साधारण जनता की अपेक्षा यह भी बड़ा कार्य्य मानाजाता है परन्तु श्री महाराज भगीरथ सम्राट् की अपेक्षा बालक्रीड़ा ही कहा जाता है। एकदेश के चक्रवर्त्ती सम्राट् के बड़े परिश्रम के द्वारा सिद्ध हुआ कार्य्य और देश का उपकारी। यद्यपि भारत में नदियों की बहुतायत है परन्तु नगरों को जितनी शोभा गंगा से प्राप्त हुई उतनी अन्यों से नहीं गंगा के द्वारा व्यापारों से भी बहुत

लाभ हुआ जिस दिन सम्राट् भगीरथ ने यह घोषणा दी होगी कि गंगा की धारा का प्रपात भारत के अमुक स्थान पर अमुक समय में होगा। अनुमान होता है कि सम्राट् के असाधारण श्रम का धन्यवाद देने तथा अपने नेत्रों से यह चित्र देखने के अर्थ कौन २ माण्डलिक राजा उपस्थित न हुआ होगा। साधारण जनता की संख्या कहना तो वृथा ही है। और क्या कुछ इस अवसर पर व्यय न हुआ होगा। गंगा का जन्म दिन होने से यह दिन पर्वरूप से माना जाना आरम्भ हुआ है। गंगास्नान का जो अधिक माहात्म्य हरिद्वार में माना जाता है उसका एक कारण यह भी है कि यहां गंगा का जन्म कहा जाता है जलकी उत्तमता तो सब स्थानों से यहाँ की विशेष मानी ही जाती है यद्यपि गंगा का निकास हिमालय है तथापि सुलभतया प्राप्त होने से हरिद्वार ही को मुख्यता प्राप्त हुई है।

॥ इति दशहरा विचार ॥ १३ ॥

अथ देवशयनी विचार।

वर्त्तमान तिथि पत्र अवलोकन की रीति से आषाढ शुक्ला ११ दशी को यह कृत्य द्विजातियों में ही नहीं किन्तु शूद्र वर्ण में भी होता है। जनता में यह बात विख्यात है कि आजके दिनसे देवगण शयन करते हैं। यह विश्वास जनताने स्वयं ही अपने में उत्पन्न कर लिया वा किसी अन्य ने उत्पन्न कराया यह हम पूर्व कह आये हैं कि साधारण जनता में विश्वास उत्पन्न कराने वाले वेही व्यक्ति हैं जो इन के व्यवहारों को बनाने वाले हैं। सृष्टिरचनाके समयानुकूल परिवर्त्तनों का ज्ञान आयुर्वेदविदों के अतिरिक्त और किसको होसकता है। साधारण जनता को समयपर सचेत करना इन्हीं का कार्य्य है। इस समय के एक विशेष परिवर्त्तन का ज्ञान भी इन्ही महापुरुषों

का कराया हुआ है। विचारणीय विषय तो यहां यह है कि देव कौन हैं और उनका शयन किस प्रकार होता है और उस शयन से जनता का क्या हानि वा लाभ है। वेद के उपदेश से यह विदित होता है कि देवता शब्द से कई का ग्रहण है। मुख्यता से तो खगोलस्थ सूर्य्य चन्द्रादि का तथा वायु अग्नि जल पृथिवी का ग्रहण देवता शब्द से होता है। इस में वेद ही प्रमाण भी है। (अग्निर्देवता वातोदेवता सूर्य्यो देवता चन्द्रमादेवता वसवोदेवता रुद्रोदेवता आदित्यादेवता मरुतोदेवता विश्वेदेवादेवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वसवो-देवता) अग्नि आदि की देवता संज्ञा है निरुक्तकार ने देवताके लक्षण बताते हुए कहा है कि (दानाद्दीपनाद्द्योतनाद्द्युस्थाने भवतीति) दान देने तथा प्रकाश करने एवं विशेष प्रकाश से और आकाश में होने से देवता कहाते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थोंने (विद्वाꣳसोहिदेवाः) विद्वानों को भी देवता कहा है। देवता विषय का विशेष अवगाहन करने से यह पता चलता है कि किसी वर्ग विशेषमें किसी प्रकृति विशेष वाले को देवता कहते हैं। चाहे वह अच्छे वर्ग का हो वा बुरे का, वेद के अव-गाहनसे यह विषय इसी प्रकार का देखा जाता है। वेद कथन की शैलीहै कि वह अपने मन्त्रोंके द्वारा जिस विषयको कहता है वहउस मन्त्रका देवता मानाजाता है ऐसे मन्त्र बहुत हैं जिनमें सर्पों तथा सिंहों एवं तस्करादि का वर्णन है जैसेकि (चौराणां पतये नमः) इसमें चोर को देवता मानकर अर्थ किया गया है। इस देवता विषय के लेख विशेष से ग्रन्थ बढ़ने का भय है। अतएव इस विषयको विस्तार न देकर पाठकगणको इतना ही कथन पर्य्याप्त होगा कि देवता शब्द से प्रकृति विशेष को जाने। बुरा हो अथवा भला जड़ हो वा चैतन्य। इसके शयन

विषय मेंतो यह बात विचारणीय है कि यह देव धर्ग कौन है ? जिसके शयन का यह काल है। महाशय गण यह द्युलोकस्थ सूर्य्य चन्द्रादि हैं। जिनके साथ जनता की जीवनयात्रा का घनिष्ट संबंध है। इन्हीं के शयन से जनता की जीवनयात्रा में एक विशेष परिवर्त्तन होने की संभावना है और व्यक्तियों का शयन काल एक ही दोदिन होता है। किन्तु देवगण का शयन आषाढ शुक्ला एकादशी से कार्त्तिक शुक्ला एकादशी पर्य्यन्त माना जाता है। पाठकगण को इस कथनमें यह सन्देह होगा कि इनको तो जड माना गया हैं इनका शयन करना कैसे ? बुद्धि इस बातको स्वीकार नहीं करती। यह तो कहना पाठक गण का सत्य हैं कि यह बात बुद्धि में नहीं आती परन्तु यह भी बात बुद्धि में नहीं आती कि जिस कार्य्य की आधार शिला किसी व्यक्ति विशेष के हाथों से स्थापित हो वह किसी कारण विशेष के गर्भ वाली न हो। द्विजाति मात्र में होने वाला कार्य्य किसी सामान्य व्यक्ति के द्वारा हो ऐसा भी नहीं कहा जासकता पाठक गण को स्मरण होगा कि पूर्व यह कहा गया है कि चारों वर्णों में एक काल तथा एक स्वरूप से होने वाले कार्य्य की मूल में राज्य शक्ति का हाथ अवश्य होता हैं। जिस समय प्रजा के कर्त्तव्याकर्त्तव्य का अधिकार राजसभा के अधीन था तभी इसप्रकार के कार्य्य जनता में प्रचलित हुए हैं। यदि यह कहाजाय कि अन्य विधर्म्मी राजों के समय यह कृत्य होना आरम्भ होगया है ऐसा कहना यूं नहीं बनता कि विरोधी धर्म्म वाले राजों के पदार्पण कालसे पूर्व भी इस कार्य्य का होना पाया जाता है। देवशयनी नामही यह बताता है कि यह नामकरण संस्कृतज्ञ व्यक्ति के द्वारा हुआ है। आषाढ शुक्ला एकादशी का नाम देवशयनी और कार्त्तिक शुक्ला

एकादशी का नाम देवप्रबोधनी है इन दोनों नामों से यह विदित होता है कि दोनों शब्द अपने गर्भ में किसी भाव विशेष के जताने वाले अवश्य हैं। यह दूसरी बात है कि इस समय जनताके अज्ञानसे वर्त्तमान में उसका स्वरूप ऐसा होगया हो कि वह हेय समझा जाने लगा परन्तु संचालक का आशय किसी सारता को लिये हुए अवश्य था हमारा इष्ट भी सारांश की खोज ही है। किन्तु प्रथम खोज इस बात की करनी है कि उक्त नामकरणों से कर्त्ता का प्रयोजन क्या है? उसकी बुद्धि में क्या मनुष्यों तथा अन्य प्राणियों का समान हो सोना और जागना हो ता है या कोई और प्रकार का सोना या जागना वह मानता है। विद्वान् लोग शब्द का वास्तविक अर्थ ग्रहण करने के अभ्यासी होते हैं। विद्वानों के मत में असावधानता निद्रा और सावधानता जाग्रति है। लोक व्यवहार में भी ऐसे अर्थों के बोधक हो स्वप्न और जाग्रति पाये जाते हैं। जब कोई व्यक्ति असावधानता से कार्य करता है तब कहा जाता है कि क्या सोते हो। इससे विदित होता है कि वास्तविक अर्थ जागृति तथा स्वप्नके सावधानता और असावधानता ही हैं। सावधानता का तात्पर्य्य है कि निरन्तर सम्यक्तया कार्य्य का करना कार्य्य का सम्यक्तया निरन्तर न होना असावधानता है पाठकगण को यह विदित है कि हमारे जीवन का घनिष्ट सम्बन्ध खगोलस्थ देवगण से ही बताया गया है। सूर्य्यचन्द्र अन्य तारागण एवं अग्नि वायु तथा वनस्पतियों के द्वारा ही हमारे शरीरों का पालन पोषण होता है और अन्न के द्वारा हमारा जीवन है अन्न जाठराग्नि के बल से परिपक्क होकर ही रसादि धातुओं को प्राप्त होता है। जाठराग्नि का बल सूर्य्य है अन्य तारागण भी हमारे शरीरों में गुणों को

सूर्य्य के द्वारा ही उत्पन्न करते हैं। अतएव सूर्य्य ही प्राण माना गया है हमारे जीवन का एक मात्र आश्रय सूर्य्य भगवान् तथा अन्य तारागण आकाश मण्डल के सदैव मेघोंसे घिरे रहने के कारण अपना कार्य्य जैसा कि स्वच्छ आकाश होने पर करते वैसा करने में असमर्थ रहते हैं। निरन्तर सावधानता से कार्य्य न करने से ही इनका शयन माना गया है जिन आयुर्वेदविदों ने देवशयन को निश्चित किया है उन्हीं के द्वारा यह भी विचार हुआ कि जनता की रक्षा के अर्थ इस समय क्या कर्त्तव्य है। यद्यपि इस कृत्य में समारोह से कोई कार्य्य विशेष नहीं होता तथापि यह छोटा सा क्रीड़ावत् कार्य्य ही इससमय उपयोगी जाना गया। इस कृत्य में गृहादि के लेपन के अतिरिक्त इतना विशेष होता है। कि स्त्रियाँ गृह की भित्तियों पर पृथिवी से कुछ भाग ऊपर गोमय से एक रेखा बनाती हैं। बस इस कृत्य से ही देवशयन का कृत्य समाप्त होता है। इस गोमय की रेखा से जनता की किस प्रकार रक्षा होगी यह विषय विचारणीय है। इस विषय में किस बात के जानने की आवश्यकता है प्रथम यह जानना योग्य है कि किस विकार के होने की सम्भावना है जानना तो प्रथम केवल इतना ही है कि खगोलस्थ देवगण के सम्यक्तया कार्य्य न करने से अस्वस्थता का भय है, जो जनता को इष्ट नहीं। इसी के अर्थ इस कृत्य के संचालक का विचार है कि इस स्थान पर यह जानना भी आवश्यक है कि खगोल जो हमसे बहुत दूर स्थित है उसका सम्बन्ध हमसे किस प्रकार है। इस विषय में अपने पूर्वजों का क्या विचार है। तैत्तरीय उपनिषद् में पृथिवी के साथ द्युलोक का सम्बन्ध इस प्रकार बताया है।

पृथिवी पूर्वरूपम् द्यौरुत्तररूपम् आकाशः सन्धिः।

वायुः संधानम् ।

पृथिवी और द्युलोक के परस्पर मेल का कारण आकाश है और वायु जुटा रखने का एक मुख्य साधन है। इस प्रकार पृथिवी और सूर्य्य का सम्बन्ध है आगे प्रकाश का संबंध कहा गया है।

अग्निः पूर्वरूपम् आदित्य उत्तररूपम् । आपःसंधिः वैद्युतः संधानम् ॥

पार्थिवाग्नि पूर्वरूप और सूर्य्य उत्तररूप है। दोनों अग्नियों को जुटे रखने वाला जल है और उस जोड़ को न हटने देना इसका भार विजली के ऊपर है। इसमें कोई संदेह भी नहीं कि यद्यपि अनेक देवगण अनुपम गुण वाले हैं तथापि विद्युत् के विना सब अपना कार्य्य करने में असमर्थ हैं विद्युत् के विना सूर्य्य का प्रकाश पृथिवी तक आने में असमर्थ है यह प्रत्यक्ष है कि विद्युत् से अधिक वेग और का नहीं विद्युत् यदि तत्वों के भीतर न रहे तो वायु चल नहीं सकता। जलका प्रवाह स्थिर होजाय अग्नि का उद्दलन नष्ट होजाय पृथिवी आधाररूप न रहे। तत्वों में चलने वाला वायु ही है शेष तत्व तो स्थिर ही हैं वायु की चालका मान निश्चय होकर यह सिद्ध हुआ है कि यदि वायु वेग के साथ न बहे तो सामान्यता से यह एक घण्टे में तेरह मील चलता है। इस का एक प्रत्यक्ष प्रमाण यह भी है कि रेल का धूम्र रेल से पीछे ही रहता है। तब अग्नि आदि तत्व वायु के विना अपना प्रकाश करने में असमर्थ हैं फिर असंख्य दूरस्थित सूर्य्य का प्रकाश दश बारह पल में पृथिवी पर बिना किसी ऐसी गति वाले की सहायता के जिस की गति का प्रतिक्षण मान होना कठिन है

असम्भव है सूर्य्य के प्रकाशको क्षणों में पृथिवी तलपर प्रकाश देकर हमारे जीवन का एक मात्र आश्रय विद्युत् ही है। वर्त्तमान के पाश्चात्य ज्योतिर्विदों ने पृथिवी से सूर्य्य का अन्तर बताते हुए यह कहा है कि यदि कोई पुरुष सूर्य्य के समीप से एक तोपका गोला छोड़े और वह गोला निरन्तर अहर्निश चलता ही रहे तो १६ वर्ष में भी पृथिवी तलपर न गिरेगा इतने दूर का प्रकाश और १०।१२पल में पृथिवी पर आजाय किस तत्व की शक्ति कही जासकती है। यह कार्य्य प्रभुने असीम बलवाले विद्युत् केही द्वारा लेकर हमारा उपकार किया है। वर्त्तमान में विद्युत् के द्वारा किये कार्य्य अतुल बल वाले देखे जाते हैं शरीरस्थ विद्युत् की रक्षा करना अपने तथा अन्यों के जीवन का परमोत्तम कार्य्य है। पार्थिव विद्युत् की रक्षा करना इस काल में अवश्य जानागया, वर्षाऋतु के समय आकाश में मेघ मंडल का संघट्ट विशेषता से रहता है जिस के कारण सूर्य्य से हमें वह फल कि जो प्राप्त होना चाहिये कई कई दिनतक नहीं होता और साथ ही में यह भी भय रहता है कि कहीं गगन मण्डल का विद्युत् हमारी पार्थिव विद्युत् को अपनी ओर आकर्षित न करले। यह भी पाठक गण को विदित हो कि विद्युत् की चाल सर्प की चाल की समान होती है पृथिवी का विद्युत् इस रेखा द्वारा ऊपर न जा पृथिवी में स्थित रहकर हमारे जीवन का सहायक हो यह अभिप्राय इस क्रीड़ा रूप कृत्य की गोमय द्वारा आकर्षित रेखा से विदित होता है। सुना जाता है कि पाश्चात्य देश में विद्युत् से रक्षा के अर्थ ही स्थानों पर लोह की शलाका लगाने की परिपाटी है भारत की निर्धन जनता की रक्षार्थ विद्वानों ने यह सुलभ उपाय बताया है विद्वान् पुरुष के द्वारा जो कार्य्य चलाया

जाता है उस में यह विचार प्रथम होता है कि कार्य्य के साधन ऐसे हों कि जो साधारण जनता को सब दशाओं में अनायास प्राप्त होसकें इस कार्य्यसिद्धि के अर्थ अन्य बहु-मूल्य प्रयोग होने सम्भव थे परन्तु साधारण जनता को उन का प्राप्त होना कठिन था सब को सुलभ गोमयही इस कार्य्य के अर्थ उपयोगी जाना गया। गोमय में बहुत गुण हैं प्रयोगों में लाने से यह जाना गया है कि गोमय विषों का नाश करने वाला है विद्युत् को अपने में से निकलने नहीं देता। पुरा काल में बड़ों के मुख से यह सुना करते थे कि गोमय के ढेर में गिर कर विद्युत् ऊपर को नहीं उठती इस कथन से यह जाना जाता है कि गोमय में विद्युत् के ग्रहण करने की शक्ति बाहुल्येन है। भारत की जनता के बहुत से व्यवहार ऐसे पाये जाते हैं कि जिन का उल्लेख पुस्तकों में तो पाया नहीं जाता परन्तु व्यवहार में पाये जाते हैं जनता के उस व्यवहार कर्त्तव्यको देखनेसे यह विदित होताहै कि वे किसी विशेष रूढ़ि द्वारा प्रचलित हुए हैं। बहुत ओषधियाँ ऐसी पाई जाती हैं कि जिनका वैद्यक के निघण्टुओं में पता नहीं लगता और लोक में व्यवहार के द्वारा उनका बड़ा प्रभाव देखा जाता है। इसी प्रकार वैद्यक में गोमय के इतने गुण वा कार्य नहीं लिखे जितने व्यवहार में लाने से पाये जाते हैं बर्रै के दंश पर भी मलने से यह जाना जाता है कि यह विषनाशक है। गोमय के गुणों तथा प्रभावों में यह जान लेना भी अवश्य है कि ये सब गुण गौ के गोमय में ही पाये जाते हैं। यदि विचार कर देखा जाय तो गोमय गौ का ही श्रेष्ठ माना गया है। प्रायश्चित्त विषय में भी पञ्चगव्य में गोमय का ग्रहण होता है। इससे भी यह विदित होता है कि गोमय किसी विशेष शुद्धि का करने

वाला है। गोमय के गुणों के विषय में एक यह बात भी जनता में प्रसिद्ध है कि उत्तम कार्य्यों के अर्थ यदि गोमय की आवश्यकता हो तो बिना व्याही का ही लेना चाहिए यदि यहाँ यह शङ्का हो कि प्रसूता तथा अप्रसूता के गोमय में क्या भेद है तब कहना पड़ेगा कि बहुत भेद है यह पहिले कहचुके हैं कि तत्वों तथा अन्य सब तत्व निर्मित पदार्थों में जो कार्य्य होरहे हैं वे सब विद्युत् के आश्रय से होते हैं। हमारे तथा अन्य पशुओं के शरीरों में भी विद्युत् ही के द्वारा कार्य्य होते हैं। मनका इतना वेग कि एक क्षण में असंख्यों कोश दूर पहुंचाकर ता है जिन पुरुषों ने समुद्र पर के देशों में निवास किया है वे भारत में बैठे हुए एक क्षण में मन को उन देशों में पहुंचाकर वहाँ के दृश्यों को देखते हैं। पुरा कालीन महानुभावों ने मन की इस गति का ठीक ठीक निश्चय न कर

(मानसोऽग्निःशरीरस्य जीव इत्यभिधीयते)

जीव ही मान लिया है। शरीरों में इस मानसाग्नि के द्वारा इन्द्रियों के कार्य्य होते हैं। जिसप्रकार यह विद्युत् अग्नि हमारे शरीरों में कार्य्य करता है इसी प्रकार अन्यपशुओं तथा ओषधियों में व्याप्त रहकर कार्य्य करता है। आयुर्वेदाचार्य्योंने इसके शुद्ध और अशुद्ध दो रूप माने हैं जब तक एक शरीरका दूसरे शरीरसे संबंध नहीं होता उस समय तक यह विद्युत् शुद्ध माना गया है दूसरे शरीर से मिलकर इसकी अपूर्व शक्ति में भेद आजाता है इस कारण विशेषसे शुद्धि के कार्य्यों में तथा अन्य उत्कट कार्य्यों के अर्थ यदि गोमूत्र वा गोमय की आवश्यकता प्रतीत हो तो बिना व्याही गौका ही ग्रहण करना चाहिये यही लाभदायक माना गया है। यदि किन्हीं महाशयों को यह शंका हो कि गोमय मलिन द्रव्य है इसका

प्रयोग अकर्त्तव्य है तब यह उत्तर होगा कि आप जिन ओष-धियों को चित्ताकर्षक कांचके रंग बिरंगे पात्रों में धरा देख कर प्रसन्न होते हैं वे कितने पवित्र हैं किञ्चित् उनका भी तो निश्चय कीजिये। व्रणों के अर्थ जो ओषधियाँ बनाई जाती हैं सब में वसा का स्नेह होता है। पीने की औषधियों में प्रायः मद्य का समावेश पाया जाता है। शुष्क ओषधियां भी बहुत सी ऐसी हैं जिन में पशुओं के आमाशय का सार मिश्रित होता है। बिना मूल्य बिनाश्रम सुलभतया मिलने वाला गोमय क्या इनकी अपेक्षा भी घृणित है। ऐसा विचार भारत निवासियों का तो होना उचित नहीं अन्य विरोधी धर्म्म वाले यदि ऐसा कहें तो उनका कथन मानना अपनी निर्बलता जताना है। इत्यादि कारणों तथा अपूर्व लाभ दायक व्यापारों के देखने से यह विदित होताहै कि यह कृत्य जनता के परम हितैषी सज्जनों द्वारा बड़े अवगाहन के पश्चात् कर्त्तव्य बताया गया है। केवल क्रीड़ा ही नहीं हां यह कहा जा सकता है कि चिरकाल से संशोधन न होने के कारण साधारण जनता के अज्ञान से कुछ अंश निरर्थक व्यापारों का मिश्रित होगया हो उतने अंश की शुद्धि वर्त्तमान कालके विद्वानों का करनो योग्य है। सर्वथा हेय कहना वा मानना कदापि नहीं बनता भारत की जनताके कृत्यों में उन विद्वानों का हाथ पाया जाता है जिनकी प्रतिष्ठा सज्जनों के हृदयों में अंकित है। भारत के लाभदायक कृत्यों को हेय समझना केवल उन महापुरुषों काही निरादर नहीं साथही में अपनी अज्ञता का प्रकाश और कार्य्य के लाभों से अपनेको वंचित रखना भी है॥

इति देवशयनी विचारः १४

—०—

अथ व्यासपूर्णिमा अथवा गुरुपूर्णिमा वा पवनपरीक्षा पूर्णिमा।

वर्त्तमान तिथि पत्र की रीति से यह आषाढ़ पूर्णिमा है यह दिन भी एक मंगल दिवस है पुराकाल में यह मंगल दिन भारतके समस्त विद्यालयों में मनायाजाता था। वर्त्तमान में भी सर्वथा लोप न होकर काशी आदि नगरों में इस मंगल दिनका कृत्य दृष्टिगोचर होता है संस्कृत विद्यालयों के ह्रास के साथ इस कृत्य का भी ह्रास होता चलागया किसी कार्य्य का महत्व उसकी प्रतिष्ठा से जाना जाता है। यह हमने माना कि हमारे सम्राट के विरोधी विचारों ने भारत की उत्तम चाल ढाल का बहुत अंशों मे पालन नहीं किया तथापि बलवान् कार्य्यों ने आगे होने वाले सज्जनों के स्मरणार्थ अपना पग जमाये रक्खा पाठक वृन्द को यह विदित है कि सम्राट् के अधिकार वाले विद्यालयों में यह पूर्णिमा वाला कृत्य नहीं होता किन्तु अवकाश इस दिन का अवश्य मनाया जाता है, पुराकाल में यह कृत्य बड़े समारोहसे मनाया जाताथा। इस पूर्णिमाका नाम व्यास पूर्णिमा है इस कृत्य में गुरुजनों का आदर सत्कार शिष्यों का ओर से होता था इस पूर्णिमा के साथ व्यास शब्द युक्त होने से यह समझ लेना कि यह व्यास नाम ऋषि का पूजन है नितान्त अज्ञता है व्यास शब्द उस गुरु के विषय में प्रयुक्त होता है कि जो वेद का अध्यापक हो यह शब्द अपने अर्थों को स्वयं अपने गर्भ में धारण किये हुए हैं।

(व्यस्यति वेदान् इति व्यासः) जो वेदों को व्याख्या के सहित पढ़ावे उस अध्यापक का नाम व्यास है। वस्तुतः व्यास पूर्णिमा नाम पड़ने का यही कारण प्रतीत होता है इस शब्द

व्युत्पत्ति से यह भी विदित होता है कि पुरा काल में वेद के पढ़ाने की तीन रीतें थीं प्रथम आवृत्ति में मूल मन्त्रों का कण्ठ कराना द्वितीय आवृत्ति में स्वर के साथ अभ्यास कराना तृतीय आवृत्ति व्याख्या सहित होती थी। वेदाध्यापक गुरु जनों का इस तिथि में छात्र वर्ग धनादि से सत्कार करते थे दूसरा नाम इस का गुरुपूर्णिमा है यह नामकरण भी उक्त अभिप्राय को पुष्ट करता है गुरु शब्द के यह अर्थ हैं कि (गृणाति, उपदिशति, इति गुरुः) जो उपदेश करे उन गुरु जनों का इस तिथि में अर्घ पाद्यादि तथा यथाशक्ति धनादि से सत्कार करने की प्रथा थी। केवल पूर्णिमा नाम से भी इस तिथि के कृत्य को देख कर यह अर्थ होसकते हैं कि (शिष्यै र्गुरव स्यां तिथौ मा लक्ष्मीः पूर्य्यत इति पूर्णिमा) शिष्यवर्ग गुरु के अर्थ इस तिथि को धनपूर्ण करते थे इत्यादि कारणों से और पूर्णिमा के दिन शिष्यों द्वारा होते हुए कृत्य से यही पाया जाता है कि इस तिथि को निःशुल्क विद्या दान देने वाले गुरुओं के निर्वाहार्थ सद् गृहस्थ अपने पुत्रों के मिस से उन के स्थान पर जाकर ही सतकार पूर्वक द्रव्य देते थे। यदि यहां यह वक्तव्य हो कि यही तिथि क्यों निश्चित की तब कहना होगा कि यह प्रश्न तो प्रत्येक तिथि के विषय में उपस्थित होगा वर्त्तमान में भी राज्य के वर्षों की समाप्ति पृथक् २ होती है इसी प्रकार पुरा काल में माननी चाहिये। एक कारण इस तिथि निश्चय का यह भी प्रतीत होता है कि यह वह तिथि है कि जिस दिन परीक्षोत्तीर्ण विद्यार्थियों को उन की उत्तीर्णता का फल सुनाया जाता था। यदि यहां यह प्रश्न हो कि यह कल्पना किस आधार पर करी गई तब यह कहा जासकता है कि जैसे शब्दों के अर्थ अर्था-

पत्ति से निश्चय होते हैं और उन पर विश्वास होता है इसी प्रकार कार्यों के कार्य्य से विदित होते हैं। इस पूर्णिमा से ठीक एक मास पश्चात् एक मंगल दिवस होता है जिस का नाम श्रावणी (सलूनो) विख्यात है। इस श्रावणी के दिन विद्यालय खोलने की आज्ञा है यह आषाढ की पूर्णिमा गुरु पूजा के अर्थ मनायी जाकर एक मास का अवकाश होता है वर्त्तमान में भी परीक्षाओं के पश्चात् विद्यार्थियों के विश्राम के अर्थ एक मास का अवकाश होता है इसी प्रकार पुरा काल में व्यवहार था। भारत की जनता में सदैव से कृतज्ञता का गुण चला आता है सद् गृहस्थ थोड़े उपकार को भी बहुत बड़ा मानने के स्वभाव वाले होते हैं गुरुजनों का उपकार तो प्रत्यक्ष ही सब से बड़ा उपकार है इस उपकार से उऋण होना सुलभ नहीं पुरा काल में अध्यापक का मान माता पिता से भी अधिक होता था सद् गृहस्थ अपने पुत्रों के अध्यापकों को अपने परिवार का ही एक व्यक्ति मानते थे। पुरा काल के छात्र गुरु को अपना स्वामी जानते थे। जिस काल में शुल्क लेकर विद्या पढ़ाना पाप था उस काल में इसी प्रकार का व्यवहार गुरुजनों के साथ होता था इस कृत्य को मंगलरूप से मानना इसहेतुसे था कि उस काल की जनता उदारता तथा अपना कर्त्तव्य जानकर इस कार्य्य को करने के स्वभाववाली थी राजा तथा गुरुजनों की बलात् आज्ञा नहीं थी गुरु जनों के उपकार का यह प्रत्युपकार माना गया था जिस काल में इस मंगल कृत्य की प्रथा थी पाठक वर्ग को उस समय का चित्र आकर्षित करके देखना योग्य है।

इस दिन विद्यार्थी केवल द्रव्य ही लेकर नहीं आते थे गुरु महाराज के अर्थ उत्तम २ व्यञ्जन भी लेजाते थे आज प्रातः काल से ही सद्गृहस्थियों के गृहोंपर उत्तम भोजनों के

बनाने का आरम्भ होरहा है। विद्यार्थी उत्तम पात्रों में भोजन तथा और अनेक मंगलद्रव्य गुरुओं को भूषित करने के अर्थ पुष्प मालायें हाथमें लिए चले जाते हैं। पाठशाला के स्थान में विद्यार्थियों के समूह वेदपाठद्वारा गगनमंडलभेदी स्वाहा शब्द के साथ प्रज्वलित अग्नि में आहुति देरहे हैं। सद्गृहस्थियों के पुत्र गुरुजनों की भेट के अर्थ उदारता से लाये हुए द्रव्यों को गुरुजनोंकी भेट करते हैं। गुरुजनों का सन्तोष भी सराहनीय है जो कुछ भी कोई भेट करता है वह उसी भाव से ग्रहण होता है जैसा कि सतोगुण से होना चाहिये. जैसी प्रसन्नता पुष्कल द्रव्य देने वाले के साथ है वैसी ही पत्रपुष्प भेट करने वाले के साथ भी होती है। गुरुजनों के इस वर्त्ताव का कारण उनका यह विचार है कि (अमृतं यदयाचितम्) बिनायाञ्चा के प्राप्त द्रव्य अमृत के समान होता है यह सर्वोत्तम वृत्ति है यही विचार सन्तोषी गुरुजनों का सबके साथ समान भावका कारण है। यदि गम्भीर विचार द्वारा देखाजाय तो गुरुजनों का पद बहुत ऊंचा माना गया है। माता पिता केवल जन्मदाता हैं मनुष्यत्व स्थापन करके ब्रह्म पद को प्राप्त कराना गुरुजनों ही के द्वारा माना गया है। मनुमहाराजने माता पिता तथा आचार्य्य की सेवा के अतिरिक्त और कोई पुण्य कर्म्म ही नहीं कहा।

तयोर्नित्यं प्रियं कुर्य्यादाचार्य्यस्य च सर्वदा।
तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपःसर्वं समाप्यते ॥

मनुमहाराजका कथन है कि माता पिता तथा आचार्य्य को प्रसन्न करने वाले छात्र को अन्य तपश्चर्य्यादिकर्म्म कर्त्तव्य नहीं रहता, इन्हीं तीनों की प्रसन्नता मुक्ति के अर्थ पर्य्याप्त है। कारण कि माता पिता तथा आचार्य्य की प्रसन्नता सदा-

चार से होती है। सदाचार ही मोक्ष के अर्थ कर्त्तव्य है अतएव माता पिता तथा आचार्य्य की प्रसन्नता छात्र गणों को सदैव कर्त्तव्य है। यद्यपि माता पिता तथा आचार्य्य के उपकारों से यह मनुष्य चाहे कितनी ही सेवा करें उऋण हो नहीं सकता तथापि अपनी शक्ति तथा विचारों के द्वारा उनकी प्रसन्नता कर्त्तव्य ही है। गुरुजनों के परमोपकार को जानने वाले महानुभावोंने छात्र के स्कंधोंपर वही भार स्थापन करा है जो इसको अपने परिवार के साथ कर्त्तव्य होगा। यह बात जो ऊपर कही गई है जिस काल मे वैदिक राज्य का मार्त्तण्ड प्रकाशित था वर्त्तमान दशा से इसका वही अन्तर है जो आकाश पाताल तथा रात्रि दिन एवं धर्म्म और अधर्म्म का देखा जाता है। एक बड़ाभारी अन्तर तो यही है कि पुराकाल में विद्या पढ़ाना इष्टथा वर्त्तमान में भाषा पढाना ही विद्या माना जाता है विद्या से ब्रह्मप्राप्ति का अभिप्राय था भाषा केवल अपनी आवश्यकताओं के प्रकाशनार्थ कही गई है। विद्यासे पदार्थ के तत्व बोध का अभिप्राय है भाषा से पदार्थ के स्वरूप मात्र का ज्ञान होता है। द्वितीय भेद यह है कि पुराणकाल में वे महापुरुष अध्यापक बनाये जाते थे कि जो ब्रह्मचर्य तथा गृहस्थ के अनुभवों का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त करलेते थे। वर्त्तमान में इस के विपरीत अध्यापक बनाये जातेहैं। पुराकाल में छात्रगणों को तप के साथ विद्या पढाई जाती थी जो वीरता उत्पन्न करने वाली थी सम्प्रति भाषा सिखाने के साथ शृंगार का समावेश रहता है जिसका फल विषयों की वृद्धि और अवनति के गर्त्त में ढकेलना है। दुःख इस बात का है कि जिन महानुभावों ने वर्त्तमान शैली के दोषों को विचार संस्कृत विद्या के आदरार्थ अपने विद्यालय खोले, अनुकरण उनको भी पाश्चात्यशैली

ही का करना पड़ा। जो महानुभाव भारत की पुरादशा का चित्र अपने नेत्रों से देखने के अनुरागी हैं उनको पुरा प्रथा को बलात् स्थापन करना योग्य है। निःशुल्क विद्यादान तथा अनुभवी महापुरुषों को अध्यापक बनाना आरम्भ करें। इसप्रकार के मंगल दिवसों के देखने का सौभाग्य तभी प्राप्त होगा जब कि उसी प्रकार के विद्यालयों की स्थापना का आरम्भ होगा। पुरा काल में इसी पूर्णिमा को पवनपरीक्षा करने का प्रचार था जिसका अभिप्राय वर्षाऋतु की वर्षा का न्यूनाधिक्य देखना प्रतीत होता है। आयुर्वेदाचार्य्यों ने वर्षाऋतु के चार मासों की दो संज्ञामानी है प्रावृट् और वर्षा। आषाढ़के महीने में वर्षाका कारण मेघ बनने आरम्भ होजाते हैं समुद्र तलसे उठे वायुओं का समूह गगनमंडल में एकत्रित होता है इस पवन परीक्षा से यह देखा जाता था कि वर्षा अधिकता से होगी वा न्यूनता से। कारण कि अन्नादि की उत्पत्ति वर्षा के ही द्वारा होती है अतिवृष्टि और अनावृष्टि दोनों ही अन्नकी सम्यक्-तथा उत्पत्ति की बाधक है अतएव इस परीक्षा के द्वारा यह ज्ञान प्राप्त कर जैसा कर्त्तव्य होना था, करते थे। अतिवृष्टि से अन्न की रक्षार्थ अवग्रह का उपाय होता था और अनावृष्टि का भा . होने पर उसकी वृद्धिका यत्न करते थे।

यदि यहां प्रश्न हो कि क्या वर्षा का न्यूनाधिक्य करनाभी उनके हाथ की बात थी, आज दिन के पाश्चात्य विद्वान उन वार्त्ताओं का आविष्कार करके वर्त्तमान की जनता को आश्चर्य्य में डाल चकित कररहे हैं जिन की विचित्रता बुद्धिमें भी नहीं आती। परन्तु वर्षा के न्यूनाधिक करने में वे भी अपने को असमर्थ कहते हैं। प्रश्न कर्त्ताओं की यह शंका इस भाव को ग्रहण करके तो ठीक है कि (यत्रदेशे द्रुमो नास्ति

तत्रैरंडो द्रुमायते) जिस देश में वृक्षों का अभाव होता है उस स्थान पर ऐरंड ही को वृक्ष मानते हैं या कहते हैं। सम्प्रति ऋषियों के समय का अभाव है अतएव इन्हीं चमत्कारों को बड़ा माना जाता है। पाठक गण यह तो विचारें कि जितने आविष्कार आप ने वर्त्तमान में देखे, उनमें कौनसा ऐसा है जिसको भारत की कहावत वा गाथाओं में आपने नहीं सुना सबका उल्लेख पाया जाता है बस बात यही है कि उनका लोप होगया इसकारण वे अनसुनी और अनदेखी भी होगई। जिस देश में जिस वस्तु का बाहुल्य होता है उस देश के निर्धन से निर्धन भी उससे कार्य्य लेते हैं जहां न्यूनता होती है वहां अधिक द्रव्य से धनी ही प्राप्त करते हैं। सुना जाता है कि झांसी प्रान्त में जवासा अधिकता से उत्पन्न होता है ग्रीष्म ऋतुमें वहां की निर्धन जनता भी उससे अपनी रक्षा करती है। सुनते हैं कि झांसी प्रान्त में उष्णता अधिक होती है जवासा ठंडा होता है इससे इसकी टट्टी बनाकर स्थानों पर लगाते हैं। हमारे प्रान्त में जवासा धनियों को भी बहुत व्ययसे प्राप्त होता है जिस कालमें भारत विद्याओं का निधि था उस काल में यहां की मूर्ख जनता भी इन विद्याओं से परिचित थी विद्वानों को तो क्या कहें। यद्यपि यह काल पाश्चात्य विद्याओं का प्रेमी बना हुआ अपने यहां के व्यवहारों के विषय में अप्रसन्न सा प्रतीत होता है तथापि किसी न किसी अंश में क्रीड़ा रूपसे ही उन बातों का स्वरूप दृष्टिगोचर हो ही जाता है। पुराकाल की वृद्धा स्त्रियां यह कृत्य किया करती थीं, जब कभी वर्षा इतनी अत्यन्ततासे होती थी कि जनता इतस्ततः जाने तथा अन्य व्यापारों के करने में दुःख जानती थी तब कहतीं थीं कि अब वर्षा को रोकना योग्य है। वर्षा के बन्द करने के अर्थ एक मृत्तिका के

छोटे से पात्र में तैल भर कर और उसमें कोयला तथा हलदी भरकर पृथिवी में गाड़ देनी थीं। इस विषयमें यह कहना ठीक नहीं कि वर्षा का अवरोध होता था वा नहीं परन्तु यह कृत्य होते अवश्य देखा गया। इत्यादि व्यवहारों के देखने से यह विदित होता है कि जिसकालमें मूर्ख स्त्रियों को भी इस प्रकार के योग विदित थे उस समय के तत्ववेत्ताओं के विषय में यह कहना कि वे इन बातों से नितान्त अज्ञ थे छोटा मुख और बड़ी बात वाली कहावत कही जा सकती है। ऋषियों के समय में तो वेद भगवान् की कृपा से इस प्रकार के कार्य्य बालकों के खेल थे।

ऋषिगण इस प्रकार के कार्य्यों को यज्ञ द्वारा सिद्ध करते थे जब यह ज्ञान होता था कि इस काल वर्षा की अतिवृष्टि की सम्भावना है तब यज्ञ के द्वारा वृष्टि की अधिकता रोकने के उपाय करते थे। अनावृष्टि की सम्भावना में वृष्टि होने वाले द्रव्यों के योग से यज्ञ करते थे इस विषयमें शंका करना अपनी मूर्खता प्रकाश करना है। जब हम वेदोपदेश के द्वारा तूष्णीं भावेन यह निश्चय किये बैठे हैं कि यज्ञ के द्वारा वर्षा का होना सम्भव है फिर इसके विषय में कि यज्ञ के द्वारा अवरोध होना असम्भव है कैसे जानलिया? प्यारे मित्रो! जिन योगों से वृष्टि होने की सम्भावना है तद्विपरीत योगों के प्रयोग से हटने की भी सम्भावना करनी चाहिए। यज्ञ की महिमा असीम है यदि अवकाश मिला तो एक छोटे आकार के पुस्तक द्वारा यज्ञ की महिमा का भी वर्णन करेंगे। पुराकालमें यज्ञपरीक्षादि कार्य्य कार्य्यरूप थे सम्प्रति क्रीड़ारूप से होते तथा पुरानी रेखा को ताड़ना मात्र है। सज्जनों को योग्य है कि इस प्रकार के कार्यों को अपनी विद्या बुद्धि से पुनरुज्जीवित करने का प्रयत्न कर

भारत के उत्तम व्यवहारों द्वारा अन्य विद्याभिमानियों को उन से लाभ प्राप्त करायें।

॥ इति व्यास तथा गुरु एवं पवनपरीक्षापूर्णिमा विचार ॥

अथ नागपञ्चमी।

यह भी एक मङ्गल दिवस है इस दिन भी भारत की स्त्रियां एक कौतुक करती देखी जाती हैं। यह मङ्गल दिवस श्रावण कृष्णा पञ्चमी तथा शुक्ला पञ्चमी दोनों को ही होता है प्रायः इसमें स्त्रियों का ही कर्त्तव्य विशेषता से दृष्टि गोचर होता है। इन दोनों पक्षों की पञ्चमियों का मङ्गल दिवस में ग्रहण होने के तीन कारण विदित होते हैं एक तो यह कि श्रावण शुक्ला पञ्चमी को कल्कि अवतार का जन्म दिन बताया जाता है। द्वितीय एक ऐतिहासिक घटना भी इस दिन हुई है, तृतीय जो कृत्य इस दिन होता है उससे भी इस दिवस का नाम नाग-पञ्चमी पड़ना सम्भव है। अब हम इसके तीनों कारणों का विचार आरम्भ करते हैं। यदि इस दिन कल्कि महाराज का जन्म माना जाय तो इसमें यह सन्देह शेष रहता है कि कल्कि महाराज का जन्म दिन श्रावण शुक्ला पञ्चमी कही गई है। श्रावण कृष्णा पञ्चमी को होने वाले मङ्गल दिन का कारण कल्किमहाराज का जन्म कहना ठीक प्रतीत नहीं होता। वस्तुतः नागपञ्चमी नाम पड़ने और कृष्णापञ्चमी को भी होने से यही विदित होता है कि कारण कोई और ही है। नामकरण से यह विदित होता है कि इस दिन नाग नाम वाली किसी व्यक्ति वा द्रव्य से अभिप्राय है। अन्वेषण करने से भी यही विदित हुआ कि वस्तुतः यही बात है। यह पूर्व कह आये हैं कि जिस विद्युत् की प्राप्ति तथा रक्षा के अर्थ देवशयनी के कृत्य में गृह की भित्तियों पर गोमय से रेखा करना बताया

गया है उसी विद्युत् की रक्षा तथा प्राप्ति के अर्थ यह मङ्गल दिवस नियत किया गया है। यह भी पाठकगण पूर्व के लेख में पढ़ आये होंगे कि मेघों के आधिक्य से जिनमें विद्युत् बाहुल्येन होता है पार्थिव विद्युत् के आकर्षित होजाने का भय है अतएव पार्थिव विद्युत् की रक्षा और आकाश विद्युत् के पतन का अवरोध इस प्रकार के कृत्यों से अभीष्ट था ऐसा प्रतीत होता है। वर्षाऋतु के बहुत से कृत्यों के देखने से यही विदित होता है कि प्रायः विद्युत से अपनी रक्षा अभीष्ट है इस नागपञ्चमी वाले मङ्गल कृत्य के कार्य्य को देखने और वर्त्तमान की जनता के विचारों में आकाश और पाताल का अन्तर प्रतीत होता है। जनता का विश्वास है कि यह नाग नाम सर्पों का पूजन इस हेतु से है कि जिससे वे प्रसन्न रहकर हमें तथा हमारे अन्य बान्धवों को काटें नहीं। व्यवहार इस दिन यह होता है कि जिस दिन यह मंगल दिन माना जाता है उससे एक दिन पूर्व रात्रि को स्त्रियां चने जल में भिगो देती हैं अगले दिन प्रातःकाल उठकर प्रथम गृहादि का लेपन और कुछ भाग पृथिवी से ऊपर आंगन से सम्बन्ध रखने वाली भित्तियों का लेपन कर स्नानादि से निपट एक पात्र में रात्रि के भीगे चने और बिना उष्ण हुआ गौ का दुग्ध लेकर स्त्रियों का समूह नगर से वा ग्राम से बाहर चला जाता है। वहाँ पहुंचकर प्रथम बालू से बांबी बनाती हैं उस बांबी पर वे चने और दुग्ध चढ़ाती हैं दुग्ध को तो बालू शोख लेता है और चनों को या तो गोपाल उठा लेते हैं यदि गोपाल न मिले तब किसी अन्य भिक्षुक आदि को दे देती हैं। इस कृत्य के पश्चात् गृह पर आकर दुग्ध में कोयला घर्षणकर उन लिपी हुई भित्तियों पर सर्पाकार एक चित्र बनाती हैं भोजन आज

के दिन खीर का बनाना अच्छा माना जाता है। इतना ही कृत्य इस मङ्गल दिवस को होता देखा जाता है। विचारणीय विषय इस मङ्गल दिवस के यह हैं एक तो यह कि नागपञ्चमी नाम किस कारण से रक्खा गया, द्वितीय यह कि इसमें इन कृत्यों के द्वारा लाभ क्या विचारा गया, तृतीय खीर का भोजन केवल स्वादार्थ ही है वा कोई फल भी होता है। प्रथम नामकरण के विषय में विचार—इस मङ्गलदिवस का नाम नागपंचमी रखने से यह विदित होता है कि इस कृत्य की क्रियाओं का प्रभाव मेघमण्डल से सम्बन्ध रखने वाला है नाग नाम से संस्कृत में सर्प, हस्ती और मेघ इन तीन का बोध होता है। इन तीनों का नाग नाम पड़ने का कारण यह है कि संस्कृत में नग शब्द से पर्वत तथा वृक्षादिका ग्रहण इस लिए है कि (नगच्छति-इति नगः) जो चले नहीं एक स्थान पर स्थित रहे इससे पर्वत और वृक्षों की नग संज्ञा है। इस नग शब्द से जो कि पर्वत का वाचक है इन तीनों की नाग संज्ञा बनी है यदि यहां यह प्रश्न हो कि पर्वत से इनके नामों का ग्रहण किस प्रकार हुआ तब यह कहना संतोषजनक होगा कि संस्कृत में तद्धित से ऐसे प्रत्यय होते हैं जिनसे द्रव्यों तथा व्यक्तियों की उत्पत्ति, निवास तथा प्राप्ति आदि का ग्रहण होता है एवं इन शब्दों से भी पाया जाता है। हस्ती का निवास स्थान तथा उत्पत्ति पर्वतों से ही होती है मेघ (बादल) भी बहुधा पर्वतों में बहुतायत से होते हैं जिन महापुरुषों ने पर्वतों में भ्रमण करा है उनके मुख से सुना गया है कि पर्वतों में मेघ नित्य बनते रहते हैं पर्वतों से ऊपर को उठते, वर्षते दृष्टि गोचर होते हैं पर्वतों में उत्पन्न होने से मेघों का नाम नाग पड़ा है, मेघों से कोई फल विशेष प्राप्त करना व अपने किसी कृत्य का उनपर प्रभाव डालना इस

मङ्गल दिवस से अभीष्ट था इससे इसका मुख्य नाम नाग-पञ्चमी धरा गया। अज्ञजनता की भ्रान्ति से मेघ अर्थ में प्रयुक्त शब्द छूटकर सर्प के नाम में प्रयुक्त होगया। शब्द का वह अर्थ जो उसका प्रयोक्ता किसी अभिप्राय को समझकर रखता है छूट जाना असम्भव नहीं यह भूल तो अज्ञजनता की है शब्दों के कुछ से कुछ अर्थ करना विद्वानों के द्वारा भी होते हैं इसमें हम आप पाठकों को संस्कृत ग्रन्थों तथा कहावतों के अनेक प्रमाण दे सकते हैं।

संस्कृत ग्रन्थ के प्रमाणों में से वैद्यक के एक प्रामाणिक ग्रन्थ माधवनिदान का ही प्रमाण देते हैं। ज्वर की उत्पत्ति के विषय में वैद्याचार्य धन्वन्तरि महाराज ने अपने सुश्रुत ग्रन्थ में लिखा है कि :—

रुद्रकोपाग्नि संभूतः सर्वभूतप्रतापनः ज्वरोष्टधा पृथग्द्वन्द्वः संघातागन्तुजः स्मृतः ॥

आमाशय के वायु के बिगड़ने से आठ प्रकार का ज्वर उत्पन्न होता है सुश्रुताचार्य्य के समय में रुद्र शब्द से वायु का ग्रहण होता था पौराणिकीय रुद्र की वर्त्तमान में जिनको महादेव कहते हैं, कल्पना नहीं हुई थी। माधवाचार्य्य के समय में रुद्र शब्द से मूर्त्तिमान् महादेव का ग्रहण होना आरम्भ हो गया था अतएव माधवाचार्य को यह सन्देह हुआ कि रुद्र को कोप क्यों और किस काल में हुआ ? रुद्रकोप शब्द से वायु के बिगड़ने की ओर ध्यान ही नहीं गया वर्त्तमान शिवपर ही दृष्टि पड़ी अतएव शिव के ही कोप का कारण खोजा, जिस से माधवाचार्य्य को यह विदित हुआ कि दक्ष के यज्ञकाल में सती के भस्म होजाने से क्रोध उत्पन्न हुआ था तभी ज्वर की उत्पत्ति मानना सार्थक, होगा, सुश्रुत के कहे रुद्रपर ध्यान नहीं गया।

वेद का दर्शन माधवाचार्य्य को हुआही नहीं था ऐसा जान पड़ता है यदि होता तो वहीं देखलेते। ज्वरकी उत्पत्ति का वर्णन अथर्ववेद में स्पष्ट प्रकार से कियागया है माधवाचार्य्य का ध्यान एक वर्त्तमान शिव (रुद्र) परही रहा उसी महानुभाव के क्रोध की खोज कर अपना आधा भाग यह (दक्षापमानसंक्रुद्धो रुद्र-निःश्वाससम्भवः। ज्वरोष्टधा पृथक् द्वन्द्वःसंघातागन्तुजःस्मृतः)

श्लोक बना स्वयं भी शुद्धार्थ से वंचित रहे और औरों को भी वञ्चित रक्खा जब एक ग्रन्थके रचयिता और आचार्य्य पदा-रूढ़ से यह स्वच्छ प्रमाद हुआ तब फिर अब जनता का क्या दोष है? इसी प्रकार कहावत के शब्दों में कुछ का कुछ होगया लोक में एक कहावत है कि (सूरत न शिकल ज़रा भाड़ में से तो निकल) इस कहावत का तात्पर्य्य यह है कि किसी भूंडे व्यक्ति को भाड़ में से निकलने को कहा जाता है। यदि यहाँ भाड़ शब्द का ग्रहण करें तो भाड़ में जाकर तो अच्छे भी भूंडे होजाते हैं भाड़ का स्थान स्वयं कितना शोभायमान है इस से यह जाना जाता है कि यहाँ भाड़ शब्द बहार के स्थान में प्रयुक्त होगया है बहार उस स्थान का नाम है जहाँ पुष्पों के तथा अन्य वृक्षों के समूह होते हैं वहाँ कोई मलिन आकृतिका भूंडा पुरुष पहुंच गया होगा वह वहाँ अच्छा प्रतीत न हुआ होगा इसपर किसी ने यह कहा होगा कि तुम यहाँ के योग्य नहीं हो चले जाओ भाड़ के स्थान में बहार शब्द प्रयुक्त करने से जनश्रुति का अर्थ सार्थक होजाता है। शब्द का उच्चारण शुद्ध न होने से भी अर्थ का बोध न होकर अर्थ का कुछ और ही अर्थ होजाता है। पाठकवर्ग ने यह सुना होगा कि अञ्जनहारी एक नेत्र में होने वाला रोग विशेष है यह शब्द संस्कृत है इस के नाम की व्युत्पत्ति यह है कि (अञ्जनं हर-

तीति—अञ्जनहारी) जो अँजन करने में बाधाडाले इस रोग के होने में अँजन लगाने से कष्ट अधिक होता है अतएव इस रोग को भाषा में अँजनहारी कहने का प्रचार होगया। एक जन्तु का नाम भी अञ्जनहारी है, इस जन्तु का नाम अञ्जनहारी पड़ने का कारण यह है कि यह स्वयं प्रसव नहीं करती एक जन्तु विशेष को पकड़ कर अपना जैसा बनालेती है इस हेतु से इसका नाम अनजनहारी अर्थात् ब जनने हारी और अञ्जनहारी और अनजनहारी इन दोनों का एकसा उच्चारण होने लगा पहिले अञ्जन के अर्थ विस्मृत होकर विश्वास अज्ञ जनता का होगया कि इस अनजनहारी जन्तु विशेष को मारने वा इसका गृह भिन्न करने से यह रोग नेत्र में होता है अज्ञ जनता में बहुधा यही विश्वास पाया भी जाता है। जब कभी किसी को यह नेत्र रोग होता है तब अज्ञ जनता यही कहती है तुमने अनजनहारी का गृह भिन्न करा होगा इत्यादि अनेक प्रमाण हैं। इसीप्रकार यह नागपञ्चमी वाला कृत्य प्रतीत होता है इस में नाग शब्द से मेघों का ग्रहण न होकर सर्प का ग्रहण होने लगा। यदि और गम्भीर विचार करके देखाजाय तो यह स्पष्ट होता है कि यद्यपि नाग शब्द सर्प का वाचक है तथापि नाग शब्द से सब सर्पों का ग्रहण करना अज्ञता है नाग शब्द उसी सर्प का बोधक है जो सर्वदा बाहुल्येन पर्वतों की कन्दराओं में निवास करते और चलने फिरने में असमर्थ होते हैं जिनको भाषा में अजगर कहते हैं वस्तुतः नाग शब्द का प्रयोग इसी अजगर में होना सार्थक है कारण कि पर्वत में होने और स्वयं चलने में समर्थ न होने से। वर्त्तमान में जिन सर्पों का ग्रहण जनमण्डल करता है नाग नामसे उनका ग्रहण सर्वथा अयुक्त प्रतीत होता

है। जब किसी द्रव्य या व्यक्ति के शुद्ध अभिप्राय की विस्मृति होजाती है तब अनेक बेढंगी कल्पना करनी पड़ती हैं। सर्प का पूजन मानने से सर्प का स्थान वल्मीक बनाना पड़ा मूर्खों ने यह भी जान रक्खा है कि सर्पों के रहने का स्थान वल्मीक है यह नितान्त अज्ञता है सर्प वल्मीक में जन्तुओं के भक्षणार्थ जाता है उसका स्थान नहीं सर्पों को दुग्ध पिलाना भी किसी विद्वान् ने अच्छा नहीं माना प्रत्युत पाप कहा है जैसे कि:—

पयः पानं भुजंगानां केवलं विषवर्धनम् ।

सर्पों को दुग्धपान कराना उनके विषको बढ़ाना है। पुराकाल की जनश्रुतियों से यह भी पाया जाता है कि वे कहावत मूर्खों के उचित अनुचित कर्त्तव्यों पर कहीगई हैं जिस से यह विदित होता है कि यह कहावत अमुक कर्त्तव्य का निषेध करती है और साथ ही में अमुक कर्त्तव्य को बताती है जैसे कि एक यह जनश्रुति आती है कि (गृह आया नाग न पूजकर बाँबी पूजन जाय) घर आये नाग का पूजन नकर बाँबी पूजने जाती है, यह मूर्खता है। इस कथन से वक्ता की यह ध्वनि भी पाई जाती है कि गृह के नाग को न पूज जिसका पूजना हितकर होगा बाँबी के नाग का पूजन हानिकर और निरर्थक है। यह है भी ठीक सर्प एक तिर्यक् योनि का जन्तु है जो मनुष्यों का प्राणघातक है। भला उनका पूजन कहीं स्नान गन्ध पुष्पधूपादि से भी कभी होसकता है। इत्यादि कारणों से नागशब्दसे विषधर जन्तु विशेष सर्प का पूजन नहीं है इस स्थान पर नाग शब्द से मेघ का ग्रहण है उसी के पूजन का विधान है और उक्त जनश्रुति से गृह पर आये नाग का पूजन कर्त्तव्य है।

यदि यहाँ यह वक्तव्य हो कि मेघों का पूजन कैसा ? तब यह कहना पर्याप्त है कि देखो वर्षाऋतु वाला स्थल, वहाँ हम

पूजन का अर्थ बता आये हैं। पवित्रता उत्पन्न करना पूजा है, जिसके दो अभिप्राय हैं दूसरे की मलिनता नष्ट करके उसे पवित्र करना वा उस पवित्रता से स्वयं लाभ उठाना। नाग पञ्चमी वाले कार्य्य से इस के कर्ता के दो अभिप्राय प्रतीत होतेहैं एक तो विषों से अपनी रक्षा और द्वितीय पार्थिव विद्युत् की स्थिति तथा आकाश मण्डल के विद्युत् पतन का अवरोध ये ही कारण इस कृत्य से पाये भी जाते हैं। किसी अंश में अज्ञ जनता की मूर्खता भी सराहनीय होजाती है, वस्तुतः अज्ञ जनता स्वयं किसी आविष्कार के करने में असमर्थ है परन्तु आविष्कृत को ग्रहण भी इसप्रकार करती है कि प्राणान्त से उसे छोड़ती भी नहीं चाहे वह कार्य प्राणहन्ता हो जाय, परन्तु करना अपना इष्ट ही समझेगी। यही नागपञ्चमी वाला कृत्य जिसमें प्राणनाशक सर्प का संयोग सम्भव था प्राणों का भय न कर भी करे ही गई। इसमें एक रहस्य भी है वह यह कि इसके कर्णों में किसी महानुभाव ने यह शब्द भी डाले कि इस दिन का कृत्य विषबाधा से बचने के अर्थ है। इसी हृदयंगम शब्द ने इसकी भ्रांति को दृढ़ता दी जिसने कि इसे भयङ्कर सर्पों की ओर प्रेरित किया। वस्तुतः यह कृत्य मेघों के अर्थ कराना भी विष से ही अपनी रक्षा करता है। यदि यहाँ यह शङ्का उत्पन्न हो कि क्या मेघों से भी विष प्राप्ति की सम्भावना है यह एक अनूठी बात है। तब इसका उत्तर यह होगा कि यह बात अनूठी तो अवश्य है परन्तु है सत्य। इस रहस्य को वेद के अवगाहन करने वाले अच्छी प्रकार जान सकते हैं वेद की शैली यह है कि वह शब्द के उस स्वरूप को ग्रहण करता है कि जिससे आगे स्थूलरूप बनते चलेजायें। वस्तुतः विष शब्द उस द्रव्य में प्रयुक्त होता है। जिससे कि प्राणयात्रा में बाधा

उत्पन्न हो । वेद कथन की शैली यह है । प्रकाश अमृत अन्धकार मृत्यु, धर्म अमृत अधर्म मृत्यु, दिन अमृत रात्रि मृत्यु, जागृति अमृत स्वप्न मृत्यु, कर्म अमृत अकर्म मृत्यु, हर्ष अमृत और ग्लानि विष, वेद कथन की इस शैली से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि जीवन के ह्रास करने वाले विष संज्ञक और वृद्धि या रक्षा करने वाले अमृत रूप हैं । मेघ प्रकाशरूप अमृत का अवरोधक होने से विष संज्ञा वालों में ग्रहण किया गया कोशों के देखने से भी यह विदित होता है कि मेघावृत दिन चित्त को हर्षप्रद न होने से (मेघाच्छन्नं च दुर्दिनम्) दुर्दिन कहा गया है । इत्यादि कारणों से यह नागपञ्चमी वाला दिन मेघों से रक्षा के अर्थ ही नियत हुआ था यह प्रतीत होता है ।

वर्षाऋतु में मेघों से दो भय उत्पन्न होते हैं एक तो यह कि इस ऋतु में विद्युत् पतन का भय अधिकतर होता है । द्वितीय यह कि मेघों के समूह में उत्पन्न हुआ विद्युत् अपने आधिक्य से पार्थिव विद्युत् का आकर्षण न करले । मानव मण्डल तथा अन्य समस्त रचना के अर्थ विद्युत् की उपयोगिता पूर्व कह आये हैं । अब शेष यह रह गया है कि जो कृत्य इस मङ्गल दिवस को होता है वह तो एक बालक्रीड़ा है एक बड़े कार्य्य में यह क्रीड़ा किस प्रकार उपयोगी होनी सम्भव है । यह कथन प्रत्यक्ष रूप से तो ठीक है क्रीड़ा मात्र ही है । परन्तु फल इसका विशेष जाना गया है, यह शङ्का उन्हीं आत्माओं में उठती है जिन्होंने आयुर्वेदाचार्यों के सूक्ष्म विचारों का अवगाहन नहीं किया । विसूचिका रोगमें कपूर का नित्य अपने पास रखना हितकारी कहा गया है । सर्प दंश के रोगी को यदि औषधि न प्राप्त हो तो ऐसे उपाय अवश्य करते रहने योग्य है जिससे कि अचेतना प्राप्त न हो । सर्प दंश के रोगी

को बहुत से ग्रामीण झांझ बजाकर अच्छा करने का उपाय करते देखे जाते हैं। वर्त्तमान के विज्ञ इस कृत्य को निरर्थक जानते या मानते हैं। यह उपाय विशेषतया उन स्थानों पर होता है जहां ओषधि प्राप्त होने की सम्भावना नहीं होती है। यह हमने माना कि प्रायः इस कार्य्य को मूर्ख ही करते दृष्टिगोचर होते हैं परन्तु यह भी बुद्धि में नहीं आता कि इस योग को मूर्खों ने निर्माण कर लिया हो, इस योग में हाथ किसी विशेष बुद्धि का जान पड़ता है। तात्पर्य्य इस तीव्र शब्द को कर्णगत करने से यही है कि चेतना नष्ट न हो।

यदि यहां यह शंका हो कि यदि केवल तीव्र स्वर ही कर्णगत करना अभीष्ट हो तो ढोल वा तुरही आदि का शब्द जो इस से भी तीव्र होता है क्यों नहीं रक्खा; इस का उत्तर यह है कि इस में भी एक रहस्य है ढोल का शब्द चर्म्ममय होने से अपने तमोगुण को लेकर ही कर्णगत होता है जो निद्रा की वृद्धि को उत्पन्न करके कर्त्ता के अभिप्राय का विरोधी होकर कार्यसाधक नहीं होता। तुरही आदि का शब्द मनुष्य के उस श्वास द्वारा निकलता है जो भीतर से बाहर को आता है यह श्वास अशुद्ध माना गया है यह भी शुद्धि का उत्पादक नहीं होगा। अतएव शुद्ध शब्द कांस्यपात्र द्वारा उत्पन्न करना योग्य है। यदि यहां यह प्रश्न हो कि यदि शुद्धि ही अभीष्ट थी, तब स्वर्ण वा चांदी के पात्रों की ध्वनि अच्छी थी। इस में केवल इतना वक्तव्य है कि प्रथम तो बहुमूल्य होने से सर्व साधारण को प्राप्त होना कठिन है। द्वितीय एक धातु से इतनी तीव्र शब्दोत्पत्ति नहीं होती जितनी कि दोधातुओं के मेल से। यदि कहो कि कई धातुओं के योग से बने घड़ियाल आदि का शब्द भी तीव्र होता है इस का समाधान पूर्व होचुका है।

सब को सब कालों में इन का मिलना कठिन है, इन सब कठनाइयों पर ध्यान रख कांस्यपात्र ही सुलभतया मिलना समझा गया।

यह इतना लेख केवल शंका समाधान ही से बढ़ गया मूल मन्त्र इतना था कि आयुर्वेदाचार्यों की बुद्धि बहुत सूक्ष्मता से कार्य करने वाली होती है। जो कार्य साधारण बुद्धि वालों का क्रीड़ारूप दृष्टि गोचर होता है, आयुर्वेदाचार्य्यों की दृष्टि में वह बड़े कार्य का आश्रयदाता है। कार्य के साधन कार्य के महत्व को जताने वाले होते हैं। इस कृत्य में दुग्ध के साथ कोयला घिसना और उससे सर्पाकार रेखा आकर्षित करना क्रीड़ा तो अवश्य है परन्तु यह भी विचारना योग्य है कि क्या यह योग साधारण व्यक्ति का निर्मित है? केवल इतना कहा जा सकता है कि साधारण व्यक्ति इस प्रयोग का व्यवहार करता है, निर्माता कोई बुद्धि विशेष वाली व्यक्ति है। पाठक-गण! उस प्रयोग से भली भांति परिचित होंगे जो कि अग्नि क्रीड़ा में प्रयुक्त होता है संस्कृत में इसका नाम खधूप (बारूद) है इस योग का अतुल प्रभाव प्रसिद्ध है इसके तीन साधारण योग हैं। शोरक (शोरा) वाड़ी की लकड़ी का कोयला और गन्धक। ये तीन वस्तु पृथक् २ व्यवहार में लाने से साधारण दृष्टिगोचर होते हैं तीनों का संयोग अतुल प्रभाव वाला हो जाता है। जिन पर्वतों तथा प्राकारों को तीक्ष्णशस्त्र भी तोड़ने में असमर्थ प्रतीत होते हैं उनको यह योग मुहूर्त्तों में छिन्न भिन्न कर देता है। पदार्थों के युक्तियुक्त करने का ज्ञान तत्व वेत्ताओं को ही होता है और वे ही उस योग के प्रभाव को जानते हैं। घृत और मधु दोनों अमृत रूप हैं निघण्टुओं में इनके गुण बहुत उत्तम लिखे हैं परन्तु मान से मिलाये और

कांस्य पात्र का योग होने से विष का गुण करने वाले होजाते हैं अतएव विद्वानों के द्वारा साधारण योगों से बनाया हुआ प्रयोग किसी विशेष गुण वाला होना सम्भव है, उसमें अपनी मूर्खतासे दोष लगाना अच्छा नहीं।

इसीप्रकार नागपञ्चमी के दिवस दुग्ध में कोयला घर्षण करके उससे रेखा करना भी मूर्खता नहीं इस योग में भी कुछ रहस्य अवश्य प्रतीत होता है। कोयले के कुछ अपूर्व कार्य्य तो देखे भी जाते हैं। वाष्पीय यान के शकटों में जो प्रकाश रात्रि के समय में होता है वह गैस कोयले से ही निकाली जाती है, ऐसा सुना जाता है। कूपों में जल शुद्धि के अर्थ कोयला डाला जाता है। पाश्चात्य पुरुष अपने पान के अर्थ जल कोयले से शुद्ध करते देखे जाते हैं, इससे ज्ञात होता है कि कोयला पदार्थों को स्वच्छ करने वाला है। दांतों को स्वच्छ करने के अर्थ बहुत स्त्री पुरुष कोयले को पीसकर मंजन करते हैं इतने गुण तो कोयले के प्रत्यक्ष ही हैं। दुग्ध में घर्षण से किसी और विशेष गुण की वृद्धि होती हो उसमें सन्देह करने की कौन सी बात है? यह भी देखा जाता है कि दुग्ध के साथ कोयले का कोई संबंध विशेष भी माना गया है। जब कभी ग्राम से अपक्व दुग्ध मंगाना होता है, तब ग्राम से दुग्ध लाने वाला व्यक्ति कोयला डालकर लाता है यह कार्य्य उस ग्रामीण व्यक्तिका नहीं, उसे किसी ने बताया अवश्य है, पूछने पर केवल इतना उत्तर देता है कि कोयला डालदेने से दुग्ध फटने का भय नहीं रहता। सम्प्रति तो यह व्यवहार दृष्टि गोचर ही नहीं होते कारण कि नूतन प्रकाश ने स्त्री पुरुषों के सब चाल ढाल निराले ही करदिये। इतनेपर भी कहीं पुराने विचारों वाली कोई स्त्री यह कार्य्य कर बैठती है तो वर्त्तमान

सभ्य जनता की दृष्टि में इतनी घृणित समझी जाती है कि मानों इस से अधिक और कौन मूर्खता होगी।

पुरा काल में स्त्रियां दुग्ध पिये हुऐ बालक को चांदनी रात्रि में कहीं जाने पर कोयला चबा देतीं थी, यह उनको किसी ने बता दिया होगा यह उपज उनके अन्तःकरण की नहीं थी। हमें इस विषय पर विशेष कथन की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती इतने लेख से पाठकगण को केवल इतना दिखाना इष्ट था कि इसप्रकार के पुरा कालके व्यवहारों से यह ज्ञात होता है कि दुग्ध के साथ कोयले का संबंध विशेष माना गया है। जिस कालमें भारत देश समस्त विद्याओं का केन्द्र था उस कालमें यहां की मूर्खसे मूर्ख जनता भी प्रत्येक विद्याके किसी न किसी अंशसे परिचित अवश्य थी। चिकित्सा के अपूर्व योग यहां की महिलाओं को विदित थे। सुना जाता है कि पिछले कालमें अगलपुर (आगरा) के चिकित्सा विद्यालय में महाशय मुकंदलाल एक अनुभवी चिकित्सक थे, उन्होंने एक निघण्टु (मेडियामेडिका) बनाया था उसमें भारत के दो प्रसिद्ध योगों को भी लिखा था, उन योगों की प्रशंसा में यह भी कथन किया था कि ये दोनों अपूर्व योग सिद्ध हुए हैं, इसलिये मैंने इनको लिखा है। उनमें से यह योग तो नेत्ररोगों पर लिखा था हैउ, रसौत, अफयून, रसौत चूक के अर्कमें घर्षण करके नेत्र रोगों को अच्छा है। दूसरे ज्वर पर यह योग है हैडबड़ी आमला, चीता, पीपल, सैंधानमक इनको समान भाग ले और पीस छान तीन माशे की फकनी करै, इन दोनों योगों को भारत की स्त्रियां विना वैद्यके पूछे स्वयं प्रयोग करतीं और औरों को कराती हैं, ऐसे अनेक योग विना पढी लिखी स्त्रियों को आते हैं। इसीप्रकार विद्युत् को उत्पन्न करने के योग भी करती हैं।

भारतवर्ष में बालकों को एक रोग दृष्टि दोषका बताया जाता है इस रोग का वर्णन ग्रन्थों में इस नाम से नहीं पाया जाता, परन्तु लोकमें इस रोग का नाम है नजर लगना। कारण इस का यह बताया जाता है कि जिस स्त्री या पुरुष की दृष्टि में विद्युत् विशेष होता है, यदि वह प्यार की दृष्टि से भी देखे तब भी दुग्ध पोषी सुकुमार बालक पर उसका प्रभाव होता है, उससे बालक विकल होजाता है, अचेतना भी हो जाती है। इस दृष्टि दोष की चिकित्सा भी स्त्रियां स्वयं ही कर डालती हैं, चिकित्सा की विधि और योग यह देखे जाते हैं कि स्त्रियां जब कभी किसी बालक को दृष्टि दोष से हुए रोग का निश्चय करती हैं, तब गेहूं का छानस और नमक मिर्च का एक योग बना अपने दोनों हाथों की मुट्ठियों में ग्रहण कर रोगी बालक के शिर से कुछ काल स्पर्श कर पैरों की ओर ले जाती हैं। सातवार इसीप्रकार उतार कर उस योग को अपने दोनों पैरों में हाथ कर अग्नि में डाल देती हैं। यह विद्युत् को उत्पन्न करने वाला योग स्त्रियों को किसी विद्युत् विद्या के ज्ञाता का बताया हुआ जान पड़ता है। प्रयोग करने की विधि से भी यह ज्ञात होता है कि यह क्रिया विद्युत् विद्या के मर्मज्ञ द्वारा प्रचलित हुई है। कारण यह है कि मूर्खा स्त्री प्रयोग कर्त्री तो अवश्य है परन्तु यह ज्ञान उसकी बुद्धि से निकाला विदित नहीं होता कि शिर से पदों की ओर हाथों को लेजाना चाहिये, यह कार्य्य किसी मानसिक योगविद्या के ज्ञाता का है।

वर्त्तमान में विद्युत् विद्या के द्वारा चिकित्सा करने वालों का कथन है कि यदि मनुष्य को अचेत करना हो तब तो पदों की ओर से शिर को हाथों को ले जाना चाहिये। चेत

करने की दशा में शिरसे पर्दों की ओर हाथों को लाने की आवश्यकता है। स्त्री को बालक के शिरमें मानसे अधिक पहुंची विद्युत् जिससे कि बालक विकल है, निकालना अभीष्ट है। अतएव यह स्त्री शिरसे पर्दों की ओरही किया करती है। इस लेख से सिद्ध होता है कि पुराकाल के बहुत से व्यवहार ऐसे पाये जाते हैं कि जिनमें कुछ सार पाया जाता है। पुराकाल के व्यवहारों से अपरिचित और नूतन प्रकाश के द्वारा बुद्धि से कार्य्य लेने वाले व्यक्ति ऐसे व्यवहारों को बड़ी तुच्छ दृष्टि से देखते हैं और इनको थियासोफिस्ट मण्डल की करतूत बतलाते हैं। यह तो ऐसे विचार वालों का अधिकार है कि वे अपने विचारों को चाहे जिस ओर लगालें परन्तु विचारना इस बात का है कि उक्त मण्डल के जन्म समय से पूर्व भी इस प्रकार के व्यवहार भारत में होते थे वा नहीं ?

उक्त सभा का जन्म उसी दिन पाताल देश में हुआ बताया जाता है, जिस दिन मुम्बापुरी में परिव्राजक श्रीस्वामी दयानन्द जी महाराज ने आर्य्यसमाज स्थापित किया था, जिसको अभी ५० वर्ष पूरे नहीं हुए। जिस कार्य्य वा व्यवहार का वर्णन इस पुस्तक में हुआ है वह कार्य्य एक दो शताब्दी से भी ऊपर से होता देखाजाता है ५०।५५ वर्ष की तो अपनी देखी बात है। माता आदि जिनकी अवस्था एक शत से ऊपर होती है उनसे श्रवण की हुई है फिर यह किस प्रकार माना जाय कि थियोसोफिकल सभा का अनुकरण है। ऐसा मान लेना अपने यहाँ के व्यवहारों से अपरिचितता प्रकट करना है।

इस प्रकार के कथनों से हमारा यह अभिप्राय नहीं कि जनता इनको यथा तथ्येन मानही ले हमारा अभिप्राय कार्य्य

के योगों पर ध्यान देकर यह विचार करना है कि इन योगों की निर्माता साधारण जनता हैं या कोई व्यक्ति विशेष? यदि कोई व्यक्ति विशेष है तब यह विचारना भी अवश्य हैं कि इन के बनाने से क्या लाभ सोचागया, उसयोग के अवयव क्या उपदेश देते हैं? हमने मूर्खों के द्वारा होते हुए कृत्यों के प्रतिपादन का साहस नहीं किया। विचारशील सज्जन कृत्यों में व्यवहार कियेगये योगोंके अवयवोंपर ध्यानदेकर स्वयं विचार करें, व्यक्तिगत विचार को छोड़दें। यदि कोई भयानक आकृति वाला पुरुष रत्न धारण करे तो निन्दनीय उसकी आकृति है, न कि रत्न। यह विचार पक्षपात वाली बुद्धियों का होता है सत्यग्राही ऐसा नहीं करते जिन योगों का हमने उल्लेख किया है उनपर विचार होना योग्य है। हमें इन प्राचीन व्यवहारों के द्वारा यह दिखाना इष्ट था कि पुराकाल के विद्वान् नवीन आविष्कारों द्वारा समय २ पर जनता के हितार्थ ऐसे २ अपूर्व योग बतलाते थे, जिनमें लाभ के अतिरिक्त हानि प्रतीत नहीं होती। भारत की स्त्रियाँ भी उन अपूर्व योगों से भलीभाँति परिचित होती थी।

दुग्धके साथ कोयले का संबंध विशेष पाया जाता है। कोयले के कार्य्य पूर्व कह आये जिनसे यह ज्ञात होता है कि कोयला विशेष शक्तियों को उत्पन्न करने वाला है। ग्रामीण के उस व्यवहार से जो कि वह दुग्ध के साथ कोयला डालकर लाता है और कहता है कि कोयला डालने से दुग्ध के फटने का भय नहीं रहता ज्ञात होता है कि कोयला दुग्ध पर उसी विद्युत् का पतन नहीं होने देता जोकि दुग्ध को फाड़ने वाली है। वा यूं कहो कि दुग्ध में वह अपूर्व गुण उत्पन्न करदेता है कि जिस से दुग्ध अपने भिन्न करने वाले विरोधी विद्युत् का

सहन करने वाला होजाता है। इस समय भी दो कार्य्य कर्त्तव्य माने गये हैं एक तो आकाश के विद्युत् पतन से अपनी रक्षा, द्वितीय पार्थिव विद्युत् से आकर्षित न होने देना। जहाँ इन दोनों कार्य्यों के अर्थ अन्य उपाय बताये गये हैं वहाँ एक छोटा सा उपाय यह भी उपयोगी जान कर ही रक्खा गया प्रतीत होता है।

शरीरों के विद्युत् का ह्रास न होने के अर्थ और भी बहुत से व्यवहार इस ऋतु में बताये गये हैं पाठकगण आये वर्ष देखते होंगे कि वर्षा के आते ही भारत में सहस्रों स्थानों पर व्यायामशाला खुल जाती हैं। शारीरिक श्रम के द्वारा शरीरकी विद्युत् को बढ़ाना इस व्यायाम का मुख्योद्देश्य है। शरीर पर तैल का मर्दन व्यायाम तथा मल्लयुद्ध के समय शरीर में मृत्तिकाका लेपन आदि प्रयोग इस विषय के स्वयं साक्षी हैं। जिन देशहितैषी सज्जनों ने इस ऋतु में शरीररक्षा के अर्थ ये उपाय बताये हैं कि विशूचिका रोग के भय से बचने के अर्थ जैसे कर्पूर समीप रखना किसी न किसी अंश में लाभदायक है एवं कोयले को दुग्ध में घर्षणकर भित्तियों की रेखा भी किसी दोष से बचने के हेतु ही से बताई गई हैं। यह कार्य्य साधारण जनता की बुद्धिकी उपज नहीं।

एक ऐतिहासिक घटना के द्वारा भी इस मंगल दिवस का पता चलता है जिन महाशयों को महाभारत की गाथा सुनने का अवसर प्राप्त हुआ होगा उन्होंने यह भी अवश्य श्रवण करा होगा कि महाराज जनमेजयने एक बहुत बड़ा यज्ञ किया है, जिसमें सर्पों का विध्वंस हुआ है। गाथा से विदित होता है कि केवल एक तक्षक ही शेष रहा है शेष सभी सर्पों का समूल नाश कर दिया है। इस गाथा का रहस्य सभी स्त्री

तथा पुरुषों को विदित है कि वैदिक मतावलम्बी सम्राट् जनमेजयने वस्तुतः सर्पों को ही भस्म किया है। साधारण जनता के अतिरिक्त भारत के बांचने वालों का भी यही निश्चय है। यहां यह शंका बाधित करती है कि यदि वस्तुतः सर्पों को ही भस्म किया तब क्या सम्राट् जनमेजय और उस समय के ऋत्विज होतादि यज्ञ के स्वरूप को नहीं जानते थे ? कारण कि यज्ञ का नाम वेदों में अध्वर है जिसका अर्थ है कि हिंसा से रहित उस यज्ञ में सर्पों के मांसों वाले शरीरों से क्यों हवन किया गया ? यदि यज्ञ शब्द पर विचार किया जाता है तो भी इस प्रकार का कार्य अशुभ है। यज्ञ शब्द (यज्) धातु से बना है जिसका अर्थ है कि देवपूजा, संगतिकरण और दान। सर्पों के भस्म करने से न देवपूजा होना सम्भव है और न संगति होती है दान किसी प्रकार माना ही नहीं जाता। फिर बुद्धि इस बात को किस प्रकार स्वीकार करले कि इन्हीं सर्पों का भस्म किया गया जो मनुष्यों को काटते हैं ' ऐसा मानना भ्रांति ही नहीं नितान्त मूढ़ता है।

प्रिय पाठकवृन्द ! यह आपको विदित है कि शास्त्रों में जितने भेद दृष्टिगोचर होते हैं उन सबका मूल कारण शब्दों का ठीक प्रयोग न होना है। इस गाथा की भ्रांति का कारण भी यही प्रतीत होता है, भारत की और गाथाओं से यह भी प्रतीत होता है कि उस समय में तक्षक और नाग ये दो जातियां मनुष्यों ही की थीं। अर्जुन का विवाह उलोपी नाम की नाग कन्या से हुआ है। इससे विदित होता है कि नाग और तक्षक इनके नाम मात्र दो थे जाति एक ही थी और मनुष्य थे। यह भी उस गाथा से विदित होता है कि सम्राट् जनमेजयने अपने पिता परीक्षित के किसी अपराध के कारण ऐसा किया था।

ऐसा सम्भव है कि किसी नाग वा तक्षक वंश के विशेष व्यक्ति के द्वारा परीक्षित का अपमान होगया होगा उसका बदला लेने के अर्थ सम्राट् जनमेजयने एक समूह ऐसा नियत किया हो कि जिसका कार्य्य उक्त जाति का नष्ट करना ही हो। यज्ञ शब्द के संगतिकरण अर्थों से समूह का ग्रहण होता है कारण कि युधिष्ठिर महाराज के राजसूय यज्ञ में राजा लोगों की संगति हुई थी। इसी प्रकार इस कार्य्य के अर्थ एक सेना का समूह नियत होना ही यज्ञ का वाचक मानना युक्तियुक्त है इस यज्ञ रूप समूह के द्वारा नाग और तक्षक जातियों का विनाश कराया गया है। जब इनके वंश के वंश नष्ट होगये तब एक दयालु ऋषि ने जनमेजय को यह उपदेश दिया कि हे राजन्! अब यह आपका कर्त्तव्य पापरूप ही नहीं रहा बड़े अनर्थ का मूल होगया। इस समय क्रोधवश आपको यह अच्छा प्रतीत होता है किन्तु परलोक में भयावना है।

विचारशीलों की दृष्टि में तो यह तभी से अनुचित था। जब से इस अविचारी कार्य का आरम्भ हुआ था। कारण कि अपराध किसी व्यक्ति विशेष का था अन्वेषण से उसी का वध कर्त्तव्य था जाति मात्र का ध्वंस बिना अपराध करना न्याय की सीमा से बाहर जान पड़ता है। प्रजा ईश्वर की है वह ऐसी २ अनेक रचना करसकता है परन्तु प्रजा का नाश सम्राट् केनाशका कारण है। सम्राट प्रजा की रक्षाकेअर्थ होताहै नकि विनाश के अर्थ, हमारा धर्म्म है कि जनता को उचित अनुचित का ज्ञान करायें। अतएव अपने धर्म्म को पालने के अर्थ मैंने आपसे निवेदन किया, आपका यह अनुचित व्यवहार मेरे दयालु हृदय से अब सहन होना कठिन है यातो इस निवेदन को श्रवण कर आप बचे हुओं को क्षमा देंगे नहीं तो मैं

अपना जीवन भी इन के साथ आपके अर्पण करता हूं जहां आपने क्रोधवश असंख्य हत्याओं का भार अपने स्कन्धों पर रक्खा है वहां एक ब्रह्महत्या को भी स्थान प्रदान कीजिये। ऋषि की इस दया भरी वाणी को सुन कर राजा का हृदय इतना कोमल हुआ कि अपने अनुचित कर्त्तव्य का ध्यान करते हुवे दहाडमार कर रोदन करने लगा और ऋषि के चरणों में गिर पडा उस समय राजा के ये शब्द थे कि (त्राहि माम् भगवन् त्राहिमाम) आपके दयालु हृदयके उपदेश से मेरे महा अपराध का चित्र मेरे नेत्रों के सामने आगया बड़ा भयंकर है क्या करूं आज्ञा दीजिये।

ऋषि ने उत्तर दिया कि राजन् ! अपने अपराध को जान कर स्वयं प्रायश्चित्त करना प्रभु के दण्ड से बचना है इस समय आपका परम कर्त्तव्य है कि उन जातियों के बचे हुए स्त्री पुरुषों तथा बाल बालिकाओं को बुलाकर आश्वासन दीजिये और अभय दान दीजिये। उनको पुरस्कार देकर क्षमा मांगिये। सुनतेहैं कि वह यही दिन था जिस दिन सम्राट् जनमेजयने नाग जाति के पुरुषों को अभय दान दिया उस वंश के प्रेमियों ने आज अत्यन्त हर्ष मनाया है। यह कारण भी इस कृत्य का होना सम्भव है। जबसे नाग शब्द के अर्थ जाति और मेघों से निकल सर्पों में प्रयुक्त होगये तभीसे कार्य्य का अभिप्राय भी बदल गया। इस हमारे प्रान्त में तो यह कृत्य नाम मात्र हीहोता है पूर्व की ओर बड़े समारोह से मनाया जाता है। कहीं २ मेले आदि भी होते हैं जिनसे व्यापार वृद्धि अभीष्ट है इस में यह निश्चय होना कठिन है कि यह कृत्य कृष्ण पक्षकी पञ्चमी को पूर्वोक्त कारणों से रक्खा गया है शुक्ल पक्षकी पञ्चमी को कल्कि भगवान्का जन्मदिन होने से।

व्यवहार से यह विदित होता है कि कृष्णपक्षकी पञ्चमी को ही उक्त कारणों का चरितार्थ होना पाया जाताहै कारण कि कोयले की रेखा कृष्ण पञ्चमी को ही करी जातीहै शुक्ल पञ्चमी को कल्कि जन्म का उत्सव मनाया जाता है। भोजन में खीर का भोजन उत्तम मानाहीगया है इस में विशेष वक्तव्य की आवश्यकता नहीं।

इति नाग पञ्चमी ॥ १६ ॥

अथ श्रावणी विषय विचार।

वर्त्तमान तिथिपत्र के अवलोकनानुसार यह मंगल दिवस श्रावण शुक्ला पूर्णिमा को होता है स्मृतियों तथा गृह्यसूत्रों के देखने से यह विदित होता है कि यह शास्त्रोक्त मङ्गल दिवस है। इस कृत्य के विषय में पूर्व यह कह आये हैं कि यह विद्यालयों के खुलने का दिन है। इस में पारस्कर गृह्यसूत्र का यह प्रमाण भी है।

अथातोऽध्यायोपाकर्म। ओषधीनां प्रादुर्भावे श्रवणेन श्रावण्यां पौर्णमास्यांꣳ श्रावणस्य पञ्चमींꣳ हस्तेनवा ॥

अब पढ़ने के उपाकर्म को कहते हैं। ओषधियों के अच्छी प्रकार उग आनेपर (जो ग्रीष्म में शुष्क होगई थीं) श्रवण नक्षत्र युक्त श्रावण की पौर्णमासी वा श्रावण की हस्तनक्षत्र युक्त पञ्चमी को जो कर्त्तव्य है। मनुस्मृति में इस कृत्य का वर्णन आता है। मनुमें आज्ञा तो इस श्लोक से पाई जाती है।

श्रावण्यां प्रौष्ठपद्यां वाप्युपाकृत्य यथाविधिः।
युक्तश्छन्दांस्यधीयीत मासान् विप्रोऽर्द्धपञ्चमान्॥
मनु० अ० ४ श्लो० ९५

श्रावण की वा भाद्रपद की पूर्णिमा में शास्त्रविधि के अनुसार साढे चार मास पर्यन्त वेदों को पढ़े। परन्तु वहाँ विधि का वर्णन नहीं कहा गया विधि का वर्णन गृह्यसूत्रों में है, जिसका वर्णन आगे होगा।

इन दोनों प्रमाणों से यह स्पष्ट विदित होता है कि भारत के विद्यालय व्यास पूर्णिमा के पश्चात एक मास का अवकाश मनाकर इस तिथि को खोले जाते थे और उत्तरायण पर्यन्त वेद का अध्ययन होता रहता था उत्तरायण के पश्चात् अन्य वेदांगादि का पाठ होता था। पुराकाल के ज्योतिष शास्त्रों से यह भी विदित होता है कि संवत्सर के परिवर्त्तनों में भेद पड़ते चले आये हैं, वेदांग ज्योतिष वनने के समय उत्तरायण और दक्षिणायन वर्त्तमान मासों में नहीं होता था जैसा कि वेदांग ज्योतिष कहता है उसी प्रकार होता था।

प्रपद्येते श्रविष्ठादौ सूर्याचन्द्रमसावुदक् । सर्पार्धे दक्षिणार्कस्तु माघे श्रावणयोःसदा ॥

धनिष्ठा नक्षत्र से माघ में उत्तरायण और आधे श्लेषा से दक्षिणायन माना जाता था। वर्त्तमान में मिथुन में दक्षिणायन और धन में उत्तरायण होताहै वेदांग ज्योतिष के कथनानुसार एक मास का अन्तर आता है। ज्योतिष के गणित ग्रन्थों से यह भी विदित होता है कि बाईस सौ वर्ष में सूर्य की गति के द्वारा एक मास का भेद पड़जाता है। इस एक मास के अन्तर का यह भेद जानना कि इस समय को उस समय से कितना काल होता है कठिन है। अतएव इस विषय को यहां विस्तार देना उचित नहीं इस से इतना ही जान लेना है कि जिस समय श्लेषा नक्षत्र में दक्षिणायन माना जाता था उस समय का यह कार्य्य है।

यह पाठकगण को भली भांति विदित है कि आर्य्यजनों का कोई भी कार्य्य ऐसा विदित नहीं होता कि जो स्वस्ति-वाचन तथा शान्तिपाठ होकर आरम्भ न होता हो। विद्यालय के खुलने के समय आचार्य्य लोग अपने शिष्यों के साथ उपाकर्म करके पठन पाठन का आरम्भ करते थे। इस कर्म्म की विधि विस्तार पूर्वक है उस समस्त का वर्णन करना यहां उचित नहीं जान पड़ता। जहां हम अन्त में सब मंगल दिवसों के पूजन प्रकार को कहेंगे यदि उचित जानेंगे तब वहां ही कहेंगे। एक यह बात भी इस कर्म के पूजन विधान का निषेध करती है वह यह कि यह कार्य्य गुरुकुलों का है यहीं यह कर्तव्य भी है जनता को उस से कुछ लाभ प्रतीत नहीं होगा। इस लेख के द्वारा तो हमें केवल यह दिखाना था कि पुराकाल में यह कर्म्म बड़े मान्य का था और इस का यह अभिप्राय था जो ऊपर कहा गया।

हां एक वात यहां और विचारणीय है वह यह कि यदि इस कर्म्म को केवल गुरुकुलों ही का कार्य्य मानलें तब यह शंका होती है कि पुनः यह जनता में किस प्रकार आया? यह वचन भी शंका को उत्पन्न करता है कि इस कर्म्म के करने की आज्ञा आवसथ्य अग्नि में है जो कि (आवसथ्याधानं दारकाले) विवाह समय में स्थापित होता है। विवाह काल के अग्नि में करने की आज्ञा से प्रत्येक सद्गृहस्थ को कर्त्तव्य है ऐसा विदित होता है। लोक में प्रचार होने और शास्त्रवचन के अनुसार कर्त्तव्य देखने से यह विदित होता है कि इस मंगल दिवस का संबंध गृहस्थियों से भी अवश्य है। व्यवहार देखने से यह विदित होता है कि इस के तीन नाम हैं, एक श्रवणाकर्म, द्वितीय ऋषितर्पण, तृतीय रक्षाबंधन। इन्हीं

तीन का होना पाया भी जाता है। श्रवणाकर्म्म के विषयमें गृह्य सूत्रों की यह आज्ञा भी है (अथातः श्रवणाकर्म्म । श्रावण्यां पौर्णमास्याम्) अब श्रवणा कर्म्म को कहेंगे जो श्रावण की पौर्णमासी को कर्त्तव्य है। इस श्रवणाकर्म्म की विधि भी पूजन प्रकार ही में कहेंगे यहां कहने से प्रसंग में हानि आती है। एक यह भी बात है कि यहां तो हमें होने वाले कार्य्य की पुष्टि युक्तियों तथा लोकव्यवहारों से करना इष्ट है।

द्वितीय नाम इसका ऋषितर्पण है जिसका अभिप्राय है कि ऋषियों का तृप्त करना प्रसन्न करना शुष्क को आर्द्र करना पुराने को नूतन करना। पढ़े लिखे सज्जनों को यह विदित ही है कि वेदमन्त्रों के देवता और ऋषि दो होते हैं उनमें से ऋषियों को तृप्त करना ऋषितर्पण का अभिप्राय है। यदि यहाँ शङ्का हो कि मन्त्रों के ऋषियों को तृप्त करना कैसे मान लिया जाय वे ऋषि तो इस समय जीवित नहीं ? यह शङ्का तभीतक रह सकती है, जब तक तर्पण शब्द के उन अर्थों पर ध्यान दिया जाय जो कि पूर्व कह आये हैं। शुष्क को आर्द्र करना तथा पुरातन को नवीन एवं निर्बल को पुष्ट करना आदि भी तर्पण के अर्थ होते हैं। यह आप लोग आये वर्ष देखते हैं कि ब्राह्मण लोग उपाकर्म श्रवणा कर्म के पश्चात् वैश्य तथा क्षत्रियों से दक्षिणा लेने जाते देखे जाते हैं। यह भी पूर्व कहा गया है कि कोई भी प्रथा हो उसका कोई न कोई कारण अवश्य होता है यदि ब्राह्मणो की यह वृत्तिही मानली जाय, तब कहना होगा कि वर्ष में अन्य मंगल दिवस भी तो होते हैं, उन में ऐसा क्यों नहीं करते, इसी मंगल दिवस को यह प्रथा क्यों पड़ी ? इस पर विचार करने से यह विदित होता है कि यह दिवस एक विशेष कार्य्य के अर्थ है।

पाठकगण को यह भी विदित है कि श्रावणी के दिवसको ब्राह्मणों ही का मंगल दिवस मानागया है इसका कारण यही है कि इस दिवस ब्राह्मण ही एक विशेष कार्य्य को करते हैं। यूं तो सभी बड़े मंगल दिवसों से सबका ही सम्बन्ध होताहै परन्तु विशेष सम्बन्ध होने से वर्ण विशेष से उसका नाम पड़ गया है। जैसे श्रावणी को ब्राह्मणों का मंगल दिवस कहाजाता है इसी प्रकार आश्विन के दशहरा को क्षत्रियों का और दीपावली को वैश्यों का एवं होली को शूद्रों का मंगल दिवस कहा जाता है। क्या इन मंगल दिवसों को अन्य वर्ण नहीं करते हैं पुनः उक्त वर्णों के साथ इनका सम्बन्ध विशेष क्यों कहा जाता है इसका कारण है कि श्रावणी को उपाकर्म तथा श्रवण सम्बन्धी कार्य्य ब्राह्मणों का विशेषता से होता है। दशहरा को क्षत्रियों के वाहन तथा शस्त्रादि की शुद्धि विशेष होती है। दीपावली को वैश्यों के व्यापार सम्बन्धी बही आदि का परिवर्त्तन होता है। होली का कार्य काष्ठादि का संग्रह एक मास पूर्व से होने के कारण शूद्रों के द्वारा विशेषता से होता है अतएव होली को शूद्रों की कहने की प्रथा पड़गई। वस्तुतः सब मंगल दिवस साझे के मंगल दिन हैं कार्य्य विशेष को देख ऐसा कहना आरम्भ होगया है, श्रावण शुक्ला पौर्णिमा को ब्राह्मणों का कार्य्य विशेष माना गया है।

पाठकगण यह आपसे अप्रकट नहीं कि ब्राह्मण वर्ण सदैव से उत्तम मानागया है, कार्य्य विशेष के कारण दोही वर्णों की श्रेष्ठता देखी वा कही जाती है ब्राह्मण तथा क्षत्रिय। वर्त्तमानमें भी यदि कोई अपने को किसी जाति से ऊपर उठाना चाहता है तब ब्राह्मण वा क्षत्रिय ही कहलाने की इच्छा करता है, इस से ज्ञात होताहै कि येही दोनों वर्ण उत्तम मानेगये हैं। क्षत्रिय की

अपेक्षा भी ब्राह्मण वर्ण उत्तम है। यह भी पाठकवर्ग भली-भाँति जानते हैं कि उत्तमता गुण विशेष से मानीगई है, जिस में गुण विशेष हों और जो उस गुण विशेष से सब के कार्यों का आविष्कर्त्ता वा सहायक हो, जनता उसको अपना परम इष्ट मानती है और अपना सर्वस्व देने को सदा उद्यत रहकर अपना सौभाग्य मानती है।

यह भी पाठकगण को अच्छी प्रकार विदित है कि ब्राह्मण अकिंचन होते हुए भी सबसे आदर किये जाते हैं। यही नहीं कि सभ्य ही ब्राह्मणों से भय खाते हों चौरादि भयानक व्यक्ति भी ब्राह्मण का धन हरण करने में भयभीत सुने गये हैं। मनुकी इस आज्ञापर कि ब्राह्मण अदण्डय है, वर्त्तमान की जनता उसपर यह लाञ्छन लगाती है कि मनु स्वयं ब्राह्मण था इसलिये ब्राह्मणों का पक्षपाती रहा है। मनु के विषय में संकुचित विचार उन्हीं कूप मण्डूकों का पाया जाता है कि जिन्होंने वेदका दर्शन नहीं किया वेद में ब्राह्मण की उच्चता इससे भी बढ़चढ़ कर है, मनु तथा वेद किसी व्यक्ति विशेष के पक्षपाती नहीं वेद तथा मनु सत्य के पक्षपाती है। वेद या मनु के विषय में ऐसा कहना अपनी मन्दमता का परिचय देना है। भला यह तो विचार कीजिये ब्राह्मण के विषय में तो वेद और मनु इस अर्थ का पक्ष करतेहैं कि वेद और मनु धर्म्म शास्त्र के कर्त्ता ब्राह्मण ही होंगे। परन्तु गौ के विषय में वेद वा मनु का क्या पक्ष था, क्या गौ का दुग्ध मनुधर्म शास्त्र के कर्त्ता का ही प्यारा था मनु का ही लोटा भरभर गौ ने भरा होगा। मनु को पक्षपाती जानने वा कहने वालों को कौनसी लात फटकारती है, क्या हाथी जो रण की शोभा माने जाते हैं एवं अश्व जो समर में विजय को प्राप्त कराते हैं, बल वा शरीर में गौ से उत्तम दृष्टि

गोचर नहीं होते पुनः गौ को ही क्यों इतनी उत्तमता दीगई ?

महाशयगण ! विचारिये यह पक्ष नहीं है, प्राणों का आधार किसे प्रिय नहीं होता जो प्राण कि हमें परमप्रिय हैं उसके रक्षक वा पोषक तथा आश्रय को जो प्राणों से भी प्रिय नहीं समझता वह पक्षपातांध स्वयं मूढ़ है। गौ और ब्राह्मण अपने कार्यों के महत्व से इस पद को प्राप्त हुए हैं। गुण अपनी उत्तमता शत्रु से भी कहला लेता है। यह सुनते हैं कि समुद्र की खाड़ियों में एक पक्षी होता है जिसका नाम 'लाग' है वह इस गुण वाला कहाजाता है कि जब कभी समुद्र में वायु आदि से किसी ऐसे उपद्रव की सम्भावना होती है कि पोत तथा पोत के यात्रियों की हानि विशेष हो, उस काल में दर्शन देता है, उसके दर्शन मात्र से यह जानकर कि कोई भयानक घटना होने वाली है पोत के अधिकारी तथा संचालक अपनी तथा यात्रियों की रक्षा करलेते हैं। इस अपने गुण से उस पक्षी ने इतना मान्य पाया कि उसे कोई वध करने की चेष्टा नहीं करता, राज्य की यह घोषणा है कि अमुक पक्षी का वध करने वाला प्राण दण्ड का भागी होगा।

पाठकवर्ग सोचिये तो जिस जाति का यह विश्वास हो कि पशु पक्षी हमारा आहार है जिस देश में असंख्य पशु पक्षियों का प्राण पखेरू अपनी उदरदरी भरने के अर्थ लिया जाता हो वहाँ की प्रजा वा राजा के द्वारा एक भदर भक्षकों से अभय प्राप्त करे, यह उस पक्षी की आकृति का प्रभाव नहीं गुणका प्रभाव है। यह पाश्चात्यों की जाति का कोई सहोदर नहीं। इसी प्रकार गौ और ब्राह्मण वेदकर्त्ता वा मनु के वंश के नहीं सत्यवक्ता कभी किसी के विषय की झूँठी प्रशंसा नहीं करते, द्रव्यों वा प्राणियों के कार्य्य तथा गुण अपनी प्रशंसा कराने में

उन्हें विवश करते हैं। पशुओं में गौ ने जनता के जीवन का भार ग्रहण किया है जिसका सम्बन्ध केवल शरीर से है और ब्राह्मणों ने जनताके उस अभिलषित सुख का भार ग्रहण किया है जिसका सम्बन्ध शरीर तथा आत्मा दोनोंसे है। जिनकी प्राप्ति का स्रोत वेद है, जो सृष्टि की आदि में उत्पन्न वा उपदेश द्वारा प्राप्त हुए हैं जिन का भारत की जनता मान्य की दृष्टि से देखता है जिन की रक्षा के अर्थ ऋषियों तथा अनेक महानुभावों ने अपने प्राण तक भी दे दिये जनता के उन परम मान्य वेदों के रक्षा-वाले ब्राह्मण ही हैं इसी एक परम निधि के रक्षक तथा स्वामी होने से ब्राह्मणों की इतनी महिमा कही गई है। वेद सम्पत्ति के अधिकारी सदा से ब्राह्मण ही होते चले आये हैं।

यह भी पाठक गण को विदित है कि वर्त्तमान काल की भाँति ही पुराकाल में भी कार्य्य होते थे जिस उत्तमकाल के दर्शन का सौभाग्य हमें प्राप्त है उस के उत्पादक वा प्रवर्त्तक श्री स्वामी दयानन्दजी यतिवर हैं। जो दृश्य आप गुरुकुलों का वर्त्तमानमें देखरहे हैं यही पूर्व भी था गुरुकुलोंसे स्नातक निकल कर गृहस्थमें आते हैं इसीप्रकार पुराकालमें गुरुकुलों वा विद्यालयों से आये वेदपाठी विद्यार्थी गृहस्थके कार्य्यों में लगे रहते थे। वेद सम्बन्धी कर्मकाण्डादि तथा अन्य गृह के कार्यों में लिप्त रहने के कारण अपने पठित वेद का नित्य स्वाध्याय करने का अवकाश प्राप्त न कर इसी काल को स्वाध्याय के अर्थ अच्छा जाना और कालो में यदि अवकाश हो भी तब भी यही काल उत्तम है। यह पूर्व कहआये कि वेदपठन के तथा अनुष्ठानरूप से स्वाध्याय के अर्थ दक्षिणायन ही ऋषि मण्डलमें निश्चित हो चुका है। उसको इधर उधर करने में फल भी प्रतीत नहीं होता। वर्षाकाल प्रायः दक्षिणायन में ही होता है वर्षाऋतु में

गृहस्थियों के संस्कार सम्बन्धी कार्य्य प्रायः नहीं होते। यज्ञादि का भी काल उत्तरायण ही माना गया है, यात्रा भी इस समय सुख से नहीं होती, ब्राह्मणवर्ग के सहायक व्यापारीगण भी इस ऋतु में स्थानों पर उपस्थित होते हैं। इत्यादि कारणों से यही काल स्वाध्याय का उत्तम माना है।

यदि यहां यह शङ्का हो कि क्या गुरुकुल का पठित विस्मृत होगया जो प्रतिवर्ष ऐसा अनुष्ठान करने की आवश्यकता पड़ी इस प्रश्न का उत्तर यह है कि विद्या किसी मनुष्य की दासी नहीं विद्या नित्य अभ्यास की सेविका है। कोई भी कार्य क्यों न हो अभ्यास ही उसकी स्थिति का कारण है स्वाध्याय से विद्या हृदयङ्गम होकर जन्मान्तर में भी सहायक होती है। पठन के पश्चात् जो स्वाध्याय नहीं करते वे केवल पुस्तकालयमात्र होते हैं जैसे पुस्तकालय में पुस्तक भरे रहते हैं इसी प्रकार अनभ्यासी पुरुष का यह अभिमान मात्र रहता है कि मैंने अमुक २ पुस्तक पढ़ा है। लोक में एक कहावत भी इस विषय की चली आती है (पैसा गांठ और विद्या कंठ) वेद एक अद्वितीय ग्रन्थ है जिस में समस्त विद्याओं का समावेश है वेद में असीम ज्ञान का उपदेश है जितना उसका अवगाहन किया जायगा उतनाही लाभ विशेष होना सम्भव है॥

इत्यादि कारणों से ब्राह्मण अपनी परमनिधि वेद का अभ्यास सदैव करते रहते थे। यद्यपि वेदों के पठन पाठन की आज्ञा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनों वर्णों को है तथापि वेदों की रक्षा का भार ब्राह्मण पर ही रक्खा गया है। यदि यहां यह वक्तव्य हो कि क्या वेद ब्राह्मणों के बाप दादा की सम्पत्ति है जो इनको इतना अधिकार वेद का दिया गया। इस पर इतना ही कहना पर्याप्त है कि कोई भी सम्पत्ति किसी के बाप दादा

की नहीं, सबका स्वामी एक ईश्वर है। क्या बल क्षत्रियों वा धन वैश्यों की सम्पत्ति है? क्या अनेक क्षत्रियों से अन्य वर्ण बलवान् वा धनवान् नहीं? फिर बल में क्षत्रियों और धन में वैश्यों का ही अधिकार माना जाता है। एवं ब्राह्मणों का वेदों पर अधिकार चला आता है। वेद ब्राह्मणों की सम्पत्ति है, यही बात चिरकाल से इनके कानों में डाली गई है इत्यादि कारणों से वेद की रक्षा करना ब्राह्मणों ने अपना मुख्योद्देश्य जाना। अन्य वर्णों ने सांसारिक सुखों के भोग किये परन्तु वेद के रक्षक वाले ब्राह्मणों ने तपस्वी होना और भिक्षा मांग कर निर्वाह करना अच्छा जाना। इन कष्टों को सहन करते हुए भी वेद को नहीं छोड़ा।

जिस कालमें प्रजा वेद को अपना परम इष्ट जानती थी उस समय जनता ब्राह्मणों को अपना तन मन धन देने को उत्सुक रहती थी। ऋषियों के समय सम्राट् सिंहासन छोड़ चरणों में गिरते थे, सदैव आज्ञा के कांक्षी रहते थे, वैश्य धन से सहायता देने में सङ्कोच करना पाप समझते थे। जिस काल में सब वर्णों की परस्पर ऐसी दशा थी उसी काल में ब्राह्मण भी अपनी निधि वेद के अवगाहन में अपना समय व्यतीत करते थे। उसी काल के ये व्यापार चले आते हैं। इस दिनसे ब्राह्मण सब प्रकार अपना अवकाश देख उपाकर्म तथा श्रवणाकर्म करके अहर्निश होनेवाला वेदों का अनुष्ठान आरम्भ कर अपनी हितैषी जनता को यह सूचना देने के अर्थ उनके गृहों पर जाते थे। उत्तरायण पर्य्यन्त इस कठिन कार्य में भोजनादि के अर्थ जितने द्रव्य की आवश्यकता जान पड़ती थी जनता दक्षिणा रूप से उनके अर्पण करती थी। यह हम पूर्व से कहते चले आरहे हैं कि वर्त्तमान में कार्य्य क्रीड़ा रूप होते हैं

वही दशा इस कृत्य की भी दृष्टिगोचर होती है। उपाकर्म्म के द्वारा यह मङ्गलदिवस दोनों स्थानों पर होता था गुरुकुलों में विद्यालयों के खुलने पर और स्नातकों के गृहस्थ में। कार्य्य अत्यन्त उपयोगी है परमात्मा हमारे हृदयों में उसी काल की वृत्तियां करे जैसी इन कर्म्मों के समय जनता और ब्राह्मणों की परस्पर थीं यदि वर्त्तमान जनता उस समय को इस समय कठिन मानती है। तो इतना तो अवश्य ही कर्त्तव्य है कि नित्य की अपेक्षा इस दिन से वेद के एक दो पृष्ठों का ही अभ्यास आरम्भ करदे। जो वेदादि के अभ्यासशून्य है वे संध्योपासन के काल में गायत्री जप को विशेष करने का अभ्यास करें।

उपाकर्म्म तथा श्रवणाकर्म और ऋषितर्पण आदि का अभिप्राय जनता को अपनी मति के अनुसार बताया गया अब द्वितीय अंग का कि जिसका व्यवहार स्त्री पुरुषों तथा बालबालिकाओं में विशेषतया पाया जाता है जिसका नाम रक्षाबंधन कह आये हैं विचार शेष रहता है। रक्षाबंधन शब्द से यह विदित नहीं होता। कि यह किससे और किसकी रक्षा के अर्थ होता है। यदि यह किसी एक व्यक्ति की रक्षा के अर्थ होता तो सब इसको क्यों बाँधते? अवश्य सबकी ही रक्षा के अर्थ होता है। किन्तु यह जानना शेष रहता है कि किससे रक्षा की जाती है? इस विषयमें कुछ तो हम पूर्व भी कह आये हैं देखो नागपंचमी वाला लेख जहां यह कहा गया है कि इस ऋतु में विष के प्रभाव और विद्युत् पतन से ही विशेष रक्षा करनी होती है यह रक्षाबंधन वाला कृत्य इस विषय को स्पष्ट रूपसे पुष्ट करता है। इसमें सन्देह को अवकाश भी नहीं कि इस ऋतु में विष और विद्युत्पतन

का ही भय विशेष रहता है। पूर्वजों ने मृत्यु के दोरूप माने हैं एक काल और दूसरा अकाल। रोगादि के द्वारा होने वाला काल मृत्यु है कारण कि रोग की साध्यता तथा असाध्यता द्वारा यह निश्चित होजाता है कि यह रोग शान्त न होगा अतएव मृत्यु होगा। इस ज्ञान के होजाने से मनुष्य की हृदय पटल स्थित वृत्तियों का प्रकाश हो कुछ शांति होजाती है किन्तु बिना रोग अचानक आने वाली उन मृत्युओं को कि जिससे मनोभाव प्रकाश न होकर हृदयपटल पर ही रह शरीर के साथ चितामें भस्म होजाते हैं, अकालमृत्यु माना गया है जिसने इस अकाल मृत्यु को माना है उसके कथन से भी अग्नि तथा शस्त्र एवं जलमें डूबना, विष खाना विद्युत् पतन से मृत्यु होना अकाल मृत्यु माने गये हैं, जिसके लिये नित्य परमात्मा से यह प्रार्थना करनी योग्य है कि हमें अकाल मृत्युओं से बचाओ। रोगादि की मृत्यु में आयुर्वेदाचार्य्य अनेक योगों द्वारा रोगियों की रक्षा करने में समर्थ प्रतीत होते हैं परन्तु अग्निहत तथा विद्युत् पतन से हत रोगियों का कुछ भी हित नहीं कर सकते इस ऋतु में इन दोनों घातक शिरोमणियों का निरन्तर भय बना रहता है, इन्हीं से रक्षा के उपाय इस ऋतु में किये गये हैं।

जिस पट सूत्र को रक्षा के हेतु बांधने की आज्ञा वा प्रचार है। सुनते हैं कि वह अद्वितीय गुण वाला है, उस पर विद्युत् का प्रभाव नहीं होता। पटवस्त्र के द्वारा विद्युत् उत्पन्न करा जाता है ऐसा श्रवण हुआ है कि आबनूस जिसे तिन्दुक वृक्ष का सार भी कहते हैं उसके साथ यदि पटवस्त्र को घर्षण किया जाय तब विद्युत् उत्पन्न होता है। एक हमारे परम मित्र श्री पंडितवर्य नन्दकिशोर जी देव शर्म्मा हैं, पूर्व

काल में आप प्रतिनिधिसभा संयुक्तप्रान्त के उपदेशक भी रह चुके हैं सम्प्रति उक्त सभा के सदस्य भी हैं, उन्होंने एक वृत्त अपने नेत्रों से देखा हुआ मुझे सुनाया था वह कहते थे कि वस्तुतः पट सूत्र वा पटवस्त्र अपूर्व गुण वाला है। एक समय में कतिपय पुरुषों के साथ एक ऐसे यान में जारहा था कि जो विद्युत् के तारके बलसे चलता था, दैवात् मार्गमें ही उस तार में विकार आगया जिससे कि यान के चलने की भी संभावना नरही ऐसे समय में वहां कोई उपाय होना भी कठिन था, सब को ही यह शंका हुई कि मार्ग का कष्ट अवश्य सहन करना होगा, इस दशा में यानके चालक ने एक वस्त्र लेकर उस तार के ऊपर लपेट दिया यह पटवस्त्र था यान चलने लगा।

यह भी आपने सुना होगा कि आल्हा एक राग है जिसको प्रायःपुरुष बड़े प्रेम से श्रवण करते हैं पढ़ी लिखी जनता में उसका आदर लेश भी नहीं मूर्ख जनता उसके श्रवण के अर्थ उत्सुक रहती है उसमें गाने वाले गाते हैं कि (सेलाः बंध रहा माइ दक्षिण का गोली लगे सर्द हो जाय) इसका तात्पर्य्य यह है कि सेना के योधाओं के शिरपर दक्षिण का पटवस्त्र बंधा हुआ है जिसका फल यह है कि यदि उसमें गोली भी लग जाती है तब भी वह भस्म नहीं होता उसको भस्म न कर गोली स्वयं ठंडी होजाती है। इस कहावत से यह विदित होता है कि पट वस्त्र पर अग्नि भी अपना प्रभाव नहीं कर सकती मानसिक योग (मिस्मरेज़म) के करने वाले कहते हैं कि पटवस्त्र पहने हुए सुकुमार पर भी हमारा योग काम नहीं देता। इत्यादि कथनों से यह विदित होता है कि पटवस्त्र तथा सूत्र पर विद्युत् का प्रभाव नहीं होता। वर्षाऋतु में विद्युत्

पतन का भय और मासों की अपेक्षा अधिक रहता है। इस हेतु से इस दिन इस पट सूत्र के बांधने की आज्ञा प्राणी मात्र को दीगई थी।

यदि यहाँ यह कुतर्क उत्पन्न हो कि जो ऐसा नहीं करते उनपर कितने आघात होते हैं, इसका उत्तर हमारे लेख में आ चुकाहै जहां हमने उत्तम और अधम जीवन के विषय में लिखा है यह भी पूर्व लिख आये हैं कि इस ऋतु में शारीरिक तथा पार्थिव विद्युत् का ह्रास न होने देना ही अपनी रक्षा है। वर्षा ऋतु में आकाश विद्युत् से ठसाठस परिपूर्ण रहता है, आकाश मण्डल का विद्युत् अपने बाहुल्य से हमारे शरीरों तथा पार्थिव विद्युत् का ह्रास कर हमारी प्राणयात्रा में बाधा न डाल दे। यह आपको विदित हो ही गया कि पटसूत्र में यह गुण है कि वह अपने प्रभाव से हमारे विद्युत् का आकर्षण न होने देगा यह क्या थोड़ा लाभ है। देखना तो इस बात का है कि इन क्रीड़ाओं का आविष्कर्त्ता कौन है यदि आविष्कर्त्ता कोई बुद्धिमान् विशेष है और उसपर हमारी भी श्रद्धा विशेष है, तब तो किन्तु लगाना योग्य नहीं, अन्यथा अधिकार है। तीन हेतुओं से यह मङ्गल दिवस द्विजातियों तथा शूद्रों को विहित ही मानना योग्य है, तीनो अंग इसके पूर्व वर्णन हो चुके हैं। किन्हीं महानुभावों का कथन है कि लोक व्यापार भी एक प्रबल प्रमाण होता है अतएव रक्षाबन्धन का चारों वर्णों में बाहुल्येन होना भी किसी विशेष आधार पर निर्भर है इस से भी इसकी कर्तव्यता सिद्ध होती है।

इति उपाकर्म तथा श्रवणाकर्म एवं रक्षाबन्धन विचार ॥१७॥

अथ कृष्णजन्माष्टमी।

यह मंगल दिवस सम्प्रति भाद्रपद कृष्णाष्टमी को मनाया जाता है इसकी उत्पत्ति का काल चार सहस्त्र वर्ष से कुछ ऊपर है। श्रीकृष्णचन्द्र महाराज जिनकी महिमा का वर्णन महाभारत ग्रन्थ में विशेषतया वर्णित है, उनकी जन्मतिथि है। श्रीकृष्ण जी महाराज के विषय में कहा जाता है कि ये सोलह कला से पूर्ण अवतार थे। अवतारों के विषय में केवल कृष्ण ही को अवतार कहना ठीक नहीं, जिनका विचार अवतारों के विषय में ठीक है वे कच्छ मच्छ,वाराह, नृसिंह, परशु राम, वामन, रामचन्द्र, कृष्णचन्द्र कल्कि बुद्ध प्रभृति इन सब ही को अवतार मानते हैं। अवतार विषय में मतभेद का केवल यह कारण है कि एक पक्ष का विचार है कि सर्वव्यापी जगत् कर्त्ता स्वयं शरीर धारण करके आते हैं दूसरे पक्ष का कथन है कि परमात्मा के विषय में ऐसा कहना केवल अज्ञान ही नहीं साथ ही में यह भी जताना है कि उन्होंने ईश्वर के स्वरूप कोही नहीं जाना कारण यह कि जो विभु है उसको परिछिन्न कहना वा मानना बन नहीं सकता, किसी कार्य्य विशेष के अर्थ महान् शक्ति का जन्म बताना उसका अपमान करना है।

अवतार न मानने वालों का विचार है कि ईश्वर स्वयं अवतार न लेकर किसी कार्य्य विशेष के अर्थ उन जीवों को प्रेरता है, जिनका मोक्ष से लौटने का काल होता है इन पवित्र आत्माओं का बुद्धिबल तथा तेज भी अतुल होता है, इन के और ब्रह्म के विषय में यूं भ्रान्ति होती है कि इनका सहवास एक कल्प पर्य्यन्त ब्रह्म के साथ रहा है अग्निके सहवास से लोहे का गोला भी अग्नि के समान ही हो जाता है,

फिर उसमें और अग्निमें साधारण जन भेद नहीं कर सकते। इस तत्व के वेत्ता वही विद्वान् होते हैं कि जिनको अग्नि के तत्व स्वरूप का ज्ञान प्राप्त है। यद्यपि इस लोहपिण्ड ने अग्नि के दाहक तथा प्रकाशक गुणों को सर्वांशों में ग्रहणकर अपने और अग्नि के स्वरूप को तत्व रूप से जानने में भ्रान्ति का आवरण डाल दिया है तथापि अग्नि के प्रसिद्ध ऊर्ध्वज्वलन रूप कर्म को जानने वालों ने यह निश्चय कर ही लिया कि वस्तुतः अग्नि नहीं तद्वत् कोई अन्य द्रव्य है। यह हमने माना कि दाहक तथा प्रकाशक अग्नि के गुण इसमें व्याप्त हैं किन्तु ऊर्ध्वज्वलन न होने से यह अपने स्वरूप से स्वयं अग्नि नहीं।

इसीप्रकार ब्रह्म के स्वरूप के जानने वालों ने यह निश्चय किया कि यद्यपि इन महापुरुषों के गुण असाधारण तथा ईश्वर के समान हैं तथापि स्वयं ईश्वर नहीं कारण यह कि विभु का एकदेशी होना सर्वथा असम्भव है। जन्म का कारण कर्म्म है विना कर्म्म जन्म होना असम्भव है ईश्वर कर्म्मों से रहित है। अतएव उसका जन्म मानना भ्रान्ति ही नहीं महा अज्ञान है। जन्म मरण धर्म वाला जीवही होता है अतएव इस प्रकार के महापुरुष मोक्ष के जीव ही माने जाने चाहियें। हमारी सम्मति में इनको ईश्वर का अवतार कहने का प्रचार इसलिए हुवा जैसा कि लोक में कहा जाता है अमुक तो अमुक का अवतारी है अर्थात् जिस का अवतार बताते हैं वह स्वयं नहीं होता किन्तु उसके गुण उसमें पाये जाने से उस को अवतार कहा जाता है। इसी प्रकार स्वयं ब्रह्म नहीं परन्तु गुण ब्रह्म के से अद्भुत पाये गये इससे अवतार कहने का प्रचार होगया। मूर्ख तो अपनी भाषा के द्वारा यह प्रतीत

कराते हैं वस्तुतः अवतार के यह अर्थ हैं। परन्तु विद्याभिमानियों ने ठीक अर्थ न जान कर एक जङ्गल खड़ा करदिया। शब्दार्थ से भी यही अर्थ विदित होते हैं जो लोक भाषा में ग्रहण हुए हैं।

शब्द शास्त्र के ज्ञाताओं को यह भलीभाँति प्रकट है कि संस्कृत के शब्द प्रायः विभक्तियों तथा समास के द्वारा प्रयुक्त होते हैं उसी विभक्ति और समास से उनके अर्थ होते हैं इस "ईश्वरावतार" शब्द में षष्ठी विभक्ति के साथ यह समासान्त पद है (ईश्वरस्यावतारः ईश्वरावतार)ईश्वरका यह अवतार है यह अर्थ होगा। यह भी जानना योग्य हैकि विभक्तियों के अर्थ नियत हैं षष्ठी विभक्ति प्रायः स्वामी सेवक संबंध में ही होती है सेवक स्वयं स्वामी नहीं होता स्वामी का सेवक अवश्य है परन्तु स्वामी पृथक् है सेवक पृथक् है लोक में इस के अनेक उदाहरण विद्यमान हैं जैसे कि यह मन्दिर अथवा यह पुत्र एवं यह धन किसका है उत्तर होता है कि अमुक का मंदिर, पुत्र,धन है। स्वामी स्वयं मन्दिर पुत्र धन नहीं बनगया एवं रामकृष्णादि परमेश्वर प्रेरित होने से परमेश्वर के अवतार थे। यदि इस में यह शङ्का उपस्थित होकि इस प्रकार तो सभी ईश्वर का अवतार होंगे यह ठीक है परन्तु इस में भेद है कि लोकप्रथा के अनुसार ही व्यवहार के अर्थ ग्रहण होते हैं बहुत से शब्द ऐसे हैं कि उसके वास्तविक अर्थ का ग्रहण नहोकर व्यवहार में आये शब्दों का ही ग्रहण होना है। जैसा कि ब्राह्मण एक वर्ण की संज्ञा होगई यदि शाब्दिक अर्थों का ग्रहण किया जाय तो ब्रह्म से उत्पन्न होने वाला समस्त जगत् ही ब्राह्मण है, एवम् अवतार शब्द में भी व्यक्तियों का ही ग्रहण होगया है।

एक और भी रहस्य इसमें है वह यह कि जो पुरुष जिस से अपना संबंध जुटाये रखता है वह उसी का कहा जाता है सभी मनुष्य किसी न किसी अंश में ईश्वर का आराधन करते हैं परन्तु भक्त नहीं कहलाते,भक्त पद का अधिकारी वही है जो नित्य परमात्मा के आराधन में लगा रहता है। सभी प्रजा राजा की है परन्तु सब राजकर्म्मचारी नहीं कहलाते जो राजा की आज्ञासे प्रजा का शासन करते हैं वेही राज्य कर्म्मचारी कहलाते हैं । एवं रामचन्द्रादि परमात्मा की सृष्टि के प्रबंधकर्त्ता होने से राजकर्म्मचारियों की तुल्य परमात्मा के अवतार ही कहलाये। ऐसे महापुरुषों को अवतार ही कहनेकी परिपाटी पड़ गई। हमारी सम्मति में इसप्रकार से जैसाकि ऊपर कहा गया है अवतार मानने में दोष भी नहीं विवाद केवल ना समझी का है।

कृष्णचन्द्र भी ऐसे ही पुरुषों में से एक पुरुष विशेष थे। कृष्णचन्द्र के विषय में मुक्तकण्ठसे यह भी कहा जा सकता है कि मानव देहधारी जितने अवतार माने गये हैं कृष्णचन्द्र उनमें विशेष थे। ऐसे महापुरुषों की जन्मतिथि का उत्सव सदैव मनाना चाहिये। परन्तु इस से लाभ के बदले हानि प्राप्त करना मूढता है । कृष्णचन्द्र योगिराज का उपदेश जिस का नाम गीता है कितना गम्भीर उपदेश है। गीताकी महिमा आज वे भी गाते हैं जो वैदिकमत के प्रत्यक्ष विरोधी हैं। यवन मण्डल के अतिरिक्त अन्य सभी मत के विद्वान् गीताका आदर करते हैं। यदि सच पूछा जाय तो वर्त्तमान में वेदो से भी अधिक गौरव गीता ने प्राप्त किया है। बावन टीका तो संस्कृत में गीता के बहुत काल से ही सुने जाते हैं वर्त्तमान की सुध नहीं न जाने कितने और होगये और आगे होंगे।

जिन महापुरुष का स्मारक ऐसा उपयोगी ग्रंथ उपस्थित है उस की जन्मतिथि वर्त्तमान में जिस रूप से मनाई जाती है, वह कैसा भद्दा और अश्लील है, जैसे मूर्ख मणिमय मुकट को शिर पर धारण न कर पदों से रौंध कर मूर्खता प्रकट करता है इसी प्रकार श्रीकृष्णचन्द्र के उत्तम उपदेशों से अपने को भूषित न कर उनकी बालक्रीड़ा के चरित्रों तथा लीलादिकर्म्मों से अपने को कलंकित करते हैं।

बालक्रीड़ा तथा रासलीला के चरित्रों का वर्णन करना भी किसी समझदार व्यक्ति को लज्जा का स्थान है। अपने प्रान्त में तो बालक्रीड़ा के प्रसिद्ध स्वरूप सबको विदितही हैं जैसा कि गोंद आदि का भक्षण दूसरे दिन की क्रीड़ा में विष्टा का वस्त्रों पर लेपन आदि। कहीं कहीं जन्मकाल की लीला इतनी बढ़गई कि उसका चित्र आकर्षित करते भी लज्जा आती है। सुनते हैं कि सायंकाल को एक खीरा चीरकर उसमें ठाकुरजी को पधराते हैं, जन्मकाल में पुजारी महाराज सब के समक्ष में उस खीरे को दोनों हाथों से खोलते हैं, ठाकुरजी नीचे गिर पड़ते हैं तब शंख और जयध्वनि होने लगती है। इस खीरे को देवकी की योनि कहा जाता है। पुजारी उसको हाथों से पृथक् कर जन्म कराते हैं, भला विचारिये तो सही कितना अज्ञान है। प्यारे मित्रो स्वयं सभ्य बनो और औरों को सभ्य बनाओ। श्रीकृष्णचन्द्र का यह उपदेश हृदय पटल पर लिखो "यद्यदाचरतिश्रेष्ठस्तत्तदेवेतरोजनः" बड़े पुरुष जिस प्रकार के आचरण करते हैं, छोटे पुरुष उन्हीं का अनुकरण करते हैं। बड़े आनन्द से श्रीकृष्णचन्द्र का जन्मोत्सव मनाओ उनके उपदेशों के द्वारा उत्तम बनो नीच व्यवहारों से इष्टदेव को अन्यों की दृष्टि में कलङ्कित मतकरो, यह पाप है पापी सद्गति की इच्छा

करें यह असम्भव है, सज्जनों को इस ओर ध्यान देना योग्य है इसे लाभकारी करना पुण्यही नहीं किन्तु विद्वानों का कर्त्तव्य भी है। विद्वानोंने अपने चरित्रों तथा उपदेशोंके द्वारा आपके सुधार को बहुत निधि छोड़ी है। उसका उपयोग उचित रीति पर कर स्वयं सुख के भागी बनो और औरों को बनाओ अपने में मनुष्यत्व स्थापन करनेके अर्थ अशुद्ध रीति से होने वाले व्यवहारों को शुद्ध करना वर्त्तमान में अत्यावश्यक है।

इति जन्माष्टमी ॥ १८ ॥

अथ कुशोत्पाटिनी अमावस्या।

यह मङ्गल दिवस भाद्रपद कृष्णा अमावस्या को होता है। इसदिन और कोई विशेष कृत्य न होकर केवल कुशहीका ग्रहण होता है। यदि यहाँ यह प्रश्न हो कि केवल कुश के लाने के अर्थ ही यह दिन है तब इस में विशेषता ही क्या है। यह तो सब दिन सब कालों में आसकते थे। इसका उत्तर केवल इतनाही होसकता है कि यह विषय आयुर्वेदविदों के द्वारा निश्चित हो चुका है। जिन्होंने औषधियों के ग्रहण काल की आज्ञा दी है। धन्वन्तरि महाराज का कथन है कि औषधियों को समय पर ग्रहण करना अच्छा है। अतएव कुश के ग्रहण करने का यही काल अच्छा माना गया है। यह भी पाठकवृन्द को विदित है कि कर्म्मकाण्ड में जितना कार्य्य कुश के द्वारा होताहै उतना और किसी औषधि के द्वारा नहीं होता। कुश की महिमा वेद में भी कही गई है कर्मकाण्ड में कुश के ही आसन बनाये जाते हैं मार्जन आदि के कार्य्य में भी इसका ग्रहण होता है पितृ कर्म्म हो वा देवकार्य्य हो कुश का ग्रहण सर्वत्र किया गया है आयुर्वेद में कुश के बहुत गुण हैं इसके आसनों पर

बैठने से पुरुषों के मूत्र दोष और स्त्रियों के रज सम्बन्धी दोष नष्ट होजाते हैं। यह ओषधि विद्युत् शक्ति को धारण करनेवाली मानी गई है विष नाशक भी है। यह पूर्व कहआये हैं कि और मासों की अपेक्षा भाद्रपद में विद्युत् का बाहुल्य होता है। आयुर्वेदविदों ने यह निश्चय किया है कि इस अमावस्या को कुश रस वीर्य्य और विपाक वाले होजाते हैं अतएव इसी तिथि को इस उपयोगी ओषधि का ग्रहण करना श्रेष्ठ है। इसकारण वर्षभर कर्म काण्डों तथा अन्य प्रयोगों में आजकेही ग्रहण किये हुवे कुश उपयोगी होंगे ऐसे व्यवहारों के अन्यथा करने से कोई विशेष लाभ भी प्रतीत नहीं होता ऐसा भी माना जाता है कि कुश वाले स्थान में विषवाले जन्तु अपना विष नहीं छोड़ते, कुश के आसन पर सर्प नहीं चढ़ता इत्यादि लाभ भी इस के सुने जाते हैं। हम पूर्व भी कह आये हैं और अब भी यही कहते हैं कि पुराविहित कार्यों को छोड़ने की अपेक्षा उनके बाहुल्येन प्रचार पर विचार कर देखा जाय कि इसका इतना प्रचार क्यों हुआ, अच्छा होने पर ग्रहण करना योग्य है निरर्थक प्रतीत होने तथा हानिकर जाना जाने पर त्यागना योग्य है।

इति कुशोत्पाटिनी अमावस्या

अथ गणेशचतुर्थी।

यह मंगल दिवस भाद्रपद शुक्ला चतुर्थी को होता है भारत के विद्यालयों में से यह वह विद्यालय है जिस में विद्यार्थियों को सुलेख और व्यायाम की शिक्षा दी जाती थी। विद्या विषय में भारत के विद्वानों की यह रीति नीति सदा से चली आती है कि वे कार्यों को बहुत विचार से करते थे जो जिस समय होना योग्य था वे उसको उसी समय करना अच्छा

जानते थे। सुलेख और व्यायाम जैसा उत्तम बाल अवस्था में होता है वैसा तरुण अवस्था में होना कठिन है। अंगों की नम्रता इसी अवस्था में होती है यह अवस्था आयुर्वेद मतानुसार सोलह वर्ष पर्य्यन्त ही रहती है इसी अवस्था के कुमार इस में पढ़ते थे। यह पूर्व कह आये कि प्रत्येक नाम गुण के बाहुल्य से धरा जाता है प्रधान अंग नाम का कारण होता है। जैसे कि किसी आराम में आम्र के वृक्ष प्रधानता से होने पर उस का नाम आम्रवन ही पुकारा जाता है। यद्यपि उस में और वृक्ष भी हैं तथापि प्रधानता से आम्रवन ही कहने की परिपाटी पड़जाती है। इसी प्रकार इन पाठशालाओं में प्रधान अंग सुलेख और व्यायाम रहते थे। साथ ही में बड़े विद्यालयों की उपयोगी गणित आदि शिक्षा भी होती रहतीं थीं। गणेश चतुर्थी नाम पड़ने का कारण भी यही बताया है कि यह सुलेख शिक्षा की पाठशालायें थीं।

पाठक वृन्द ने यह सुना होगा कि लोक में जो जिस बात का आविष्कर्त्ता वा विशेष अभ्यासी होता है वह उस विद्या के सीखने वालों का इष्टदेव माना जाता है। विशेष कर लेखक ही अपने लेख के आदि में "श्रीगणेशाय नमः" लिखते चले आते हैं इससे विदित होता है कि गणेश नाम के व्यक्ति सुलेख के आविष्कर्त्ता वा विशेष अभ्यासी थे। यदि यहां यह शंका हो कि गणेश नाम से तो शिव जी के पुत्र का ग्रहण होता है और हस्ती के शिरवाले कहे जाते हैं। यह हम पूर्व कह आये हैं कि शब्दों के अर्थों के अज्ञानने बहुत भ्रान्तियां उत्पन्न करदी हैं एक २ नाम के अनेक व्यक्ति होगये हैं। एक नाम का यथार्थ ज्ञान न रहकर किसी का किसी में ग्रहण होगया है, जिस गणेश महाशय के नाम से यह पाठशाला नियत हुई हैं

वे गणेश सुलेख के अच्छे ज्ञाता थे । महाभारत की गाथा से यह भी पता चलता है कि इन की आजीवन वृत्तिका द्वार भी लेख ही था। महाभारत में स्पष्ट लिखा है कि जिस काल में व्यास जी को महाभारत को लेखबद्ध करने की आवश्यकता हुई तब उन्होंने गणेश महाशय को भारत लिखने के अर्थ नियत किया। यह भी भारत ही में लिखा है कि महाभारत तीन वर्ष में लिखा गया है। इस चतुर्थी कोही गणेश का स्मरण वा पूजन मानना यह सिद्ध करता है कि भाद्रपद शुक्ला चतुर्थी इनके जन्म का दिन भी अवश्य है। यही दिन इस पाठशाला के अध्यापकों के वार्षिक शुल्क का भी नियत होगया। इन पाठशालाओं में सुलेख के अतिरिक्त व्यायाम और गणित सिखाने की परिपाटी भी ऐसी सुगम और उत्तम थी कि जिसकी उपयोगिता अद्यावधि भी मानी जाती है, इन पाठशालाओं में सैनिक गिनती से लेकर बड़े एके तक पहाड़े सिखाये जाते थे और पौने से लेकर धोंचा पोंचा तक कण्ठस्थ कराया जाता था।

वाचक वृन्द यह जानते ही होंगे कि यही संख्या और पहाड़े गणित का बीज हैं। इन पाठशालाओं के पढ़े हुवे छात्रों को आगे गणित का सीखना बहुत ही सरल हो जाता था। दूसरा अंग व्यायाम भी यहां का बड़े विद्यालयों के व्यायाम का सहायक होता था। अंगों का सुगमतया जैसा संचालन इस अवस्था में होता है वड़ी अवस्था में बड़े और अंगोंके कठोर होने से नहीं होसकता अतएव येही पाठशालायें इन्हीं दोनों कार्य्यों के अर्थ नियत हुई थीं। कार्य्यक्रम इनका यह था कि अध्यापक लोग पाठशालाके नियत समय के पाठों के अतिरिक्त चित्रकर्षण का कार्य्य भी सिखाते थे, इस

की परीक्षा का समय भी यही चतुर्थी मानी गई थी यह कह आये हैं कि बड़े विद्यालयों के खुलने का समय उपाकर्म्म श्रावण शुक्ला पौर्णिमा था उसी दिन से इन पाठशालाओं की वार्षिक परीक्षा आरम्भ होती थीं, जिस का कारण यह पाया जाता है कि इस पाठशाला के उत्तीर्ण विद्यार्थी उन पाठशालाओं में चले जायँ। श्रावण शुक्ला पूर्णिमा से नित्य सायं काल को व्यायाम परीक्षा होती थी जिसमें दण्डों के द्वारा यह क्रीड़ा कराई जाती थी। एक महापुरुष ने हमें यह बताया था कि इन दण्डों की क्रीड़ा द्वारा समताल का ज्ञान भी कराया जाता था यह वह समताल का ज्ञान था जो सामवेद के गान में उपयोगी होता था। प्रथम दो २ मिलकर पुनः चार २ इसी प्रकार आठ २ सोलह सोलह मिलकर खेलते थे जिन महानुभावों को इस क्रीड़ा के देखने का उस काल में सौभाग्य प्राप्त हुआ होगा जबकि यह अपनी उन्नत दशा पर थी क्याही उपयोगी और सुहावनी लगती होगी। दण्डे पर दण्डा ताल के साथ पड़ना और अंगों को शीघ्रतया मोड़कर सबके बीच में को निकल कर दो तीन चार को छोड़ कर ताल के समय दूसरे के दण्डे में ताल देना कितनी लाघवता और निपुणता है। दण्डे विशेषतया खैर की लकड़ी के होते थे जिनकी चोट कर्णप्रिय और मनोहर होती थी।

यह व्यायाम श्रावण शुक्ला पूर्णिमा से भाद्रपद शुदि चतुर्थी पर्य्यन्त होता था चतुर्थी से कितने ही दिन पूर्व पाठशाला को भूषित करने का कार्य्य भी होता रहता था। चित्र सीखने वाले विद्यार्थी अनेक प्रकार के चित्रों से पाठशाला के स्थान को भूषित करते थे आज चतुर्थी के दिन पाठशाला के भूषित होने वाला कार्य्य समाप्त होकर उत्सव का आरम्भ दिन

होता था। अध्यापक लोग प्रातः काल ही से स्वस्तिवाचिन का कार्य्य आरम्भ कर देते थे। उधर विद्यार्थियों के पिता तथा अन्य संबन्धीगण बालकों को साथ ले पाठशाला की ओर जाते थे। आज बालकों के प्रमोद की तुलना करना कठिन है, हाथों में मंगल द्रव्यों का थाल है बालक वस्त्र और आभूषणों से सुसज्जित चले जारहे हैं। पाठशाला विद्यार्थियों तथा उन के संबंधियों से खचाखच भरी हुई है। स्वस्तिवाचन तथा आहुति के साथ स्वाहा शब्द बालकों के मुख से निकल यज्ञ की शोभा को अपूर्व रूप में परिणत करता है। व्यास पूर्णिमा की नाईं दाताओं की उदारता और गुरुजनों का सन्तोष सराहनीय है। आज सायंकाल के समय अध्यापक लोग छात्रों को साथ लेकर नगर में दण्डों की क्रीड़ा जनता को दिखाने के अर्थ निकलते थे धनियों के स्थानों पर भी जाते थे। धनी महाशय अध्यापकों का दक्षिणा और छात्रगण का मिष्ठान से सत्कार श्रद्धा पूर्वक करते थे। इन पाठशालाओं में थोड़ी कविता भी सिखाई जाती थी इस कविता का नाम था चौपाई। छात्रगण अपनी २ कविता ही नगर में तथा धनी पुरुषों एवं माता पिताओं को सुनाते थे। जिस काल में भारतदेशीय पाठशालाओं का यह पाठक्रम था उस काल में बहुत थोड़े व्यय से छात्र पढ़ जाते थे और अध्यापकों का निर्वाह भी अच्छी प्रकार होजाता था। अनन्त चतुर्दशी जो भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशी को मानी जाती है तब तक यह क्रीड़ा रहती थी। चतुर्दशी को यह कार्य्य समाप्त होकर पुनः पाठशाला का आरम्भ होजाता था उत्तीर्ण विद्यार्थी बड़े विद्यालयों में प्रविष्ट होजाते थे और नवीनों का प्रवेश इस विद्यालय में होता था। जिस समय पठन पाठन की यह शैली थी उस काल में

भारत की सन्तान धार्मिक व्यवहारों से भली प्रकार परिचित हो सदाचारी भी रहती थी। भारत को उसी दशा पर लाने के इच्छुकों को उचित है कि पुनरपि इस प्रथा को जीवित करने का उद्योग करें।

। इति गणेश चतुर्थी ।

वामन द्वादशी ।

यह मंगल दिवस भाद्रपद शुक्का द्वादशी को होता है, इस तिथि को वामन नाम के कोई व्यक्ति विशेष उत्पन्न हुए हैं उन की जन्म तिथि है जिन को यह कर्त्तव्य हो वे अन्य महा पुरुषों के जन्मोत्सव की रीति पर ही इस मंगल दिवस को भी मनालें इसमें विशेष कथन की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

॥ इतिवामन द्वादशी २१।

अनन्त चतुर्दशी ।

भाद्रपद शुक्का चतुर्दशी को अनन्त महाशय का जन्म बताया जाता है यह भी किसी काल में किसी उपकार के अर्थ उत्पन्न हुए है इसी हेतु से इनके जन्म दिन का उत्सव मनाया जाता है। कोई विशेष वृत्त इनका कहीं वर्णन भी नहीं एक गाथा है जिसके अवलोकन से कुछ सार हस्तगत नहीं होता, अतः इस पर भी विशेष कथन की आवश्यकता प्रतीत नही होती।

॥इति अनन्त चतुर्दशी ॥ २२॥

अथ पितृपक्ष ।

भाद्रपद शुक्का अनन्त चतुर्दशी से ही पितृपक्ष का आरम्भ होजाता है और मंगल दिवस एक दो दिन होकर समाप्त होजाते हैं यह पितृपक्ष वाला कृत्य एक पक्ष

पर्यन्त निरन्तर होता रहता है प्रचार भी इस कृत्य का इतना है कि द्विजातियों के अतिरिक्त शूद्र वर्ण में भी होता है। यदि और अधिक विचार करके देखा जाय तो जो वर्ण अन्य विरोधी धर्मों में प्रविष्ट होगये हैं वे भी इसको करते देखे जाते हैं यह दूसरी बात है कि उस धर्म में प्रविष्ट होकर उन्होंने इस कृत्य का नाम दूसरा रख लिया है। परन्तु व्यवहार देखनेसे यही पाया जाता है कि वह कृत्य पितृकर्म का ही अनुकरण है। लोक भाषा में पितृपक्ष का दूसरा नाम श्राद्ध है, वर्त्तमान में श्राद्ध का अभिप्राय यह बताया जाता है कि इस कृत्य के द्वारा मृत माता पिताओं को अन्न के द्वारा तृप्त किया जाता है वेद तथा अन्य शास्त्रों के अवलोकन से यह विदित होता है कि श्राद्ध कृत्य जनता का अत्यन्त उपयोगी कार्य है। काल भी इसका यह शरद्ऋतु ही बतायागया है समय होने तथा वेदादि शास्त्र में वर्णित होने से यह विदित होता है कि श्राद्ध कर्त्तव्य ही है परन्तु विचारना यह है कि जनता का यह विश्वास कि यह मृत पितरों के अर्थ होते हैं कहांतक सत्य है विषय बहुत बड़ा होने और मंगल दिवसों का भाग न माना जाने से यहाँ इस विषय को कहना उचित न जान पृथक् ही एक छोटे आकार के पुस्तक द्वारा कहने का विचार है। आर्य समाज और सनातन धर्म में यही एक विषय विवादास्पद भी माना जाता है, हमने अपने विचारों से इस विषय को बहुत शास्त्रों के अवगाहन से इतना पुष्ट और सरल करा है कि जिस को देख इस विषय के सभी सन्देह निवृत्त होजायेंगे और दोनों पक्षों का विवाद सदा को ही निवृत्त होकर ऐक्य होजाय ऐसी संभावना है इससे पूर्व की प्रति में यह विषय हमने मंगल दिवसों में ही रक्खा था किन्तु कईएक सज्जनों की यही सम्मति हुई

कि यह विषय पृथक् ही होना योग्य है इसलिये इस पुस्तक में इस विषय का उल्लेख नहीं किया लिखा हुआ तैयार है इसके पश्चात् यदि ग्राहकगण तथा अन्य सज्जन चाहेंगे तब शीघ्रही मुद्रित कराया जायगा ॥

॥ इति पितृपक्ष ॥

अथ नवरात्र विचार ।

पाठकगण को यह स्मरण होगा कि हमने इस पुस्तक के आरम्भ में ही यह कहा है कि नवरात्र छः २ मास के अंतर से दो कहे गये हैं जिसमें से एक का वर्णन पूर्व होगया है यह समय द्वितीय नवरात्र का है इन के कृत्यों में अन्तर नहीं पाया जाता केवल कारण में भेद है। चैत्र मास के नवरात्रों का कारण वहाँ पर कहाही जाचुका है इस समय के नवरात्रों का कारण वर्षाऋतु से प्राप्त हुई विकृति के अर्थ हैं। यह भी पूर्व कहआये कि अन्य ऋतुओं की अपेक्षा वर्षाऋतु भयानक है वर्षाऋतु के समय स्थानों तथा वस्त्रों में एक असह्य दुर्गन्ध उत्पन्न होजाता है। अनेक छोटे २ जन्तुओं के नित्य उत्पन्न होने और वहीं मृत्यु होने से गृहों के नीचे ऊपर के भाग इतने अशुद्ध होजाते हैं कि जिनसे अनेक भयङ्कर रोग उत्पन्न होने की सम्भावना है। इस प्रकार की विकृति को अनुभव करना साधारण जनता की बुद्धि का कार्य्य नहीं यह अनुभव आयुर्वेदविदों के ज्ञान का फल है उन्हीं के द्वारा ये कार्य्य जनता के सुखार्थ प्रचलित हुए हैं। इस प्रकार के कार्यों का समय पर याथातथ्येन करना अपने ही सुख के अर्थ है न करना उन दुःखों का आखेट होना है जो इस विकृति से उत्पन्न होते हैं वा होंगे। यह कृत्य भी नवरात्र पर्य्यन्त अहर्निश होता है वर्षा

ऋतु की विकृति की शुद्धि का उपाय पितृपक्ष से आरम्भ होकर देव शयनी पर्य्यन्त होता रहता है किसी बड़ी अशुद्धि की शुद्धि के अर्थ समयानुकूल बड़े ही कार्यों की आवश्यकता है। प्रथम गृहों की शुद्धि एक पक्ष पर्य्यन्त श्राद्ध कर्म्म के द्वारा होकर यह नवरात्र का कार्य्य आरम्भ होता है।

इन नवरात्रों का आरम्भ आश्विन शुक्ला प्रतिपदा को उसी प्रकार घटादि की स्थापना तथा मण्डल का कार्य्य आरम्भ होकर नव रात्र पर्य्यन्त वेद पाठ तथा हवन होता रहता है। इस कृत्य का नवरात्र नाम पड़ने का कारण यह विदित होता है कि दिन के समय केवल वेद पाठ और रात्रि को हवन के द्वारा कार्य्य विशेष हो। रात्रि के समय हवन का कार्य्य विशेषता से रखने का तात्पर्य्य भी यही विदित होता है कि दिन की अपेक्षा रात्रि को ही अशुद्धि विशेष होती है अंधकार से अशुद्धि की वृद्धि होती है यह विचार आयुर्वेद विदों का अकाट्य ही है। वर्त्तमान के पाश्चात्य आयुर्वेद-विद् भी पुरा आचार्य्यों की सम्मति से इस विषय में सहानुभूति प्रकट करते हैं रोगादि की विशेष वृद्धि जितनी रात्रि में होती है उतनी दिन के भाग में नहीं होती। यह भी पाठक गण को प्रकट है कि हवन के महत्व को जितना वैदिक सिद्धान्त के ज्ञाताओं ने जाना है इतना औरों ने नहीं जाना हवन के गुणों को जानने वालों का कथन है कि हवन एक अपूर्व गुणों वाला है यह देखा तथा सुना भी जाता है कि हवन के द्वारा ऋषियों ने आश्चर्य्य में डालने वाले कार्य्य किये हैं, जिनका तत्व विद्वानों को भी जानना दुस्तर होगया है। हवन के तत्वों को न खोज यह कहना आरम्भ करदिया कि यह सब गपोड़े हैं।

क्या यह हम से अप्रकट है कि पुरा आचार्य्यों ने कौन ऐसा कठिन कार्य्य है जो हवन के द्वारा सिद्ध नहीं किया, इतिहासों में हवन के आश्चर्यमय कार्यों का स्पष्ट रूप से वर्णन है इतिहास तिमिरनाशक में लिखा है कि क्षत्रिय वंश के समूल नष्ट होजाने पर ब्राह्मणों ने अर्बुदगिरि पर्वत पर यज्ञ करके पुनरपि क्षत्रियों को उत्पन्न किया कि जिन के नाम तुमर, सोलंकी, प्रमर, चौहान प्रसिद्ध हैं। रघुकुल भूषण महाराज दशरथ के वंश को शृंगी ऋषि ने हवन ही के द्वारा तो स्थित किया वर्त्तमान में भी सनातनी भ्रातृवर्ग के इस कृत्य को देख कर जो वे प्रति वर्ष करते हैं यह पता चलता है कि हवन का कृत्य एक महान् कार्य्य का साधक है। यह हम नित्य देखते हैं कि जब कभी लोक में महामारी आदि भयंकर रोगों का प्रकोप होता है कि जिनका निवारण करना वैद्यों को बड़े २ चमत्कृत्य योगों से भी कठिन होजाता है। तब हमारे सनातनी भाई कहते हैं कि शत चंडी का अनुष्ठान करना चाहिये यह हमने माना कि हमारे भाइयों ने शत चंडी नाम देवी का जान रक्खा है उनका विचार है कि देवी एक शक्ति है जिस के कोप से महामारी आदि रोग होते हैं, उस को प्रसन्न करने से रोग हट जायगा यह ज्ञान विसर गया कि रोगों का कारण मलिनता है जब वह जनता के दरिद्र से बढ़ जाती है तब भयंकर रोगों का आक्रमण होता है इन प्राण हन्ता रोगों की निवृत्ति उन योगों से नहीं होती जिनको वैद्य क्षुद्र रोगों पर देकर सफलता प्राप्त करलेते हैं परन्तु महामारी आदि रोग तब उत्पन्न होते है जबकि मलिनता पृथिवी जल अग्नि वायु में अत्यन्तता से प्रविष्ट होजाती है।

क्षुद्र रोगों में चमत्कृत योगों का प्रभाव केवल शरीर पर ही होता देखा जाता है समस्त स्थानों में व्याप्त महा मारी

आदि रोगों के कारण पर नहीं होता । अतएव ऐसी दशा में वही कार्य्य कर्त्तव्य है जिस का प्रभाव समस्त स्थानों पर होकर रोग को समूल नष्ट कर शीघ्रता का देने वाला हो ऐसे दुस्तर कार्य्यों के सिद्धि के लिये हवन ही परम सहायक सिद्ध हुआ है इस में सन्देह भी नहीं कि थोड़े व्यय से महान् फल देनेवाला हवन ही का कार्य्य होता है । बहुमूल्य योग इतना कार्य्य नहीं देते । उदाहरण के लिये एक छोटी सी युक्ति यह है कि एक मिर्च को यदि कोई व्यक्ति भक्षण करे तो वह मिर्च अपनी तीक्ष्णता का प्रभाव उसी व्यक्ति पर करेगी जो भक्षण करता है उस व्यक्ति के समीप वाले अन्य व्यक्तियों पर मिर्च की तीक्ष्णता का प्रभाव लेश भर भी न होगा । कृपया अब उस एक मिर्च को अग्नि में डालकर देखें कि वह क्या प्रभाव करती है । अग्नि में पड़ी हुई मिर्च उस स्थान के पुरुषों को ही विकल न करती हुई जिस ओर के वायु से उस मिर्च के धूम्र का संयोग होगा वहीं तक अपना प्रभाव करती चली जायगी । मिर्च एक थी उसने अग्नि के संयोग से कितनों पर प्रभाव डाला । इसी प्रकार बहुमूल्य योग एक व्यक्ति पर ही प्रभाव डालने वाले होंगे उन बहुमूल्य योगों से यदि हवन किया जाय तब वह योग सहस्रों व्यक्तियों के अर्थ पर्य्याप्त होगा । जिन महानुभावों ने मित व्यय वाले ये महान् कार्य्य बताये थे, वे महाशय प्रजा के अत्यन्त हितैषी थे, उन को अपने से अधिक प्रिय जनता थी उन्हीं महा पुरुषों ने वर्षा ऋतु से उत्पन्न स्थानों की महा मलिनता हटाने के अर्थ इस समय के नवरात्र करने की प्रथा प्रचलित की थी ।

चैत्र मासके नवरात्रों की समाप्ति के पश्चात् की तिथिका कोई विशेष नाम नहीं पाया जाता परन्तु इस समयके नव रात्रके पश्चात्

की तिथि का नाम विजयादशमी कहा जाता है । कारण इसका यह प्रतीत होता है कि चैत्र मास के नवरात्रों के द्वारा एक सामान्य मलिनता हटाकर उस काल वनस्पतियों में एक गुण विशेष का आधान करना ही इष्ट था इस समय रोगरूप शत्रुओं को हटाना इष्ट है शत्रुओं को नष्ट करने पर जय प्राप्त होता है उसको विजय ही कहा जाता है अतएव इस का नाम विजया दशमी पड़ा । यह भी सज्जनों को भली भांति प्रकट है कि तिथिपत्र में दोही विजयादशमी देखी जाती हैं । एक वह आश्विन शुक्ला की और द्वितीय ज्येष्ठ मास शुक्ल पक्ष की ज्येष्ठ शुक्लादशमी को विजया दशमी कहने का कारण पाठक गण पढ़ही चुके हैं कि उस दिन महाराज भगीरथ बड़े श्रम से गंगा को भारत देश में लाये हैं ।

विशेष वक्तव्य इस नामकरण में यह है कि हमारे विचार से जनता का विचार विरुद्ध है प्रायः जनता का विचार यह है कि आज के दिन महाराज रामचन्द्र ने रावण को मारा है राम-चन्द्र महाराज की विजय होने से इसका नाम विजयदशमी पड़ गया है । ऐसे विचार वालों से यह प्रश्न होता है कि यह बात तुमको कहां से प्राप्त हुई ।

रामायण का कथन इसविश्वास का विरोध करताहै वाल-मीकीय रामायण में यह स्पष्ट लिखा है कि आज के दिन महा-राज रामचन्द्र ने पंपापुर से लंका की ओर प्रस्थान किया और चैत्र कृष्ण अमावस्या को रावण का वध कहा गया है, इससे यह स्पष्ट विदित होता है कि श्री महाराज रामचन्द्र की विजय तिथि चैत्र कृष्ण अमावस है । आश्विन शुक्ला दशमी को श्री महाराज रामचन्द्र का विजय दिन मानना वाल्मीकीय रामायण से तो सिद्ध होता नहीं और न गुसाईं तुलसीदास

कृत रामायण से यह सिद्ध होता है कि यह दशमी श्री रामचन्द्र की जय की तिथि है। भाषा की रामायण से भी यह विदित होता है कि वर्षाऋतु के चारमास पर्य्यन्त रामचन्द्र जी का निवास पंपापुर होमें रहा वर्षाऋतुके बीतने पर श्रीहनुमान जी सीतादेवी की खोज को गये हैं, इसके पश्चात् ही रामचन्द्र जी का जाना विदित होता है। अतएव जनता का यह विश्वास कि रामचन्द्रजी ने आश्विन शुक्ला दशमी को रावण का वध किया है निर्मूल प्रतीत होता है। एक यह भी व्यवहार इस तिथि को होता है कि व्यापारी तथा शस्त्रधारी वर्षा ऋतु से दूषित हुए साधनों का त्याग नवीन धारण करते हैं।

यह विश्वास कि रावण के वध से इसका नाम विजयदशमी पड़ा है, इस का आधार यह प्रतीत होता है कि वह राम रावण के युद्ध की क्रीड़ा प्रायः इसी समय पर होती देखी जाती है, इस क्रीडा का यह समय इसीलिये रक्खा गया है कि यह समय और समयों की अपेक्षा सुभीते का है। पाठकगण को यह विदित है कि इस विजयादशमी से प्रायः व्यापार आरम्भ होजाते हैं इस से पूर्व का समय सुभीते का माना जाता है। देश की स्थिति का चित्र जानने वालों को सदैव धुन लगी रहती है कि जन मण्डल के धर्म्म का ह्रास न हो जाग्रति बनी रहे, इस विचार को लक्ष्य में धर नगर के हितैषी व्यक्तियों ने इस प्रकार के कार्य्यों का आरम्भ किया था, जिस काल में इन क्रीड़ाओं का आरम्भ हुआ था उस समय इस क्रीड़ा के वह स्वरूप जनता को दिखाये जाते थे जिन से लाभ की प्राप्ति हो, धनादि व्यय भी न्यूनता से होता था। सम्प्रति यह क्रीड़ा धन का दुरुपयोग करने के अर्थ हो होती है और साथ ही में समय तथा भाव का ही नाश करती है।

देश के लुब्धकों ने तो इस क्रीड़ा को व्यापार ही बना लिया आये दिन किसी किसी नगर में मण्डली खड़ी ही दृष्टि गोचर होती है, जिसका अभिप्राय ही जनता का धन हरण करना है। देश हितैषी सज्जनों को इस ओर ध्यान देकर इस प्रकार के कार्य्यों का संशोधन करना योग्य है। यावत् जन मंडल में सदाचार का प्रचार न होगा तावत् भारत की उन्नति के दर्शन की इच्छा करना स्वप्न ही देखना है। इस प्रकार के कार्य्यों में धन का दुरुपयोग होकर धर्म्म कार्य्यों में बाधा पड़ती है अतएव इन कार्य्यों का संशोधन अवश्य ही होना योग्य है। देश के हितैषी सज्जनों ने इस काल में इस क्रीडा को इसी हेतु से करना आरम्भ किया था कि यह समय वर्षा की समाप्ति का और जनता के सभीने का जाना गया था। यह भ्रान्ति वृथा ही उत्पन्न होगई कि इस तिथि को रावण का वध हुआ है। कार्य्य के अंग अपने हेत के स्वयं साक्षी हैं। यदि दुर्जन तोष न्याय से यह मान भी लें कि इस तिथि का विजय दशमी नाम पड़ने का कारण रावण का वध ही है तब यह वक्तव्य होता है कि प्रतिपदा से नवमी पर्य्यन्त नित्य हवन क्यों होता है जिसका मुख्य कार्य्य अशुद्धि हटाना है। केवल दशमी कोही एक दिन विजय का हर्ष मनाकर छुट्टी होजानी चाहिये थी।

प्यारे मित्रों विचारो थोड़े काल के लिये सत्य के वैरी पक्ष को छोड़ो छः मास के अन्तर से दोनों काल के नवरात्र अपना हेतु स्वयं बतारहे हैं। चैत्र शुक्ला के नव रात्र उत्तरायण के मध्य भाग में आश्विन शुक्ला के चन्द्रायण अर्थात् दक्षिणायन के मध्य भाग में होते हैं। येही दोनों काल नवशस्य आने को भी हैं। विद्वानों के द्वारा हुए कार्य्य बहुत कार्य्यों के साधक

होते हैं। विधान के साथ हर्षपूर्वक करने से अनेक लाभ होते हैं। इन नवरात्रों के समय जौ बोने की प्रथा भी देखी जाती है, यह कृत्य दाह शान्ति के अर्थ है, इस ऋतु में पित्त की प्रधानता मानी गयी है यवांकुरों का स्पर्श, दर्शन तथा उन की वायु का गृहों में प्रवेश पित्त से उत्पन्न दाह को शान्त करने वाले हैं। भोजन भी इस दिन प्रायः लौकी का और भात का ही होता है। दधिभक्षण करना आज के दिन शुभ माना जाता है। इन योगों के अवलोकन से यह प्रत्यक्ष होता है कि ये सब पैत्तिक रोगों के योग हैं पित्त से उत्पन्न रोगों को शान्ति करना इनका मुख्य गुण है। पित्त से उत्पन्न होने वाले तीन ही रोग विशेष होते हैं वमन, विरेचन और दाह युक्त योग तीनों विकारों के शान्त करने वाले हैं। इस समय के खान पान यह प्रत्यक्ष रूप से सिद्ध करते हैं कि हम अमुक २ कार्य्य के अर्थ रक्खे गये हैं और हमारे निर्माता आयुर्वेदज्ञाता हैं। फिर जनता उसमें अपना उलटा विचार उत्पन्न करले यह आश्चर्य्य ही है।

इस विजय दशमी के दिन जो कृत्य पूजन के समय होता है उसको देखकर बहुत से सज्जन यह कहते हैं कि वह कृत्य घृणित प्रतीत होता है, वह यह है कि जनता ने विजयदशमी को रावण का वध निश्चय करलिया, उसी विचार से उसकी आकृति बनानी आरम्भ करदी यह आकृति इस प्रकार बनाई जाती है। प्रथम गोधूम चूर्ण से एक पुरुषाकार आकृति बनती हैं पुनः उसमें गोमय के दशगोले बनाकर रक्खे जाते हैं, एक तैल का दीपक प्रज्वलित करके उन गोमय के पिण्डों के समीप रक्खा जाता है गोमय के पिण्डों के ऊपर पुष्पादि लगाये जाते हैं, इस प्रकार की आकृति के विषय में

कई प्रकार के विचार पाये जाते हैं। बहुतों का तो यह कथन है कि यह आकृति रावण की बनाई जाती है कारण इसका यह है कि इस आकृति में जो गोमय के पिण्ड स्थापित होते हैं उनकी संख्या दशही होती है इस हेतु से वे व्यक्ति कहते हैं कि यह रावण के दश शिरों के चिन्ह हैं अतएव यह आकृति रावणकी ही है। सनातनी भाई कहते हैं कि आज के दिन दश दिग्पालों का पूजन होता है इस लिये दश संख्या के गोमय के पिण्ड रक्खे जाते हैं। उक्त कथनों से यह विदित होता है कि ये दोनों कथन सार रहित हैं कोई विशेष बात इन गाथाओं से हस्तगत नहीं होती। किन्तु पूर्व जो कुछ हमने विचार से इस मंगल दिवस के विषय में कहा है वह सब युक्ति युक्त और बुद्धि में आने वाला विचार है। इस आकृति के विषय में अपना विचार यही है कि यह समय के परिवर्त्तन से पश्चात् सम्मिलित होगई है और कोई ऐसा उपयोगी अङ्ग नहींहै जिस पर विशेष विचार किया जाय इस विषय का विचार सज्जनों की बुद्धि पर ही छोड़ते हैं जो २ कार्य्य इसके हमने कहे हैं वे सब विचारणीयहैं।

हमने इस आश्विन शुक्ला के कृत्य में जो कुछ कहा है वह सब अपने विचार से इस के कृत्यों पर ध्यान देकर कहा है, किसी ग्रन्थ के आश्रय से नहीं कहा ग्रन्थों के देखने से इसका वह पता लगाना कि यह क्या कार्य्य है बड़ा कठिन है जिन ग्रन्थों में इस विषय का वर्णन है वहाँ तो यह पता चलता है कि यह देवी का पूजन है। कितनों ही का विचार है कि सरस्वती का पूजन है, काशी आदि नगरों में ऐसा होता देखा भी जाता है कि वहाँ के पण्डित लोग प्रतिपदा के दिन सब पुस्तकों को एकत्रित कर एक वस्त्र से आच्छादित करदेते हैं और नवमी के दिन वह वस्त्र उतार देते हैं इस कृत्य को सरस्वती का शयन और

जागरण कहते हैं। इन्हीं बातों से मैंने इसके महत्त्व का अनुभव किया कि यह कृत्य तो अपने स्वरूप से यह बतारहा है कि मेरी स्थापना करने वाला कोई गहरा विचार है। मैं उक्त तुच्छ विचारों के द्वारा तो सज्जनों की दृष्टि में घृणित होगया यदि विचार की दृष्टि से देखा जाय तो यह है भी ठीक ग्रन्थकारों के निरर्थक विचारों ने ही इस प्रकार के उपयोगी कार्यों से विचारशील सज्जनों की रुचि को हटाया। ग्रन्थकारों के विचार स्वयं ही परस्पर विरुद्ध हैं एक पक्ष का विचारहै कि यह सरस्वती शयन है द्वितीय पक्ष देवी का पूजन कहता है इन दोनों में से कौनसा माना जाय संदेहास्पद होने से दोनों ही कल्पना बुद्धि में नहीं आतीं अतएव इन पर विचार करने की आवश्यकता भी नहीं कार्य के स्वरूप में किञ्चित भी विकृति नहीं पाई जाती केवल विचारों में परिवर्त्तन होगया है विचारों का परिवर्त्तन ही इस समय कर्त्तव्य है कृत्य के अङ्ग अत्यन्त उपयोगी प्रतीत होते हैं नव दिन पर्यन्त एक अच्छे प्रकार वेद पाठ और नित्य रात्रि को हवन होना चाहिये।

॥ इति नवरात्र विचार ॥२३॥

अथ गोवर्द्धन।

गोवर्द्धन नाम के मंगल दिवस दो माने जाते हैं, दोनों के समय में कुछ दिन का अन्तर है, जिसका वर्णन यहाँ होगा, वह छोटा और द्वितीय बड़ा कहाता है।इस कृत्य का दिवस आश्विन शुक्ला त्रियोदशी वा चतुर्दशी है। पाठकगण को यह विदित है कि वर्षाऋतु में होने वाले अन्नों का वपन प्रायः श्रावण में ही हो जाता है इस ऋतु के अन्नों को बोकर किसान अपने पशुओं को स्वतन्त्र चरने के अर्थ छोड़ देते हैं, दो अढ़ाई मास चरते रहते हैं, इस काल से शरदऋतु में होने वाले अन्नों के अर्थ

पृथिवी जोतने का आरम्भ होता है। जो पशु इस समय सहायता देने योग्य समझे जाते हैं उनको स्थान पर लाकर उन की शुद्धि करते हैं। इस कृत्य में केवल उन्हीं पशुओं की शुद्धि होती है, जिन का ऊपर वर्णन होचुका, शेष पशु अभी चरते ही रहेंगे इनकी शुद्धि का दूसरा काल नियत है। कृषक इस समय अपने कुटुम्बियों तथा अन्य इष्टमित्रों की खान पान से भी सेवा सुश्रुषा करते हैं। पशुओं के सेवकों का षाण्मासिक वेतन भी इसी समय दिया जाता है। इस कृत्य का विशेष संबन्ध कृषक से ही है। वर्त्तमान में यह कार्य भी उतनी प्रसन्नता और व्यय से नहीं होता, कारण इसका यह है कि पुराकाल के कृषक पशुओं को अपने हाथ पैर और अन्नदाता समझते थे, आज स्वार्थ ने उनको इतना अन्धा बनादिया है कि पशुओं के कष्ट की ओर ध्यान दे रातदिन उनसे काम लेते हैं। जब तक काम देता रहा, रक्खा, अन्त को वधिक के हाथ बेंच देते हैं। यह अन्याय है इस का फल अच्छा नहीं मनुष्यों की सृष्टि की स्थिति का मूल कारण पशु हीहैं अतएव अपने कोकष्ट देकर भी पशुओं का पालन करना योग्य है। बोलने वाला अपने कष्ट को कहसकता है और अन्याय का बदला भी लेसकता है। पशु बेचारे न अपना दुःख कह सकते हैं और न अन्याय का बदला लेनेको समर्थ हैं वैदिक धर्मावलम्बी राजों के समय कृषकों को आज्ञा थी कि खेतों के बीच में एक डौल ऐसी होनी योग्यहै कि जिस पर एक पुरुष इधर से और दूसरा दूसरी ओर से आसके, इस डौल की घास खोदने वाला दण्डनीय होता था। इस घास को वही पशु चरते थे जो क्षेत्र का जोतना आदि कार्य करते थे। अन्य ग्राम के पशुओं के चरनेके अर्थ ग्राम के चारों ओर पृथिवी छुटी रहती थी, इस पृथिवी में कृषि करने की आज्ञा नहीं थी।

किसी ने सच कहा है लालच मनुष्य को अँधा करदेता है हमारे कृषकों को लालच ने सचमुच अँधा करदिया। वर्त्तमान में क्षेत्रों के मध्य की डौल लोप होगई क्षेत्र गृहों के आँगन पर्यन्त होते हैं प्यारे मित्रो गोवर्द्धन मंगल दिवस के नाम मात्र से मानकर हर्ष मत मानों सभी प्रकार पशुओं की रक्षा करके हर्ष मानना सच्चा हर्ष हैं। पशुओं के साथ सच्चा हित न कर रेखा मात्र पीटना वास्तव में हर्ष का कारण नहीं पशुओं की रक्षा अपने हस्त पदों के समानही करो, तभी तुम्हारा यह मङ्गल दिवस मङ्गल रूप होगा।

॥ इति गोवर्द्धन विचारः ॥ २४ ॥

अथ शरद पौर्णिमा।

यह मङ्गल दिवस आश्विन शुक्ला पौर्णिमा को होता है इस दिन कोई विशेष कृत्य नहीं होता। पौर्णिमा की रात्रि को गो दुग्ध में चौले (चुरवा) (जो इस समय के नवीन साठी से बनाये जाते हैं भिगाये जातहैं और चन्द्रमा की चाँदनी में उनको रखतेहैं। इसप्रकार यह योग तैयार होताहै फिर इसको थोड़ा २ खाते हैं प्रसाद की नाई अन्य इष्टमित्रों को भी दिया जाता है, इस योग के साथ तुलसी पत्र का योग भी होता है तुलसी पत्र के योग विषय में सनातनी भाइयों की तो यह कहावत है कि (सदा स्वपने ऽपि मार्जारो मांस खण्डानि पश्यति) मार्जार स्वप्न में भी अपने खाद्य मांस को ही देखता है ऐसे ही इनके मत से तो तुलसी के दर्शन और स्पर्श से ठाकुर जी प्रसन्न होते हैं इन के विपरीत आयुर्वेदविदों को जनता के प्राण रक्षा का इष्ट होता है जिन के द्वारा यह उत्तम योग निर्माण हुआ है, उन्हीं महानुभावों की बुद्धि द्वारा तुलसी का योग भी हुआ है पाठकगण को यह भली भांति विदित है

कि यह समय शीत पूर्वक ज्वर का होना है जिसे आज दिन की भाषा में मलेरिया कहा जाता है, तुलसी पत्र मलेरिया की प्रसिद्ध औषधि मानी गई है। इसी कारण विशेष से इस का योग इस योग में रक्खा गया है आयुर्वेदविदों के मत से तो सब के ठाकुर जी परम प्रिय प्राण हैं तुलसी पत्र से प्राण रूप ठाकुर जी प्रसन्न होते हैं। हमारी सम्मति में तो अन्य ऋतुओं की अपेक्षा इस ऋतु में नित्य ही भोजन में तुलसी पत्र का योग रक्खा जाय तो बहुत ही लाभ होने की आशा है। यह योग भी पित्तदोष की शान्ति के अर्थ रक्खा गया है। वान्ति, भ्रान्ति और दाह तथा रेचन आदि को शान्त करने वाला है।

आयुर्वेदविदों के मत से यह योग वाजीकरण भी है स्त्रियों के गर्भ का स्थापक भी होता है, इत्यादि कारणों से यह मंगल दिवस त्यागने की अपेक्षा कर्त्तव्य ही होना योग्य है। एक और कार्य्य भी इस दिन महिलागणों के द्वारा होता देखा जाता है वह यह है कि आज की रात्री में सौवार सुई पोना पुन्य कहा जाता है अतएव स्त्रियां पौर्णिमा की चांदनी में सुई भी पोती हैं वर्त्तमान के सज्जन स्त्रियों के इस कृत्य को मूर्खता का कार्य्य कहते हैं ऐसा कहना उन की भूल ही नहीं अज्ञानता भी है कारण इसका यह है कि वे कार्य्य का स्वरूपमात्र देखते हैं, गुण पर ध्यान नहीं देते। भारत में यह विश्वास बहुत काल से पाया जाता है कि चन्द्रमा को अमृत बरसाने वाला मानते हैं और ऋतुओं की अपेक्षा इस ऋतु में चन्द्रमा विशेष अमृत बरसाता है और दिनों की अपेक्षा इस पूर्णिमा को सब दिन से विशेष अमृत बरसना माना जाता है। चन्द्रमा की चांदनी नेत्र रोगों को शान्त करने वाली मानी गई है। आयुर्वेदविदों के अन्य योग भी ऐसे पाये जाते हैं

नेत्र रोगों के अर्थ एक योग है जिसकी महिमा बहुत कही गई है। वह यह है कि त्रिफला को समान भाग लेकर एक कांस्य पात्र में भिगो कर चन्द्रमा की चांदनी में रखदे फिर प्रातः काल इस जल से नेत्रों को धो डाले, इस योग से नेत्रों के बहुत विकार शान्त होते हैं। एक यह योग भी चन्द्रमा की चांदनी के योग से बनाया जाता है, जिन बालकों को शीतला रोग होता है प्रायः उन को नेत्र रोग भी होता है कितनी ही को आंख दुखती हैं और कितने बालकों की आंखों में फूला पड़ जाता है इस फूले के विषय में आयुर्वेदविदों का कथन है कि यह प्रायः असाध्य होजाता है जिस से जन्म भर को नेत्र बिगड़ ही जाते हैं। सर्व साधारण को सुलभ इस के लिये एक यह योग है कि कूपों के उन गर्त्तों में कि जो घटों के रखने से पड़जाते हैं सायंकाल को एक दो कंकड़ नोन की डालदे और प्रातःकाल बालक की आंखों को उस जल के झबके दे, ऐसा करने से दो तीन दिन में यह फूला शान्त होता दृष्टिगोचर होगा।

इन योगों के दिखाने से अपना अभिप्राय यह है कि इन योगों में चन्द्रमा की चांदनी का समावेश करना अभीष्ट है जो नेत्र रोगों की अपूर्व औषधि है। निर्लोभ और लोभयुक्त आत्माओं में भेद केवल इतना है कि निर्लोभ आत्मा अन्यों का धन हरण न कर सब को सुख पहुंचाता है और लोभी धन हरण कर के वह कार्य्य करता है। सुना जाता है कि एक समय इंगलैंड में एक खग्रास ग्रहण सूर्य्य का हुआ था, वहां की जनता ने उस ग्रहण को देखा, उस का यह प्रभाव हुआ कि वहां की बहुत सी जनता को दिन के समय कुछ दीखता ही न था। बड़े चिकित्सकों की अनेक औषधि करने पर भी

रोग शान्त न हुआ, दैवात् वहां किसी कारण से अमेरिका के एक बड़े चिकित्सक आगये उन महाशय ने कारण का निश्चय कर यह बताया कि आप लोग रात्रि को एक घण्टा चन्द्रमा की ओर देखा करें यह कह और सहस्रों मुद्रा हर कर लम्बे बने ऐसा करने से जनता को भी लाभ हुआ। नेत्रों की रक्षा तथा रोग शान्ति के अर्थ ही यह कार्य्य किसी निर्लोभ आत्मा ने स्त्रियों को बताया होगा फल इस का अच्छा है।

इस के साथ पुण्य का शब्द लगाना युक्ति युक्त ही है। प्रथम तो पुण्य शब्द अच्छे कर्म्म का वाचक है सभी अच्छे कर्म्म पुण्य है द्वितीय यह बात है कि अब जनता लोभ से कार्य्य में प्रवृत्त होती देखी जाती है किसी बात का तत्व खोजना उस के सामर्थ्य से बाहर है। पुण्य के मिस से महिला अपने अन्य कार्य्य छोड़ कर भी इसे करती हैं यदि यह बताया जाय कि इस का यह फल है तब उनको कहना कठिन हो जायगा। साधारण जनता दो ही प्रकार से कार्य्य करने में प्रवृत्त होती है या तो आशा से और नहीं तो त्रास अर्थात् भय से। इत्यादि कारणों से कार्य्य लाभदायक प्रतीत होता है अतएव प्रीतिपूर्वक करना चाहिये।

॥इति शरद् पूर्णिमा ॥२५॥

अथ आकाश दीपक।

इसी शरद् पूर्णिमा के दिन से इस आकाश दीपक का प्रारम्भ होता है यह दीपक आजसे आरम्भ होकर दीपावली पर्य्यन्त नित्य रात्रि को प्रकाशित होता रहैगा इसके प्रज्वलित करने की रीति भारत में प्रचलित है यह एक बहुत ऊंचे बाँस में स्थानों की पृष्ठ पर बाँधा जाता है इसको भाषा में कंदील

कहते हैं। वर्त्तमान में सज्जन इसको भी एक मूर्खता का कार्य जानते हैं परन्तु जिन महानुभावों ने इसको प्रचलित किया था उनका विचार किसी गम्भीर आशय को लिये हुए था इसका विशेष वर्णन दीपावली के लेखमें होगा यहाँ तो केवल इतनाही कहा जाता है कि शरद पूर्णिमा से ही इसका आरम्भ होताथा और अब भी होना योग्य है जिस शुद्धि का आरम्भ बहुत काल पीछे से होना आरम्भ हुआ है उसकी इस परीक्षा के अर्थ कि वस्तुतः जैसी शुद्धि करनी अभीष्ट थी हुई, वा नहीं यह आकाश दीपक एक बहुत उपयोगी कार्य्य है।

॥इति आकाश दीपक ॥ २६ ॥

अथ दीपावली विचारः।

यह मंगल दिवस चैत्रादि से महीनों को मानने से आश्विन की समाप्ति का दिन होता है और वर्त्तमान तिथिपत्र अवलोकन की रीतिसे कार्तिक कृष्ण अमावस है जिस कार्य्य की प्राप्ति के अर्थ यह मंगल दिवस होना आरम्भ हुआ था उसके बहुत से उपयोगी कार्य्य भाद्रपद शुक्ल पौर्णिमा से ही होने आरम्भ होगये थे जिन कार्यों का एक अंग पितृपक्ष द्वितीय नवरात्र तृतीय शरद पौर्णिमा चौथा आकाश दीपक पांचवां यह दीपावली स्वयं है, किसी बड़े कार्य्य के अर्थ उसके साधन भी बहुत ही होते हैं। यदि यहाँ यह प्रश्न हो कि ऐसा कौन बड़ा कार्य्य है जो इतने बड़े साधनों के द्वारा सिद्ध होगा जिसके अर्थ एक मास पूर्ण ही कार्य्य होता है। इसका उत्तर यह है कि इस के जानने वाले वही महानुभाव हैं जो अपने प्रभुको प्रदान की हुई वेद वाणी के विश्वासी हैं जिनका एक कार्य्य भी वेद आज्ञा के विपरीत नहीं होता किसी बड़े भयसे बचने के अर्थ ही बड़ा उपाय भी होता है सबसे बड़ा भय मृत्यु है

जिसकी इच्छा कोई भी प्राणी नहीं करता मनुष्य तो एक विशेष ज्ञान वाला है मृत्यु और दुःख से तो तिर्यक् योनि के जन्तु भी भय मानते हैं। वेद में भयंकर कालों तथा भयंकर पदार्थों से बचने के अर्थ ही सूचना दीगई है क्यायह हमसे अप्रकट है वेद में यत्र तत्र सौ वर्ष जीने की प्रार्थना के मन्त्र हैं और ऋतुओं की अपेक्षा शरद् ऋतु के शब्दों वाले विशेष पाये जाते हैं दूर जाने की आवश्यकता नहीं नित्यकर्म्म सन्ध्योपासन ही का अवलोकन कीजिये जिसमें यह मन्त्र आयाहै कि (शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदःशतं प्रब्रवाम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्) हम सौ शरद ऋतु पर्य्यन्त जीवित रहैं सौ शरद पर्य्यन्त सुनते रहैं सौ शरद् पर्य्यन्त बोलते रहैं यह हमने माना कि अन्य बसन्त हिम ग्रीष्म आदि के नाम भी आते हैं किन्तु सबसे अधिक नाम शरद् के ही पाये जाते हैं।

क्या पाठक गण यह समझते हैं कि अन्य कवियों को समान वेदने इस प्रकार के शब्द केवल पाद पूर्त्ति के अर्थ ही रखदिये हैं नहीं। वेदमें जो शब्द जहाँ आना योग्य था वहीं रक्खागया है वस्तुतः अन्य ऋतुओं की अपेक्षा शरद् में मृत्यु का भय अधिक होता है। वेद के आशय को जानने वाले आयुर्वेदविदों ने भी इसी ऋतुमें मृत्यु का भय विशेषतया माना है। आयुर्वेदाचार्य्यों ने और किसी ऋतु के विषयमें कुछ उल्लेख न कर इसी ऋतुके (कार्त्तिकस्यदिनान्यष्टावष्टा वाग्रयणस्य च। यमदंष्ट्रा अल्पाहारी स जीवति।) विषय में यह कहा है कि आठ दिन कार्त्तिक से आठ दिन मार्गशिर पर्य्यन्त पन्द्रह दिनों की यम दंष्ट्रा संज्ञा है इस समय अल्पाहारी जीवित

है। वेद और आयुर्वेद के कथन से यह प्रत्यक्ष होता है कि यह ऋतु मृत्यु का द्वार है जिस समय वेद के उपदेश का भानु प्रचण्ड रूप से तप रहाथा, उस समय की जनता के शब्द भी शरद् ऋतु को भयंकरता प्रकट करते थे। जब कभी कोई दीर्घ रोगी वर्षा से पूर्व रोग से छुटकारा नहीं पाताथा, तब उसके हितैषी इष्ट मित्र कहते थे कि भाई रोग की चिकित्सा ठीक प्रकार से करो, आगे शरद् ऋतु आता है फिर यहरोग तुम्हारा अच्छा होना कठिन होगा। जिस का दूसरे शब्दों में यह अर्थ होता है कि शरद्के आते ही तुम पञ्चत्व को प्राप्त होजाओगे और ऋतुओं के विषय में ऐसा नहीं कहा जाता इसके विपरीत तो सुना जाता है जैसे कि शीतऋतु के रोगी के प्रति कहा जाता है कि बस अब यह रोग चला जायगा कारण कि अब दिन उष्ण आते जाते हैं एवं ग्रीष्म के रोगी को कहा-जाता है कि बस अब वर्षा में वर्षा होनेपर रोग शान्त हो जायगा। इत्यादि कारणों तथा विचारों से यही विदित होताहै कि शरद् ऋतु ही भयंकर काल है जिसके विषय में वेद उपदेश तथा आयुर्वेद वाक्य और जनता का विचार एक मत हैं इससे बड़ा भय कौन होगा इस लिये जनता के हितैषी आयुर्वेद-विदों ने इस बड़े संकट समय से जनता को रक्षाके अर्थ बड़े ही उपायका उपदेश भी किया है।

यदि यहाँ यह प्रश्न हो कि और ऋतुओं की अपेक्षा किन कारण विशेषों से इस ऋतु को भयङ्कर मानागया देखनेमात्र से तो यह ऋतु बड़ा सुहावना प्रतीत होता है अनेक दुःखदाई जीव इस ऋतु में शान्त होजाते हैं सर्पादि भयङ्कर जन्तु भी अपने २ बिलों में निवास करने लगते हैं और कौनसी बात है, जिससे इसे इतना भयङ्कर बताया गया? उत्तर इसका यह

है कि साधारण बुद्धियों को स्थूल रूप का ही ज्ञान होता है और सूक्ष्म बुद्धियों को सूक्ष्मता का ज्ञान होता है, जिन महानुभावों ने इस ऋतु को भयङ्कर बताया वा माना है उनका विचार बहुत सूक्ष्म था सूक्ष्म बात को सूक्ष्म ही बुद्धि जान भी सकती है यह हमने माना कि सर्पादि जन्तु प्राणहन्ता हैं किन्तु सर्पादि दृश्य जन्तु हैं उन के द्वारा बहुधा उनका ही मृत्यु होता देखा जाता है, जो प्रमाद से अपनी रक्षा नहीं करते। जिस सर्प के द्वारा हमारी मृत्यु होती है वह विष सर्प के शरीरान्तर में व्याप्त है इस ऋतु का विष सर्वत्र पृथिवी जलवायु में स्थित है जो श्वास प्रश्वास के द्वारा शरीरों तथा निवास के गृहों में प्रवेश होगया है उसके विनाश के अर्थ बड़े ही उपाय भी होते हैं वर्षा ऋतु का जल विषही मानागया है।

यदि यहाँ यह प्रश्न पुनः उपस्थित हो कि वर्षा ऋतु का जल विष है यह कथन अनूठा है बुद्धि में नहीं आता! पाठक गण को स्मरण होगा कि हमने विषका स्वरूप दिखाते हुए पूर्व यह कहा है कि जीवन को ह्रास करने वाले की विष संज्ञा है स्थूल तथा सूक्ष्म रूपसे इसके बहुत भेद हैं। हमारे शरीरों का पुराना मल भी विषही मानागया है। वर्षा का जल देवगणका पुराना मल है जैसे हमारा मल है जैसे हमारा मल क्षेत्रों का बल है इसी प्रकार देवगण का मलरूप वर्षका रुकाहुआ जल क्षेत्रों का बल होता है। लोक में एक कहावत भी चली आती है कि "धान पान और पानी तीन चीज़ कार्त्तिक खानी" इसका अभिप्राय यह है कि कार्त्तिक में उक्त तीनों वस्तु शुद्ध और परिपक होजाती हैं। इस वर्षा के जल में जब कभी किसी को स्नानादि करने की आवश्यकता हो जाती है तब ऐसा देखागया है कि शरीर में कण्डू आदि व्यथा उत्पन्न होजाती है। यह भी

पाठकगण को अनुभव हुआ होगा कि जल में एक प्रकार की दुर्गन्धि पाई जाती है। जलमें निवास करने वाले जन्तुओं की शरीर गन्ध असह्य होती है।

यह भी देखागया है कि जिस किसी स्थान पर जल बहुत काल ठहरारहताहै वहाँका जल दुर्गन्धवाला होजाताहै इत्यादि कारणों से वर्षा ऋतु के जल की बहुतायत ने गृहों तथा वस्त्रों में एक प्रकार की ऐसी दुर्गन्धि उत्पन्न करदी है जो कि प्रत्यक्ष में असह्य और रूपान्तर से रोगादि का कारण है। वर्षाऋतु में मशक दंशादि असंख्य उत्पन्न होते हैं इनमशक दंशादिका कोई देश विशेष नहीं जहाँ ये चले जाते हों हमारे गृहों में ही उत्पन्न होते हैं और नित्य असंख्य ही मृत्यु को प्राप्त होते हैं। इन सबों का समावेश पृथिवी के तलभाग तथा भित्तियों में ही रहताहै। इत्यादि हानि कारक कारणों के अतिरिक्त जलकी अधिकता से अग्नि का ह्रास होजाता है यह आपको प्रकट है कि यह शरीर पाँच तत्त्वोंसे बना है प्रत्येक तत्व शुद्धरूप से अपने मानके साथ रहता हुआ शरीर की स्थिति का हेतु है तत्वों की न्यूनाधिकता रोग तथा शरीर के विनाश का कारण है। अन्य चार तत्वों की अपेक्षा अग्नि ही जीवन का आधार है वैद्यों की बात तो वैद्यों के साथ रही इस बातको तो सर्व साधारण भी जानतेहैं शरीर के उष्ण रहते हुए मूर्छित को भी मृतक नहीं कहते। बहुत बार ऐसा देखा गया है कि जब कभी कोई रोगी मृतक तुल्य दृष्टिगोचर होता है और उसके जीवित मृतक विषय में यह सन्देह होता है कि यह मरगया या जीवित है तब नाड़ी ज्ञान न रखने वाले भी शरीरस्पर्श करके कहते हैं कि अभी तो इसके शरीरमें उष्ण है मरा नहीं। अतएव उष्णाही जो अग्नि का गुणहै जीवन का आधार है, वह अग्नि जलाधिक्य से मार्दवता को प्राप्त

होजाता है। अग्नि न्यूनता के विषय में एक जनश्रुति भी पढ़ी जाती है वह यह है "कि श्रावण में कर सूक्ष्म आहार, भादों मत कर रात बयार। क्वार के तू दोनों पाख, केहि जतनकर प्राण राख। दिवाली के दिवस चार, फिर तू खाइये गिरियाँ चार"।

तात्पर्य्य इसका सरल है, यमदंष्ट्रा संज्ञा बताते हुए जो पिछले पाद में यह शब्द आया है कि (अल्पहारी स जीवति) इसी कहावत की पुष्टि करता है। यद्यपि वायु को प्रभुने योग-वाही रचा है तथापि वैद्यवरों ने वायु का स्वभाव किसी अंश में शीत ही माना है जलाधिक्य से वायु भी इस ऋतु में स्थूल हो जाता है। स्थूल वायु विकृत कहा जाता है और सूक्ष्म वायु शुद्ध और प्रकृतिस्थ कहाजाता है। आयुर्वेद विदों का कथन है कि जिस देश का वायु प्रकृतिस्थ रहताहै वह शरीर पूर्ण शतायु होता है। अशुद्ध और अप्रकृतिस्थ वायु शरीरों का भंजक और रोग समूहों का कर्त्ता मानागया है। इत्यादि अनेक दोषों को हटानेके अर्थ यह मंगल दिवस बहुत काल पूर्वसे होना आरम्भ होता है इस कृत्य के कार्यों का आरम्भ पितृपक्ष से आरम्भ होकर कार्त्तिक कृष्णा अमावस्या पर्य्यन्त होकर समाप्ति होती है। जिन महापुरुषों ने उक्त दोषों को अपने सूक्ष्म विचार से जनता के लिये हानिकारक जाना है, उन्हीं महाशयों ने समयर पर उन दोषों को निवृत्त करने के उपाय बताये हैं।

हमारे इतने लेख से पाठकगण को यह भलीभाँति प्रकट होगया होगा कि वस्तुतः वर्षाऋतु के दोषों केकारण शरद्ऋतु भयानक है अवश्य इस ऋतु के बड़े दोषों को हटाने के अर्थ बड़े ही उपायों की आवश्यकता भी थी। अब यह दिखाना शेष रहता है कि किस काल में किस दोष के हटानेका कौनसा उपाय है। पाठकगण को यह स्मरण होगा कि पर्व यह कह

आते हैं कि वर्षाऋतु में उत्पन्न हुए मशक दंशादि के असंख्य शव हमारे गृहोंमें उपस्थित हैं हमारे पदों के संघर्षण से उनके मृतदेह पृथिवीतल की मृत्तिकामय होगये हैं उनको आर्द्र करने और वहाँ से उत्पादन के अर्थ पितृ कर्म्म है जो निरन्तर एक पक्ष पर्यन्त होता है पितृकर्म्म के ग्रन्थों के देखने से यह प्रत्यक्ष होता है कि पितृकर्म प्रत्येक को एक पक्ष पर्यन्त नित्यकर्त्तव्य है यहभ्रान्ति न जाने किसकालसे चलीआतीहैकि जिसदिन अपने यहाँ श्राद्ध होता है उसी दिन वह व्यक्ति श्राद्ध से अपने को निश्चिन्त मानता है। यह सनातन शास्त्र के भी विरुद्ध है पितृ कर्म्म के दो अङ्ग माने गये हैं एक तर्पण दूसरा पिण्ड इनमें से तर्पणकेअर्थदेखोश्रवणतथाउपाकर्ममेंइसकेअर्थ हैं शुष्कको आर्द्र करना यह तर्पण कुश तिल मधु मिश्रित जलसे होता है। इस के पश्चात् दूसरा अङ्गहै पिण्ड पिंडशब्दके अर्थहैं,ग्रासोंको आर्द्र पत्रों पर गृह के भागों में यत्र तत्र भोजन का रखना। यह भी पाठक गण को विदित होकि पितरों के अर्थ वाष्प उठता भोजन देना कहा है और सबसे उत्तम भोजन पायस का माना है। प्रायः ये ग्रास भी पायस के होते हैं इनकी वाष्प से वह आर्द्र दुर्गन्ध ऊपर उठ आती है इस प्रकार पन्द्रह दिवस पर्य्यन्त यह कार्य्य गृहों के तल भाग की शुद्धि के अर्थ होकर समाप्त होजाता है।

इस के पश्चात् जब यह सिद्ध होजाता है कि पृथ्वी तल से उठा हुआ मलिन भाग गृहों के ऊपर के भाग में पहुंच गया होगा, तब उस की शुद्धि के अर्थ पीछे कहा गया नवरात्र का कार्य्य आरम्भ होता है। इस नव रात्र से ही गृहों की शुद्धि का लेपन आदि कार्य्य आरम्भ होजाता है, इस समय की शुद्धि के अर्थ यह आज्ञा है कि यद्यपि सब प्रकार दुर्गन्ध का अभाव

करने के उपाय होचुके हैं तथापि उसका कुछ भाग रहजाना सम्भव है अतएव सर्वथा ही अशुद्धि का अभाव करने के अर्थ गृहों की मृत्तिका को निकाल डालना ही अच्छा है। ऐसा ही देखा भी जाता है कि गृहस्थ पुरातन मृत्तिका से तथा उत्तम सुगन्धित मृत्तिका से लेपन करते हैं। इस प्रकार गृहों की शुद्धि के साथ २ वायु के शुद्ध रूप की भी परीक्षा करते रहते हैं। जिस आकाश दीपक का हम पूर्ण वर्णन कर आये हैं वह आकाश की वायु की परीक्षा के अर्थ रक्खा गया। पाठकों ने यह श्रवण किया होगा कि सर्प के सामने दीपक नहीं जलता जिस का भावार्थ यह है कि सर्प के श्वास के सामने दीपक की ज्योति मन्द होजाती है। तत्ववेत्ताओं ने भी यह निश्चय किया है कि दीपक उसी शुद्ध वायुसे प्रज्वलित होता है जो मानव मण्डल के जीवन का आधार है। भारत के दीर्घदर्शी ऋषियों की सराहना जितनी भी करी जाय थोड़ी ही प्रतीत होती है। भारत की जनता के कानों में यह बात न जाने कितने काल से डाली गई है कि वायु की शुद्धि तथा अशुद्धि जानने का सरल उपाय दीपक है जिस गृहमें कुछ काल दीपक प्रज्वलित नहीं होता उस के विषय में कहा जाता है कि इस गृह में भूतों का निवास होगया। ऐसा देखा भी जाता है कि जब कभी किसी को ऐसे गृहों में जाने का अवसर प्राप्त होता है तब अपने जाने के पूर्व एक दो दिन दीपक प्रज्वलित करते हैं पश्चात् निवास होता है।

वणिक जनों के द्वारा भी एक व्यापार से यह जाना जाता है कि दीपक शुद्ध वायु की परीक्षा के अर्थ है अन्न के व्यापारी वैश्य गण अपने अन्न भरने के अर्थ एक गर्त्त पृथिवी में बनाते हैं लोक भाषा में इसे खत्ती कहते हैं, जब उस में से अन्न

निकालने की आवश्यकता होती है तब पूर्व एक पात्र में दीपक रख कर उस में छोड़ यह परीक्षा करते हैं कि इस का वायु उस मनुष्य को हानिकर तो नहीं होगा जो अन्न निकालने के अर्थ प्रवेश करैगा। इत्यादि लोक व्यवहार यह सिद्ध करते हैं कि दीपक शुद्ध और अशुद्ध वायु की परीक्षा का सुलभ उपाय है। इस समय का आकाश दीपक इसी परीक्षा के अर्थ नित्य रात्रि को प्रज्वलित कराजाता है।

भारत की जनता का एक यह भी विश्वास है कि दीपावली के समय में भूतगण इतस्तत बहुत फिरा करते हैं इस हेतु से अपने सुकुमार बालकों को इधर उधर जाने का निषेध करते हैं और कहते हैं कि यदि कहीं जाने की आवश्यकता समझो तो शिरस वृक्ष की लता अपने समीप रखनी योग्य है। वर्त्तमान में जनता का यह विश्वास आदरणीय नहीं ऐसे विश्वासों वाली जनता सज्जनों की सम्मति से महा मूढ़ता के पद के योग्य है किन्तु अपना विचार आदिसे यही चला आता है कि साधारण जनता न तो स्वयं किसी विषय में अपना कोई इत्थंभूत सिद्धान्त उत्पन्न करने वाली होती है और न उस के पास शब्द होते हैं, जिससे कि वह किसी वस्तु का सार्थक नामकरण करसके। साधारण जनता किसी विशेष व्यक्ति के द्वारा निर्माण हुए शब्दों तथा व्यापारों का व्यवहार करने वाली दृष्टिगोचर होती है, इससे यह ज्ञात होताहै कि यह शब्द कि दीपावली के समय भूत बाधा का भय रहता है और उससे रक्षा के अर्थ सिरस वृक्ष की लता का आश्रय लेना अच्छा है ये शब्द किसीने जनता के कर्णों में अवश्य डाले हैं।

विचार यहाँ यह करना योग्य है कि जिस किसी व्यक्ति ने यह शब्द जनता के कर्ण में प्रविष्ट कराए, उसका भूत शब्द से

क्या अभिप्राय था और उसकी बाधा से अपने को बचाने के अर्थ सिरस वृक्ष की लता को समीप रखना क्यों बनाया? आयुर्वेदविदों का कथन है कि यदि किसी व्याधि का नाम ऐसा हो कि जिससे यह निश्चय करना कठिन हो तब उसके योग के अवयवों से व्याधि का निश्चय करना योग्य है। इस स्थान पर भूत शब्द दो शब्दों में प्रयुक्त है एकतो मृत पुरुषों के विषय में और द्वितीय व्याधि में यहां यह निश्चय करने अर्थ कि वस्तुतः यह व्याधि है वा मृत पुरुष का मलिन आत्मा, जिस व्यक्तिने इस भूत शब्द का आविष्कार किया है उस को यह ज्ञान भी अवश्य होगा कि मृत्यु के पश्चात् कोई जीव भी अपने आधीन नहीं रहता, ईश्वर के नियमानुसार जन्म धारण करता है अतएव मृत पुरुष को भूत कहना असंगत है। भूत शब्द बीते हुए काल काभी वाचक है उससे यहां कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता इससे जाना जाता है कि इस शब्द के आविष्कर्त्ता को यह दोनों बात इष्ट नहीं थीं किसी अच्छे अभिप्राय वाले शब्द का प्रयोजन शब्दों में प्रयोग करना शब्दकर्त्ता का महा अज्ञान प्रकट करना है शब्द के यथार्थ स्वरूप को जानने वाले से ऐसा होना असम्भव है इत्यादि कारणों से इस शब्द के अविष्कर्त्ता का अभिप्राय भूत शब्द से कोई व्याधि विशेष है यदि शब्द कर्त्ता के ज्ञान में यह व्याधि न होती तो निवारण के अर्थ सिरस वृक्ष के पत्र तथा लता क्यों बताता? कारण कि औषधि का सम्बन्ध व्याधि से ही माना गया है। सिरस वृक्ष के विषय में यह विदित हुआ है कि यह विष नाशक द्रव्यों में प्रधान औषधि है सिरस का प्रयोग इस समय की भूत बाधा से रक्षा के अर्थ बताना कर्त्ताके इस गम्भीर आशय को प्रकट करताहै कि वह लोक हितैषी विषयुक्त मलिन वायुओं

को भूत कहता है, उस व्यक्ति विशेष का आशय इतना क्षुद्र नहीं था कि जो वह मृत पुरुषों तथा काल में अपने ध्यान को पहुंचाता।

लोकमें भी इस के बहुत प्रमाण मिलते हैं एक प्रत्यक्ष प्रमाण तो पूर्व ही कह आये कि जिस स्थान में दीपक प्रकाशित नहीं होता वहां भूत बाधा मानते हैं, इससे भी यही सिद्ध होता है कि मलिन वायु ही भूत है। जो पुरुष शरीर को सदा धूलि से मलिन रखता है उसको भी यही कहते हैं कि क्या भूतों वाली आकृति बना रहा है इस शब्द के प्रयोग से यह ध्वनि पाई जाती है कि मलिन धूलि से आवृत को भूत कहते हैं जो पुरुष किसी व्यक्ति को अधिक क्लेश देता है उसके विषय में कहा जाता है कि यह तो भूत की नाईं पीछे लग गया, इससे भी यही पाया जाता है कि जो कठिनतासे हटाया जाय उसको भी भूत कहने की प्रथा है इनलोक व्यवहारों तथा शास्त्रके विचारों से यही पाया जाताहै कि भूतशब्द उस भ्रान्ति का वाचक नहीं जो जनता के अज्ञान से कही वा मानीजाती हैं शास्त्र भी तत्वों के ही विषय में भूत शब्द का प्रयोग करते हैं, इस शुद्धि के समय जब कि स्थानों के मलिन कूड़े करकट को बाहर निकाल कर फेंक देती है उस मलिनता से संपर्क वाला विषयुक्त वायु यत्र तत्र व्याप्त रहता है, वही अनेक भयंकर रोगों का भूत है, उस विषयुक्त वायुसे रक्षाके अर्थ सिरस वृक्ष का समीप रखना बताया गया है। जैसे विसूचिका के भयकाल में कपूर रखना अच्छा कहा गया है इसी प्रकार विषयुक्त वायुके प्रभाव से रक्षा के अर्थ इस समय सिरस का समीप तथा गृहों में रखना बहुत लाभ दायक सिद्ध हुआ है।

बुद्धिमें आने वाली युक्ति युक्त बात को न मानना भी एक प्रकार की हठ है। बुद्धिमानों का कथन है कि विवेकी हठी

नहीं होते हठ मूर्खता का चिन्ह है। इस दीपावली मंगल दिवस के समय अनेक प्रकार शुद्धियों के होते हैं जब सब प्रकार स्थानादि की लेपनादि क्रिया समाप्त होजाती हैं तब अन्तिम दिन पुनः वायु की शुद्धि की परीक्षा होती है। यह दिन कार्त्तिक कृष्णा चतुर्दशी का होता है इस चतुर्दशी को नरक चतुर्दशी भी कहते हैं नरक चतुर्दशी नाम पड़ने का कारण यही प्रतीत होता है कि आज शत्रु रूप मलिनता को अत्यन्त अधोगति को पहुँचाया जाता है। इस चतुर्दशी को सायंकाल को एक दीपक मोरी अर्थात् परनाले के स्थान पर रक्खा जाता है इस दीपक का नाम यमदीपक है। पाठकगण को यह अच्छी प्रकार जान लेना योग्य है कि यम कोई व्यक्ति विशेष का नहीं यम नाम वायु का ही है। पाठकगण को विदित हो गत तीन चार वर्ष का समय हुआ होगा कि पं०अखिलानन्दने अथर्ववेदालोचन पुस्तक बना कर अपनी असभ्यता प्रकाशित की थी इस पुस्तककी अनेक विद्वानोंने समालोचना पत्रों द्वारा की थी। श्री पं० नरदेव जी शास्त्री की आज्ञा से इसका उत्तर मैंने लिखा था, मैंने तो समस्त का ही उत्तर लिखा था परन्तु शीघ्रता के कारण उसका अर्द्धभाग छपगया था अर्द्धभाग अभी नहीं छपा, इस ग्रन्थ का नाम अथर्ववेदालोचनमीमांसा रक्खा गया था। अखिलानन्दने अपनी असभ्यतासे उसमें श्री स्वामीजी महाराजपर अनेक कटाक्ष करे थे उसी में यह भी लिखा था कि यम एक व्यक्ति है कुछ श्रुतियों के प्रमाण भी दिये थे। अथर्ववेदालोचनमीमांसा में मैंने अखिलानन्द के ही अर्थों से यह सिद्ध कर दिया था कि यम कोई व्यक्ति विशेष नहीं यम एक वायु की ही संज्ञा है अतएव यहां भी यम नाम वायु का ही जानना योग्य है।

यम शब्द से वायु के ग्रहण में स्वच्छ प्रमाण इस दीपक काही उपस्थित है देखो पिछला लेख जहां यह लिखा है कि दीपक के द्वारा वायु की हा परीक्षा होसकती हैं यहां भी यम के साथ दीपक का शब्द यही सिद्ध करता है कि यम नाम वायु काही है। इस सायंकाल के समय और मोरी के स्थान पर दीपक रखने का यह प्रयोजन हैं कि मोरी का वह स्थान माना गया है कि जिसके द्वारा समस्त गृह की मलिनता जलके साथ निकलती है। जबयह जानलिया कि हमने गृहों की शुद्धि तो अच्छी प्रकार करली कल को यह कार्य्य समाप्त होगा आज इस महा मलिन स्थान की भी परीक्षा होनी चाहिये जहां कि मलिनता की राजधानी है। इसकी उत्तम परीक्षा का द्वार दीपक ही कहा गया है अतएव आज सायंकाल को दीपकके द्वारा इस स्थानके शुद्ध वायु की परीक्षा के अर्थ यह यमदीपक रक्खाजाता है इसके अनन्तर अमावस्या के दिन सबप्रकार की स्वच्छताओं की समाप्ति हो जाती है, अमावस्या के दिन सायं-काल को उत्तम २ भोजन बनाये जाते हैं और रात्रि को दीपा-वली का उत्सव होता है जिसमें इतनी बहुतायत से दीपक जलाये जाते हैं कि जिससे इसका नाम ही दीपावली पड़गया। इतनी बहुतायत से दीपक जलाने के दोही कारण हैं एक तो अत्यन्त धूप और द्वितीय जिन गृहों को जल और मृत्तिका से लेपन किया है उनकी आर्द्रता निकल जाय।

यह भी पाठक गण को विदित हो कि सूर्य्य की किरणों की प्रखरता अब दिनों दिन मन्द ही होती जायगी जिस की मन्दता से गृहान्तरों की आर्द्रता का शुष्क होना चिर काल में सम्भव है। इसी तिथि को वैश्य महापुरुष अपने व्यापार संबंधी पत्रादि का परिवर्त्तन करते हैं। पुरानी वोल चाल में

आज के दिन को लक्ष्मी का पूजन कहते हैं लक्ष्मी शब्द से स्वच्छता और मलिनता से दरिद्रता का ग्रहण है सो आज स्वच्छता विराजमान है। इस मंगल दिवस की रात्रि के समय जो हवन होता है उसमें प्रायः गूग्गुल का योग विशेषतया पाया जाता है। हमारी सम्मति से पीली सर्षप का योग यदि और होतो बहुत ही अच्छा है। सर्षप की महिमा वेद में भी बहुत कही गई है सर्षप रोगों के कीटाणुओं की विनाशक बताई गई है दीपकों में सर्षप का ही तेल डाला जाय तो अच्छा है। इस मंगल दिवस के समय देने आदि में धान की खीलों का व्यवहार अधिकता से होता है जिस का वर्णन पूर्व होचुका है धान इस ऋतु का अन्न है और पित्त दोष का शान्तकाली माना गया है इसी दिन को सौर्त्तिका पूजन भी होता है सम्प्रति स्त्रियां सौर्त्ति नाम का एक चित्र रखकर पूजती हैं इस नाम से यह विदित होता है कि यह श्रुति का अपभ्रंश सौर्त्ति शब्द है इस समय शुद्ध स्थानों में स्त्रियां चित्ररूप से श्रुतियां लिखती थीं। अतएव ऐसे उत्तम मंगल दिवस क्रीड़ा मात्र से न मनाये जाकर श्रद्धा के साथ तन मन धन और श्रम के साथ होने योग्य हैं। किन्तु इस मंगल दिवस की लक्ष्मी का मुंह द्यूत की मसी ने इतना श्याम कर दिया कि लक्ष्मी राक्षसी रूप हो गई।

यह स्मरण रहे कि खोटा दूसरे को खोटा नहीं करता स्वयं ही अपनी खुटाई को प्रकाश करता है। सीसा धातु स्वर्ण को खोटा कर देता है, स्वर्ण को स्वच्छ करने वाले सीसे को भस्म करके स्वर्ण ग्रहण करते हैं स्वर्ण का कुछ नहीं बिगड़ता, सीसे काही अस्तित्व नष्ट होजाता है। इसी प्रकार जिन महा मलिन व्यक्तियों ने इस उत्तम कार्य्य को द्यूत कर्म्म के द्वारा

सज्जनों की दृष्टि में घृणित करने का प्रयत्न किया है, वे स्वयं ही घृणा की दृष्टिसे देखे जाते हैं। फल क्या होता है जो सबको प्रकट है कारागार, लाठी, जूता, गाली इस द्यूत कर्म्म का उपहार उन को मिलता है। सज्जनों अच्छे कार्य्य को अपने बुरे विचारों से दूषित करके प्रसन्न होना नहीं दहाड़ मारकर रोना है। इस समय की लालची पुलिस के द्वारा जितना बने दुष्कर्म्म करलो, याद रक्खो जिस दिन यह कार्य्य किसी निर्लोभी सच्चे आत्मा के हाथ में सौंपा जायगा, स्मरण रक्खो कि स्वर्ण के सीसे की नाईं अपने अस्तित्व को भी ढूंढते फिरोगे अतएव इस द्यूत कर्म्म को छोड़ो और अपने को शुद्ध बनाओ। कार्य्य बड़ा उत्तम है उत्तम से उत्तमता प्राप्त करो ॥

॥इति दीपावली ॥२७॥

अथ द्वितीय गोवर्द्धन।

कार्त्तिक शुक्ला प्रतिपदा को यह मंगल दिवस होता है यह पूर्व कह आये कि गोवर्द्धन दो कालोंमें मनायाजाता है एक का काल आश्विन शुक्ला त्रियोदशी वा चतुर्दशी हैं। अन्तर दोनों में इतना है कि आश्विन मास का केवल वृषभों का होता है और यह गौ महिषी आदि सभी का होता है। कृषि कार्य्य के जोतने बोने आदि कार्य्यों के अर्थ वृषभों की आवश्यकता होती है अतएव उनके इस कार्य्य से इसी समय निश्चिन्त होजाते हैं शेष ऐसे पशु जिनका कृषि से विशेष सम्बन्ध नहीं होता वे जब तक शीत विशेष होने की संभावना नहीं होती तब तक वहीं चरते रहते हैं। यह समय शीत विशेष होने का होता है अतएव इन को इनके स्वामी इसकाल में स्थानों पर मंगातेहैं यह समय इनकी शुद्धि का है और इसी समय पर इनके सेवकों को वेतन

आदि भी दिया जाता है इस पशुओं के स्वामी अपने पशुओंको स्नानादि तथा तैलादि मर्दन कर भूषित करते हैं सायंकाल को स्त्रियाँ गोवर्द्धन का एक चित्र बनाती हैं जिस में गोवर से गौ महिषी उनकी संतति आदि के चित्र बनाती हैं। एक गोप का चित्र भी बनाती हैं, जिस प्रकार गोपाल बनों में पशुओं को चराते हैं उस समय का चित्र याथातथ्य बनाया जाता है इस चित्रको कार्पास और सींकों से अच्छा रमणीक बनाकर सायंकाल को वा प्रातःकाल को इसे किसी शुद्ध स्थान में वा क्षेत्रमें डाल देती हैं। गोपाल का वेतन जो कुछ नियत होता है वहभी इसी दिन चुकाया जाता है। इस कृत्य में जो चित्र रक्खा जाता है उससे हमारा यहअभिप्रायःनहीं किहम उसके प्रतिपादन पक्ष को ग्रहण कर यह कहें कि वह कर्त्तव्य है इस वर्णन से उसके एक अङ्ग को दिखाना मात्र अभीष्ट था वर्त्तमान के सज्जनों को अधिकार हैं उचित अनुचित का विचार रक्खें वा न रक्खें परन्तु इस एक अङ्ग से घृणा कर गोवर्द्धन जैसे विहित कार्य्य से वञ्चित होना नितान्त मूढ़ता होगी गोवर्द्धन कार्य्य जो अति उत्तम है वह यदि न हुआ तो अच्छा नहीं। हमारी सम्मति से तो यदि यह चित्र बनाना विशेष हानिकर नहो तो स्त्रियों तथा बालकों की इस क्रीड़ा को जो शिल्प का एक अङ्ग है शुद्ध रीति पर करनी सिखाई जाय अग्रे जो सज्जनों को रुचे करें।

॥ इति गोवर्द्धन ॥ २८ ॥

अथान्नकूट विचारः।

यह मंगलदिवस भी कार्त्तिक शुक्ला प्रतिपदा कोही होता है कृत्य इसमें यह रक्खा गया है कि आज दिन उपाध्याय अपने स्थानों पर इस ऋतु के उत्पन्न फल शाक अन्नादि का भोजन बनाते है। और इस अन्न का स्वाद अपने यजमानों को चखाते

हैं। उपाध्याय के इस व्ययको यजमान लोग इस प्रकार चुकाते हैं कि जिससे उपाध्यायजी को भी अनुचित प्रतीत न हो कोई तो अन्नही भेजदेते हैं और कोई २ दक्षिणा रूप से भेट करतेहैं केवल श्रममात्र उपाध्याय जी महाराज का रहजाता है। लागत का भाण्डा ज्यों त्यों करके पूरा होही जाता है। सम्प्रति उपाध्यायों का यह कृत्य व्यापार रूपसे देखाजाकर हास्यका कारण होगया किन्तु आधार शिला इन कृत्यों की उन महानुभावों के हाथों से धरीगई प्रतीत होती है जो जनता के एकमात्र हितैषी कहे जाचुके हैं। जिन्होंने आयुर्वेद के द्वारा राजा से भी ऊँचा पद पाया है। यह हम पूर्व से कहते आरहे हैं कि इन क्रीड़ारूप कार्य्यों की मूलका खोज करना योग्य है इस व्यापार रूप कृत्य हो पर दृष्टिपात कीजिये वस्तुतः यह कितना उपयोगी कार्य्य था।

पाठकगणको यह विदित हो कि राज्यके जितने प्रबन्ध आप को वर्त्तमान में दृष्टिगोचर होते हैं इससे भी कई गुणा अधिक पुराकाल में विद्यमान थे। प्रत्येक गृहस्थ के साथ इन चार व्यक्तियों का सम्बन्ध सदैव रहता था १-पुरोहित २-उपाध्याय ३-आचार्य्य ४-आश्रित। पुरोहित उस व्यक्ति का नाम था जो थोड़ा बहुत ज्ञान सब विषयों का रखता था, जितने पुरुष एक को अपना पुरोहित बनाते थे वह सदैव उन के कार्य्यों को बनाता रहता था जो बड़े विद्यालयों में सम्मलित होने वाली छोटी कक्षाओं को पढ़ाता था। आचार्य उसको कहते थे जो महाविद्यालयोंमें मुख्याध्यापक पदको भूषित करता था। आश्रित वह व्यक्ति होता था जो विवाहादि तथा अन्य मंगलादि अवसरों पर पाक क्रिया में सहायता देता था। जिन लोगों का यह विचार है कि पाक आदि बनाना शूद्र का कार्य्य है और साथ

ही में यह भी कहते हैं कि शूद्र उस व्यक्ति को कहते हैं जो पढ़ लिख न सकता हो यह दोनों परस्पर विरुद्ध हैं। पाक बनाना भी एक विद्या है इस नाम का एक शास्त्र ही प्रसिद्ध है जिस में प्रत्येक व्यञ्जन बनाने की विधि बताई गई है जैसे कि:—

अनुष्णेद्विदला दद्यादुष्णे दद्याच्च तंदुलम्।
अपक्के लवणम् दद्यात् पक्के दद्याच्च रामठम्॥

दालको ठण्डेपानीमें और चावलों को उष्ण जल में डालना चाहिये, यदि लवण डालना होतो वह भी ठण्डे पानी में ही डाला जाय, हिंगु दाल की पक्क दशा में दे इसी प्रकार अन्य व्यञ्जनों के विषय में भी लेख हैं अब यह सिद्ध होगया कि पाक क्रिया का भी एक शास्त्र है और वह संस्कृत में है फिर यहकैसे मान लिया जाय कि बिना पढ़े पाक क्रिया को वह जानताहोगा इसलिये शूद्रका कार्य्य पाक बनाना ठीक नहीं यदि यह कहो कि उसको पाक क्रिया सिखाई जाती होगी तब उसकी शूद्र संज्ञा मानना नितान्त मूढ़ता होगी।

यदि यहां यह कहा जाय कि आर्य्यसमाज के प्रवर्त्तक स्वामी दयानन्द जी ने अपने रचे सत्यार्थप्रकाश के दशम समुल्लास में एक माननीय ग्रन्थ आपस्तम्ब धर्म्म सूत्र का प्रमाण देकर यह स्वच्छ कर दिया है कि शूद्र ही पाचक होना चाहिये प्रमाण भी यह है (आर्य्याधिष्ठिता वा शूद्राः संस्कर्त्तारः स्युः।) स्वामी जी के कथन में तथा प्रमाण में दोष उन व्यक्तियों का है जो शास्त्रों की योग्यता न रखते हुए शास्त्रों में पद अड़ाते हैं। सूत्र का शब्दार्थ इतना सरल है कि एक लघुकौमदी पाठी भी सुगमता से जान सकता है सूत्र का आशय है कि भोजन का (आर्य्याधिष्ठिता वा) प्रबन्धकर्त्ता आर्य्य हो और (शूद्राः संस्कर्त्तारः स्युः) शूद्र संस्कर्त्ता अर्थात् शाका-

दि तथा छिलका और तन्दुलादि के छांटने फटकने एवं प्रक्षालनादि कर्म्मों में नियुक्त होने चाहियें। शब्दार्थ का न जानना अनर्थ का कारण होता है मन्त्रके शब्दों में (आर्य्याधिष्ठाता) एक वचन और (शूद्राःसंस्कर्त्तारः स्युः) ये सब बहुवचन हैं, इस से स्पष्ट पाया जाता है कि एक आर्य्य पाकविद्या में निपुण भोजन का नेता और शेष शूद्र लोग उसके सहाय रूप से रहें। लोक में भी ऐसा ही देखा जाता है एक हलवाई की दुकान पर बहुत मनुष्य रहते हैं परन्तु पदार्थों के बनाने की चाशनी के देखने का अधिकारी एक निपुण व्यक्ति ही होता है यह आश्रित व्यक्ति भी प्रत्येक गृहस्थ के यहां विवाहादि कार्य्यों में भोजन का अधिष्ठाता होता था।

इन उक्त चारों व्यक्तियों के कार्य्य पृथक् २ रहते थे, इन में से उपाध्याय के आधीन कई कार्य्य थे विद्यार्थियों को वेदांगादि तथा अन्य गणित और चित्र आदि सिखाना गृहस्थियों के यहां कर्म्म कराना भी उपाध्याय काही कार्य्य था, छोटे २ रोगों की चिकित्सा भी उपाध्याय करते थे। पुराकालमें आयुर्वेद के ज्ञाताओं ने इस आयुर्वेद के कई भाग कर रक्खे थे एक औषधि निर्माण के ही अर्थ रहता था। किन्हीं के अधिकार में नगर की स्वच्छता होती थी। इन उपाध्याय महाशय के आधीन ऊपर के कार्य्यों के अतिरिक्त एक यह कार्य्य अधिक था कि इस समय के अन्न तथा शाकादि की यह परीक्षा करना कि कौन २ निर्दोष हैं, वर्षाऋतु के विष से दूषित तो नहीं उपाध्याय आज के दिन उसकी परीक्षा करके यह आज्ञा देते थे कि अमुक २ निर्दोष है और अमुक अमुक सदोष। इस मंगल दिवस का नाम अन्नकूट ही यह बता रहा है कि वह अमुक कार्य्य के अर्थ था अन्न शब्द खाने के पदार्थों का

और कूट शब्द समुदाय का वाचक है अर्थात् अन्नों का समूह इतनी अधिकता से अन्नों का एकत्रित करना क्रीड़ा नहीं कहा जासकता, किसी बड़े उत्कृष्ट कार्य्य के अर्थ है हां इतना तो कहा जासकता है कि इस प्रकार के कार्य्य राजसभा के बिना नहीं हो सकते। जिस काल में राज्य वैदिकधर्मावलम्बियों के हाथ में था उसी काल के यह कार्य्य भी हैं वर्त्तमान में एक रेखामात्र पीटी जा रही है कार्य्य के महत्व में शंका नहीं होती।

॥इति अन्न कूट ॥२६॥

अथ यमद्वितीया।

यह मंगल दिवस कार्त्तिक शुक्ला द्वितीया को होता है इस मंगल दिवस में भ्राता भगिनी का सम्मेलन होता है भ्राता भगिनी की सुध के अर्थ जाता है भगिनी उसका आतिथ्य सत्कारपूर्वक करती है इस समय भ्राता भगिनी को दक्षिणा रूप से द्रव्य भी देता है यह प्रथा उस काल से आरम्भ हुई प्रतीत होती है जब कन्याओं का विवाह दूर देश में होता था। चार मास वर्षा ऋतु में एक को दूसरे की सुध मिलना कठिन थी। इस का नाम यम द्वितीया पड़ने का कारण ऋग्वेद का यम यमी सूक्त है ऐसा जान पड़ता है इस यम यमी सूक्त में भ्राता और भगिनी का ही वर्णन है। इस मंगल दिवस में भी भ्राता और भगिनी का ही संबंध है। अतएव यह नाम यमयमी सूक्त ही से आविष्कृत है। लोक में यम द्वितीया को भ्राता भगिनी का स्नेह भाव बढ़ाना सिद्ध होता है इस व्यवहार के अनुकूल यम यमी सूक्त के अर्थों से भी यही उपदेश ग्रहण करना योग्य है।

॥इति यम द्वितीया ॥३०॥

अथ देव प्रबोधनी।

यह मंगल दिवस कार्तिक शुक्ला एकादशी को होता है, इस एकादशी का नाम भी देव प्रबोधनी ही है। इस दिवस के कृत्य देखने से यह विदित होता है कि यह किसी विशेष शुद्धि के अर्थ होता है। नाम इस का यह प्रकाशित करता है कि यह देवों के जागने का दिन है। पाठक गण को स्मरण होगा कि आषाढ़ शुक्ला एकादशी को देव शयन कहा जा चुका है वहां शयन का अर्थ यह कहा गया है कि निरन्तर वा बाहुल्येन मेघों के घिरे रहने से देवगण अपना प्रकाश करने में असमर्थ रहेंगे कार्तिक शुक्ला एकादशी को वर्षा की सर्वथा शान्ति के कारण देवगण अपना कार्य्य करने में समर्थ माने जाते हैं इसी हेतु से इसका नाम देव प्रबोधनी पड़ गया है। यह भी पाठकगण देव शयनों के विषय में पढ़ चुके हैं कि हमने वहां देवता शब्द से सूर्य्यादि ग्रह तथा नक्षत्रों का ग्रहण किया है। यद्यपि वेद में देवता शब्द बहुत अर्थों में ग्रहण हुआ है परन्तु शयन और प्रबोध अर्थ में जिन देवतों का ग्रहण है वे द्युलोकस्थ सूर्य्य चन्द्रादि ही हैं।

इस विषय में एक पौराणिकी गाथा भी विद्यमान है कि दक्षिणायन के समय विष्णु भगवान् चार मास क्षीर समुद्र में शेषनाग की शय्या पर शयन करते हैं और कार्त्तिक शुक्ला एकादशी उनके जागरण का दिन है। इस गाथा का रहस्य न जान कर विचार उलटे होगये और उन उलटे विचारों ही के कारण इस गाथा की अवहेलना होने लगी। जब गाथा के जानने वाले ही इस का अभिप्राय नजान सके फिर उन अवहेलना करने वाले नितान्त मूढ़ों को क्या कहा जाय? गाथा

सोलहों आने सत्य है उलटा विचार करना उन मूढ़ों की कृपा कटाक्ष का फल है जो कुछ न जानते हुए अपने को विद्वान कहते हैं, पाठक गण यह भी आप को विदित है कि विष्णु के साथ समस्त ही देव गणों का शयन माना गया है एक के शयन में सब का शयन तब ही कहा जा सकता है जब एक का सब के साथ संबंध सिद्ध होगा प्रत्येक के पृथक २ मानने से सब का शयन एक साथ नहीं हो सकता जैसे मानव शरीर के जीवात्मा के साथ में इन्द्रियों का शयन माना जाता है। विष्णु के साथ भी देवगण का संबन्ध जब तक ऐसा ही सिद्ध न हो जाय तब तक एक विष्णु के साथ सब का शयन मानना असंगत रहैगा। गाथा से तो यही सिद्ध होता है कि विष्णु के साथ देवगण का ऐसा ही संबन्ध है कि जैसा जीव के वामन के साथ इन्द्रियों का है।

यह गाथा अलंकार रूप से कही गई है, गाथा में पार्थिव समुद्र का ग्रहण नहीं है, गाथा के रचयिता का अभिप्राय समुद्र से आकाश का ग्रहण है, इसीलिये समुद्र के साथ क्षीर शब्द का प्रयोग रक्खा गया कि जैसे दुग्ध निर्म्मल और स्वेत होता है ऐसा ही स्वच्छ और श्वेत आकाश है। विष्णु से अभिप्राय है सूर्य्य से, विष्णु का वर्ण काला माना गया है, सूर्य्य भी कृष्ण वर्ण है। महा भारत की यह गाथा भी सूर्य्य के विष्णु होने में साक्षी देती है और ग्रन्थों के देखने से भी यह पता लगता है कि विष्णु के सभी लक्षण सूर्य्य में घटते हैं। विष्णु का वाहन गरुड़ और सारथि है अरुण, ये दोनों विनता के पुत्र कहे जाते हैं। कश्यप की दो स्त्री थीं एक कद्रु और द्वितीया विनता कद्रु से सर्पों की और विनता से गरुड़ और अरुण की उत्पत्ति कही जाती है और यह भी कहा जाता है कि अरुण

बिना अंग्राओं का था। इस गाथा में भी कश्यप शब्द से सूर्य्य ही का ग्रहण है कारण यह है कि यह कश्यप शब्द पश्यक से बनता है (पश्यति अनेनेति पश्यक) जो दिखावे या देखे, इससे सूर्य का नाम पश्यक है। पश्यक का वर्ण विपर्यय से कश्यप हुआ है। इस कश्यप नाम वाले सूर्य्य की स्त्री मानी गई है रात्रि, रात्रि के दो भाग माने गये हैं एक पूर्व भाग द्वितीय पर भाग। जिस में अंधकार विशेष रहता है उस भाग का नाम है कद्रू, अंधकार श्याम रूप होने और मृत्यु रूप होने से सर्प्प की संज्ञा वाला है। कद्रू संज्ञावाली रात्रि से अंधकार रूप सर्प्पों की उत्पत्ति कही गई है और रात्रि के पिछले भाग में जिसका नाम विनता है, प्रथम उषा जिस का वर्ण रक्त होता है वही अरुण है। यह भी एक मुख होकर सभी ग्रन्थ कार कहते हैं कि गरुड़ से प्रथम अरुण की उत्पत्ति है। बिना जंघाओं वाला क्यों कहा इसका यहकारणहै कि अरुण का पूर्व का आधा भाग ही देखा जाता है, दूसरे उत्तर भाग का दर्शन नहीं होता। गरुड़ शब्द से सूर्य्य की किरणों का ग्रहण है। गाथा बड़े आशय वाली है, ज्ञान शून्यों के अर्थ अवहेलना के योग्य है।

यह भी पाठक गण को विदित होगा कि जितने प्रकाशक ग्रह नक्षत्रादि कहे गये हैं उन सबका प्रकाशक सूर्य्य ही माना गया है सूर्य्य के प्रकाश का ह्रास सब प्रकाशों के ह्रास का कारण है यही सूर्य्य रूप विष्णु आकाश रूपी समुद्र में सोते हैं, इन्हीं के साथ अन्य ग्रह नक्षत्रादि भी शयन करते कहे गये हैं। अब यह संगति मिल गई तब यह बात शेष रहती है कि वह शेष अर्थात् सर्प्प कौन है जिस की शय्या पर शयन होता है इस के विषय में भी एक गुप्त वार्त्ता है वह यह है कि हमने

देव शयन में दक्षिणायन और उत्तरायण के विषय में लगध ज्योतिष का एक प्रमाण देकर यह बताया है कि यह खगोल चक्र नित्य परिवर्त्तन रूप होने के काल को इधर उधर करके दिखाता है। वर्त्तमान में दक्षिणायन मिथुन की संक्रान्ति में होता है पुराकाल में जबकि यह गाथा अलंकार रूप से रची गई है कर्क की संक्रान्ति में होता था इस विषय का प्रमाण तो पूर्व दे आये हैं यह ज्योतिष शास्त्र का है, दूसरा यह प्रमाण मैत्र्युपनिषद् का देते हैं(मघाद्यं श्रविष्ठार्द्धं मारनेयं सार्प्पा द्यंश्रविष्ठार्द्धान्तं सौम्यम्)माघमास में आधे धनिष्ठा से उत्तरायण होकर श्लेषा के आधे भाग पर्य्यन्त उत्तरायण और श्लेषा से धनिष्ठा पर्य्यन्त दक्षिणायन होता है यह श्लेषा नक्षत्र सर्प्पाकार कहा गया है। सूर्य्य जिसको विष्णु कहते हैं, सर्प्पाकार श्लेषा नक्षत्र से दक्षिणायन होता है, यही शेष अर्थात् सर्प्प की शय्या पर शयन है।

जिस समय यह गाथा रची गई है उस समय दक्षिणायन श्लेषा नक्षत्र से होता था सम्प्रति मिथुन में होता है। यदि इस काल में देव शयन का ऐसाही अलंकार बांधा जाय तो यह कहना पड़ेगा कि विष्णु एक स्त्री और एक पुरुष की शय्या पर समुद्र में चार मास निवास करते हैं। कारण यह है कि मिथुन राशि का आकार एक स्त्री और एक पुरुष कासा है। इन गाथाओं और प्रमाणों से पाठक गण को यह विदित हो गया होगा कि देव शयन तथा जागरण में द्युलोकस्थ सूर्य्य चन्द्र और नक्षत्रादि काही ग्रहण है येही देवगण इस एकादशी को जागते हैं। कृषि कार ऊख को इसी दिनसे भक्षण करना आरम्भ करते हैं। महिला गण ग्रहों को अनेक चित्रों से भूषित कर अपनी शिल्पता का परिचय देती हैं। इस समय के चिह्न

में एक योग ऐसा अद्भुत है कि जिससे उसके निर्माता की विद्या का यह पता चलता है कि यह पूर्ण आयुर्वेदज्ञ था। योग यह है कि स्त्रियां पूर्व गोमय से भित्तियों का कुछ भाग लेपन कर उसके ऊपर गेरू से रेखा बनाती हैं फिर उन गेरू की रेखाओं पर साठी तन्दुलों को बहुत सूक्ष्म पीस कर चित्र बनाती हैं। इस समय की चित्रकारी में यह योग जिसने बताया है उसका लक्ष्य एक ऐसे दोष को हटाने का था जिस-पर सामान्य बुद्धियों का ध्यान जाना कठिन है।

यह पूर्व कह आये कि वर्षा ऋतु से स्थानों की शुद्धि पूर्ण-तया हो चुकी सामान्य बुद्धिवालों को अब शुद्धि में सन्देह नहीं रहा, इस योग के निर्माता की बुद्धि में अभी वह दोष किसी अंश में रह जाना सम्भव है। पाठकगण यह दोष दूषी विष मानागया है, यह दूषी विष बड़ा भयंकर होताहै इसकी उत्पत्ति स्थानों तथा वस्त्रों एवं खान पान से शरीरों में होती है, इस विष के शरीर में प्रवेश होजाने से शरीर रोगों का अड्डा हो-जाता है। इस विषसे मरण शीघ्र नहीं होता परन्तु शरीर को निरर्थक अवश्य कर देता है, इसकी उत्पत्ति का वर्णन इस प्रकार है—

(जीर्णं विषघ्नौषधि भिर्हतं वादावाग्नि
वातातप शोषितंवा । स्वभावतोवागुण
विप्र हीनं विषं हि दूषी विषता मुपैति)

बहुत जीर्ण किसी विष नाशक औषधि से निर्बल हुआ दावाग्नि तथा वात या घाम आदि से शुष्क एवं स्वभाव से तथा गुणों की हीनता से ये ही स्थावर वा जंगम विष दूषी विष संज्ञावाला होजाता है। पाठक गण यह पढ़ चुके होंगे कि जिस वर्षाऋतु की मलिनता का अभाव नीरोगता के

अर्थ दीपावली मंगल दिवस की शुद्धि के द्वारा किया गया है उस शुद्धि के पश्चात् भी दूषित विष का जिसकी उत्पत्ति का प्रकार पीछे कहा गया है किसी अंश में शेष रह जाना सम्भव है, उसको भी सर्वथा निर्मूल करने के अर्थ इस एकादशी के दिनके चित्र आकर्षण कृत्य में यह योग रक्खा गया है। दूषित विष की शान्ति के अर्थ जो प्रयोग कहा गया है वा कहे गये हैं, उनमें गैरिक का योग अवश्य होता है। इससे यह चित्र इस योग से बनाने की प्रथा पड़ी प्रतीत होती है। शास्त्र कारों का मत है कि बिना किसी कारण विशेष के कोई कार्य्य भी नहीं होता। इसी एकादशी के दिनसे मंडल की समिति में गृहस्थियों का प्रस्थान आरम्भ होजाता है जिसका वर्णन आगे होगा।

॥इतिदेव बोधनी एकादशी ॥२१॥

अथ गंगा स्नान।

यह गंगा स्नान मण्डलों की समिति है मेषी संक्रान्ति में जो सम्मेलन कहा गया है वह सार्व भौम सम्मेलन माना गया है यह कार्तिक मास में दो तीन मण्डलों को एकत्रित करने के अर्थ होता है। इस प्रकार के संमेलनों से वही लाभ प्राप्त होते हैं जिन का वर्णन मेषी संक्रान्ति में होचुका है। इस गंगा स्नान पर बालक बालिकाओं चौलकर्म्म का प्रचार विशेषतया पाया जाता है, कारण तो इस का यह था कि ग्राम की जनता को ऐसे छोटे संस्कारों के अर्थ प्रायः कर्म्म काण्डी विद्वान् नहीं मिलते, इस संगठन में विद्वानों का मिलना सुगमता से होता है अतएव अच्छा अवसर होने से यह संस्कार यहीं होने आरम्भ होगये हों ऐसा सम्भव है। यद्यपि चौलकर्म्म सोलह संस्कारों के अन्तर्गत होने से स्थान पर ही होना योग्य है तथापि यह

कार्य्य न जाने किन कारणोंसे इस अवसर पर आरम्भ होगया यदि कार्य्य शास्त्र आज्ञा के अनुसार हो तब तो उसमें कुछ चिन्ता नहीं परन्तु शास्त्र के विपरीत कार्य्य होने से केवल आज्ञा काही उल्लंघन नहीं कार्य्य की भी हानि होती है। चूड़ा कर्म्म के लिये यह आज्ञा है कि एक वर्ष के बालक का होना चाहिये अधिक से अधिक तीन वर्ष के बालक का। जिन महानुभावों ने संस्कार विषय का अवगाहन करके संस्कारों की आज्ञा दी है उन का बड़ा गंभीर आशय था उस आज्ञा का मानना अपने ही कल्याण के अर्थ है। सम्प्रति चूड़ाकर्म्म संस्कार इतना भ्रष्ट होगया कि जिस का शोधन सज्जनों को बलात् करना योग्य है प्रथम तो यह संस्कार गृहपर विधि के साथ होना चाहिये। यदि हमारा अज्ञान यही आज्ञा देता है कि गंगा क्षेत्र ही पर होना चाहिये तब इतना तो होकि एक वर्ष के बालक से न्यून का न हो। सम्प्रति यह बुरी प्रथा चल पड़ी है कि बालक यदि गंगास्नान से एक पक्ष पूर्व भी हो जाय तब भी चौलकर्म्म की आवश्यकता के अर्थ गंगा स्नान जाना पड़ता है न यह ध्यान रहता है कि प्रसूता निर्बल है शीतकाल में शीत जल से स्नान करने और पथ्य व्यत्यय होने से बालक और प्रसूता दोनों के प्राण संकट में पड़ जाने का भय है यूं तो बालक और प्रसूता दोनों प्राण से भी प्रिय हैं परन्तु इस प्रथा के सन्मुख दोनों का अशुभ नहीं देखा जाता। जिस चौलकर्म्म के अर्थ एक कर्म्म काण्ड जानने वाले विद्वान की आवश्यकता थी वहां एक अज्ञनापित ही इस कर्म्म के लिये पर्याप्त समझा जाता है, यह कितना अज्ञान है, ऐसी बुरी और हानिकर प्रथाओं को छोड़ना योग्य है।

ऐसे परमोपयोगी संगठनों के समय पर बहुत से ऐसे कार्य्य भी होने आरम्भ होगये हैं, जिनकी गणना 'दुराचारों

में होती है, उन का भी संशोधन होना योग्य है। "उत्तम कार्य्य को उत्तम रीति पर करने से ही लाभ की आशा करनी चाहिये अन्यथा सिवाय दुःख दर्शन के और क्या होगा? इस गंगास्नान के पश्चात् फिर कुछ काल के लिये मंगल दिवसों का कार्य्य शिथिलता को प्राप्त होजाता है, कारण इसका यह है कि आगे ऋतु भी शीत आती जाती है और अग्नि का बल भी अधिक होता जाता है अतएव रोगों का भय नहीं होता पाठक गण यह देखते होंगे कि अन्य ऋतुओं की अपेक्षा वर्षाऋतु में मंगल दिवस अधिकता से देखे जाते हैं इसका कारण यही प्रतीत होता है कि वर्षाऋतु ही में रोगों से रक्षा की विशेष आवश्यकता है इस विषय की एक कहावत भी प्रचलित है। "आया गंगा स्नान और मंगल दिवसों को देगया पिधान" यूं तो जनता की अज्ञता और स्वार्थियों की प्रेरणा से प्रत्येक तिथि तथा वार को कोई न कोई कार्य्य होता ही रहता है किन्तु समारोह के साथ होते नहीं देखेजाते हैं अतएव यह गंगास्नान समारोह से होने वाले मंगल दिवसों का पिधान ही समझा जाता है कहावत भाषा में है और बेतुकी सी प्रतीत होती है किन्तु है सार्थक।

॥इति गंगा स्नान ॥३२॥

अथ वसन्त पंचमी।

गंगास्नान के पश्चात् माघ मास की शुक्ला पंचमी को उक्त नाम का मंगल दिवस मनाया जाता है वस्तुतः यह कोई ऐसा मंगल दिवस नहीं जिसमें विशेषता से कृत्य होते हों केवल एक बड़े मंगल दिवस की आधार शिला की स्थापना का दिवस है। पाठकगण को यह भली प्रकार विदित होगा कि,

आगे एक बड़े महत्व का मंगल दिवस होता है जिसके शास्त्रों में कई नाम आते हैं। लोक भाषा में होली यह अपभ्रंश नाम प्रचलित है इस पंचमी से इस बड़े मंगल दिवस के कार्य्य आरम्भ होजाते हैं। इस ऋतु में पोत वस्त्रों के धारण करने की प्रथा विशेषतया पाई जाती है पवमी का यही कृत्य होता था पुरानी चाल ढाल की जनता में यह प्रचार अब भी पाया जाता है किन्तु नवीन प्रकाश के समय में इस को मूढ़ता माना जाता है। पाठकगण यह देखते होंगे कि सम्प्रति चिकित्सा के अनेक रूप हैं कितने ही चिकित्सक केवल रंगों की बोतलों में जल भर कर सूर्य्य के ताप से तापित करके अनेक रोगों में जल का प्रयोग करते हैं। विचार सदैव बदलते रहते हैं उस समय के विचारशीलों का यह विचार था ऋतु २ में रंगों के वस्त्र धारण से सामान्य रोगों की शान्ति होनी सम्भव है, उस काल में रंगों के बनाने के अर्थ वृक्षों से ही रंग लेने की प्रथा थी इस ऋतुका पीत रंग टेसू तुण, हार श्रृंगार वृक्षों से लेते थे। यह शिक्षा भारत के सज्जनों ने अपने प्रभु रचना से ग्रहण की थी ऐसा विदित होता है पाठक गण यह देखते होंगे कि वसन्त ऋतु में यूं तो सभी प्रकार की वनस्पतियों का विकाश होता है पुष्प भी अनेक रंगों के विकसित होते हैं परन्तु विशेषतया पीत वर्णके पुष्पों का विकाश देखा जाता है। आयुर्वेदविदों ने यह भी निश्चय किया है कि समस्त रंगों की उत्पत्ति का करने वाला सूर्य्य है इस ऋतु में पीत वर्ण के पुष्पों का विकाश किसी विशेष गुणका देने वाला है। अतएव पीत वर्ण के वस्त्रों का शरीर की त्वचा से स्पर्श करना अच्छाही है। इत्यादि विचारों से यह प्रथा पड़ी प्रतीत होती है।

पाठकगण यहभी देखते होंगे कि भारत में गान का प्रचार सदैव से चला आता है। अन्य ऋतुओं की अपेक्षा इस ऋतु में यत्र तत्र गान का प्रचार विशेषता से होता है। गायक महाशय इस पंचमी से वसंतोत्सव पर्य्यन्त नित्य ही गान का अभ्यास करते हैं। यदि यहां यह प्रश्न हो कि क्या गान भी कोई ओषधि है जो किसी रोगकी निवृत्ति के अर्थ हो यह तो एक व्यसन है जो प्रायः गुंडे पुरुष करते हैं। वर्त्तमान दशा के गायकों की बिगड़ी हुई परिपाटी ने देश के सज्जनों को ऐसा प्रश्न करने के अर्थ उतारू करदिया वस्तुतः प्रश्न युक्त नहीं। कारण कि गान की शिक्षा वेदों में वर्णित है, अपने यहां के बड़े २ व्यक्ति इसके ज्ञाता आविष्कर्त्ता और रसिक होते आये हैं। नारद जी महाराज जिनकी गणना ऋषियों में हुई है, गान के कितने रसिक कहे जाते हैं शिवजी का ताण्डव नृत्य प्रसिद्ध ही है। अतएव यह कहना कि गुंडों का व्यापार है ठीक नहीं गान परमानन्द का देने वाला होने से सबको ही प्रियहोता है।

रहा यह प्रश्न कि क्या गान कोई ओषधि है इसका उत्तर यहहै कि क्या प्रश्नकर्त्ता महाशय ने केवल जड़ी बूटियों को ही ओषधि मान रक्खा है? यदि ऐसा विचार है तब यह आयुर्वेद विदों के मत से विरुद्ध है। आयुर्वेद के मत से रोग की शान्ति तथा नीरोगता स्थापन के अर्थ जो क्रिया होती है, उसका नाम चिकित्सा है (कित्) धातु रोग के हटाने अर्थ में है चाहे वह किसी प्रकार से हो ओषधि से हो वा शारीरिक किसी कर्म्म द्वारा हो रोग के कारण के विपरीत उसको शमन करने वाली सभी ओषधि हैं। यह तो सामान्य पुरुष भी जान सकते हैं कि परमात्मा ने एक के विपरीत दूसरे को रचा है. शीत के विपरीत उष्णता, प्रकाश के विपरीत अंधकार इसी नियम के अनु-

सार आयुर्वेदज्ञों की क्रिया पाई जाती हैं। जागरण से उत्पन्न व्याधि को चिकित्सा शयन एक क्रिया है यह क्रिया भी रोग की निवृत्ति के अर्थ औषधि ही मानी गई है। प्रत्येक ऋतु में बताई हुई क्रिया भी औषधि ही माननी चाहिये। जैसे वर्षा ऋतु में व्यायाम करना अति लाभदायक है और वसन्त ऋतु में भ्रमण करना पथ्य कहागया हैं इसी प्रकार गायकों का यह व्यायाम है जिसकी इस ऋतु में आवश्यकता विशेष पाईगई। इस आवश्यकता का वर्णन आगे करेंगे।

हां यह कथन प्रश्नकर्त्ता का बहुत अच्छा है कि गान का प्रचार विशेषतया अच्छी प्रकृति के पुरुषों में नहीं पाया जाता। गान शुद्ध और उपदेशजनक होने योग्य हैं, आर्यसमाज ने इस विषय पर प्रकाश तो बहुत कुछ डाला है, कुछ सफलता भी हुई है और आगे होने की संभावना है आशा तो यह है कि अब गुंडे रागों का लोप हो होगा किन्तु गान है उत्तम इस का अभ्यास अवश्य करना चाहिये। उक्त कार्य्यों के अतिरिक्त वसन्तोत्सव के अन्य छोटे कार्य्य भी इसी तिथि से आरम्भ होते थे होने भी इसी मंगल दिवस से चाहियें।

॥इति वसन्त पञ्चमी ॥३३॥

अथ शिवरात्रि विचारः।

इस नाम का एक मंगल दिवस फाल्गुण कृष्ण त्रयोदशी को भारत में होता है। हमें इस पर विचार करने की आवश्यकता भी नहीं थी कारण कि यह मंगल दिवस किसी महत्व को प्रकाश करने वाला प्रतीत नहीं होता, यह शिवजी जिनके लिंग अवयव का पूजन होता है पूजा का दिन है पौराणिक भ्रातृवर्ग का कथन है कि इस दिन शिवलिंग

पर गंगाजल चढ़ाने से शिव लोक की प्राप्ति होती है। ऐसे विषयों पर आर्य्यसमाज के जन्म से अब तक विवाद होते चले आते हैं किन्तु सार कुछ नहीं निकलता। कहीं २ इस दिन मेले आदि भी होते हैं जिन व्यक्तियों का इस में सम्मेलन होता है उन को असभ्यता सीमा से आगे बढ़ गई अश्लील शब्दों से स्त्रियों पर अधिक कटाक्ष होता है। इस अश्लीलता से अन्य मतावलम्बी हिन्दूसमाज को अच्छी दृष्टि से नहीं देखते, अतएव हेय है।

इस मंगल दिवस के विषय में कई बात पाई जाती हैं। पुराणों का मत तो यह है कि ब्रह्मा ने इस त्रयोदशी को प्रथम शिवलिंग की स्थापना की है। जनता की कहन है कि आज के दिन शिवजी का विवाह पार्वती जी के साथ हुआ है इन दोनों गाथाओं में से एक भी ऐसी नहीं जिस पर बुद्धि कुछ विचार करे। हमें यह लेख इसलिये लिखना पड़ा कि सम्प्रति यह दिवस आर्य्यसज्जनों के अर्थ मंगलदिवस ही हो-गया। इसी दिन आर्य्यसमाज के प्रवर्तक श्रीस्वामी दयानन्द यतिवर को यह बोध हुआ था कि इस प्रकार के कार्य्य के-वल क्रीड़ा रूप हैं, इनको हटा कर कर्त्तव्यों का प्रचार कर्त्तव्य है। आर्य्य सज्जनों के अर्थ यह दिवस क्रीड़ा से निकल एक महत्व का दिवस होगया। आर्य्य सज्जनों को इस अवसर पर श्री स्वामी दयानन्द महाराज के गुण गाने के अतिरिक्त वेद प्रचार के मार्गों पर विशेष ध्यान देना योग्य है। आज के दिन जो कुछ भी दान यथा शक्ति करना हो वह सब वेद प्रचार कोही देना योग्य है। स्वामी जी महाराज की यही हार्दिक इच्छा थी कि संसार में वेद की शिक्षा का प्रचार हो। सम्प्रति जो कुछ आन्दोलन दृष्टि गोचर होता है वह सब उक्त महानु-

भाव के शुभ उद्योग का फल है। उक्त महाशयने आर्य्य सज्जनों के स्कन्धों पर भारी भार रक्खा है, तन मन धन अर्पण करने पर भी उससे उऋण होना कठिन है अतएव वेद प्रचार का उद्योग असाधारण श्रम से कर्त्तव्य है।

॥इति शिव रात्रि ॥३४॥

रंग की एकादशी।

यह मंगल दिवस फाल्गुण शुक्ला एकादशी को होता है यह कोई पृथक् मंगल दिवस नहीं है जिस मंगल दिवस का आगे वर्णन होगा यह उसी की एक शाखा है इस दिवस उस मंगल दिवस का कार्य्य अहर्निश होता रहता है इस दिवस को बड़े कार्य्य का नगरकीर्त्तन कहना चाहिये। इस दिन मुखिया लोग मंगल दिवस में सम्मिलित होने के अर्थ जनताके गृहों पर जाकर सूचना देते थे। इस दिन भी पलाश वृक्ष का रंग अधिक बनाया जाता है, एक दूसरे से मिलने पर परस्पर इस रंग को डालते हैं, इतने कार्य्यों के अतिरिक्त और कोई विशेष कार्य्य नहीं होता।

॥इति रंग की एकादशी ॥३५॥

अथ होलाका [होली] विचारः।

यह मंगल दिवस सम्प्रति फाल्गुणकी पूर्णिमा को मनाया जाता है शास्त्रों में इसके दो नाम पाये जाते हैं एक वसंतोत्सव और द्वितीय होलाका। वसन्तोत्सव नाम से यह विदित होता है कि यह वसन्त के आगमन काल में कर्त्तव्य है कारण यह है कि ब्राह्मण ग्रन्थों ने (मधुश्च माधवश्चवासन्तिकावृतू) चैत्र तथा वैशाख को वसन्त ऋतु में माना है अतएव चैत्र की पूर्णिमा को होना चाहिये। किन्हीं महानुभावों का मत है कि

मीन और मेष का सूर्य्य वसन्त ऋतु में ग्रहण करना चाहिये। कई एक का विचार है कि (वसन्तः कुम्भ मीनयोः) कुम्भ मीन वसन्त हैं इस मत भेद से ही इस मंगल दिवस का भी परिवर्त्तन हो गया है। होलाका नाम से यह विदित होता है कि इस उत्सव का यही काल निश्चित किया गया है। कारण इस का यह है कि (होलार्द्धपक्कमन्नमित्युच्यते) होला नाम है आधे पके अन्न का। आधे पके अन्न से जो कार्य्य किया जाय उसका नाम होलाका है। फाल्गुण मास में ही अर्द्धपक्क अन्न होता है। अतएव होलाका नामकरण इस दिवस का यही समय नियत करता है। इस प्रकार के मत भेदों से यह निश्चय होना कठिन है कि यह कृत्य फाल्गुण शुक्ला को कर्त्तव्य है वा चैत्र शुक्ला पूर्णिमा को।

इस विषय पर विवाद की आवश्यकता भी नही कारण यह खगोल चक्र नित्य परिवर्त्तन शील है इस प्रकार के भेद होते ही चले आते हैं विचार कार्य्य पर होना चाहिये यह हम पूर्व कह आये हैं पुरा आचार्य्यों के विचार दृष्टि रचना की भलाई के अर्थ होते थे उनका स्वार्थ इन कार्य्यों में नहीं पाया जाता जा कार्य्य बुद्धि के द्वारा होता है किसी के विपरीत नहीं होता कारण इसका यह है कि बुद्धि इङ्गित ज्ञानके आश्रय कार्य करने वाली होती है बुद्धि का फल ही इङ्गित ज्ञान है जैसा कि किसी कवि ने कहा है:—

उदीरितोर्थः परऽनापिबुध्यते हयाश्च नागश्च वहन्ति नांदिताः। अनुक्त मप्यूहतिपण्डितोजनः परेङ्गित ज्ञान फला हि बुद्धयः)"

कहने से पशु भी कार्य्य करते देखे जाते हैं कारण कि प्रेरे हुए अश्व हस्ती चलते हैं। विद्वान् बिनाकहे ही दूसरों के

मन को जान लेते हैं। कारण कि बुद्धि का फल ही इंगित ज्ञान है ऐसे उत्तम कार्य्य कि जिन की मूल में जनता के आत्मिक तथा शारीरिक और सामाजिक सुखों का वीर्य्य वपन हुआ है बिना इंगित ज्ञान रखने वाली बुद्धि युक्त व्यक्तियों के और कौन कर सकता था।

यह मंगल दिवस अपने काल और व्यवहारों के द्वारा स्वयं यह बता रहा है कि मैं अमुक २ कार्य्यों के सिद्धि के अर्थ रचा गया हूं। मेरा संचालक बड़े ज्ञान वाला था यदि मेरी आकृति न बिगाड़ी जाय तो मैं बड़े सुखों का दाता हूं अन्य सब मंगल दिवसों में प्रधान रूप से स्थित हूं। पाठक गण जो कुछ इस उत्सव के विषय में कहा वह इसके गुणों की अपेक्षा बहुत न्यून है, आगे जब इसके कार्य्यों का विचार होगा आप को यह स्वयं विदित हो जायगा कि उक्त प्रशंसा गुणों की अपेक्षा कितनी न्यून है। यह ऋतु वसन्त है कितने ही आचार्यों के मतसे यह समय संवत् सर की समाप्ति है।

(पुनः प्राप्तेवसन्तेतु पूर्णः संवत्सरो भवत्)

इस का अभिप्राय यह है कि वसन्त ऋतु के पुनर्वार आने से वर्ष पूर्ण मानना चाहिये। इस हेतु से इस मंगल दिवस का नाम वर्ष ग्रन्थि भी कहा जा सकता है। वसन्त ऋतु के समय बनस्पतियों की जो दशा होती है और ऐसी दशा में जिस गुण के आधान की उनमें आवश्यकता जानी गई है, जिस का फल जनता को वर्ष पर्य्यन्त प्राप्त होगा, उसका वर्णन चैत्र मास के नवरात्रों में हो चुका है वहां देखने की कृपा करें, उसका पुनः उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं। यहां उसके अतिरिक्त अन्यों के कहने की आवश्यकता है।

पाठकगण आप को स्मरण होगा कि हमारा कथन बार २ यही होता चला आता है कि इस रचना के भेद ऋषिगण को वेदोपदेश से प्राप्त हुए हैं, उसी के आधार पर ये सब व्यवहार चलाये गये हैं। यूं तो इस रचना के सभी काल उत्पत्ति और विनाश वाले हैं परन्तु कुछ काल ऐसे भी नियत हैं कि जिन में उत्पत्ति और विनाश विशेषता से होता है। शीत काल में उत्पत्ति की न्यूनता पाई जाती है और वसन्त में उत्पत्ति की विशेषता देखी जाती है। इस नियम के अनुसार यह काल जन्तुओं की उत्पत्ति का माना गया है। यह निश्चय पुरा आचार्य्यों का ही नहीं वर्त्तमान के आयुर्वेदज्ञाता भी इस विचार से सहमत हैं। पाश्चात्य वैद्यवरों की खोज यह है कि प्लेग रोग से जितने मृत्यु मार्च मास में हुए उतने और मासों के प्लेग रोग से विदित नहीं हुए, इस से ज्ञात होता है कि प्लेग रोग को वृद्धि देने वाले कीटाणु (जर्म्स) इसी मास में अधिक होते हैं। एक यह भी निश्चय पाश्चात्य वैद्यवरों का पाया जाता है कि रक्त ष्ठीवी (निमोनिया) रोग का प्राबल्य इसी काल में होता है, यह रोग भी प्राणहन्ता ही माना गया है। अपने यहां के वैद्यवरों का यह कथन है कि इस ऋतु में प्रतिश्यायादि रोग बाहुल्येन होते हैं। यद्यपि प्रतिश्याय एक सामान्य रोग माना जाता है किन्तु आयुर्वेद-विज्ञों के मत से प्रतिश्याय आकृति से छोटा होते हुए भी भयंकर है। कारण इस का यह है कि यह राजयक्ष्मा का मूल है। राजयक्ष्मा को पाठकगण ने सुना ही होगा कि यह मृत्यु की दंष्ट्रा कही गई है। आयुर्वेदविदों को चिकित्सा करने और रोगों की उत्पत्ति जानने की शिक्षा प्रभु की रचना विशेष से ही प्राप्त हुई है।

चिकित्सा और निदान तथा रोग की उत्पत्ति ज्ञान रचना में यत्र तत्र व्याप्त है। क्या यह हम से अप्रकट है कि परमात्मा की ओर से ऋतु २ में पृथक् वर्णों की तथा पृथक गुणों की औषधियां सदैव उत्पन्न होती हैं जिस ऋतु में जिस प्रकार की औषधियां उत्पन्न होती हैं उन के द्वारा यह जानना कि यह अमुक रोग वा दोष विशेष की शान्ति के अर्थ है ऋषिगण ने इसी प्रकार आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त करा है। इस ऋतु में वासा (अरूसा) विशेषतया विकसित होता है, यह भी पाठकगण को जानना योग्य है कि वासा (अरूसा) यक्ष्मा की एक नियत औषधि मानी गई है। इस वासे की विशेष उत्पत्ति यह भी निश्चय कराती है कि इस ऋतु में यक्ष्मा के कीटाणु (जर्म्स) अधिकतया उत्पन्न होते हैं, उन की शान्ति के अर्थ यह स्वयं ही इस ऋतु में बहुतायत से उत्पन्न होता है। पाश्चात्य विद्वानों का निश्चय है कि प्रत्येक रोग के कीटाणु होते हैं, वेद में इन कीटाणुओं का वर्णन कई सूक्तों द्वारा हुआ है वेद में यह भी बताया गया है कि

(उद्यन् आदित्यः क्रमीन् हान्ति निम्लोचन् हान्ति रशमिभीः। ये ऽन्तः क्रमयो गवि)

उदय होता हुआ सूर्य्य पृथिवी पर व्याप्त क्रमियों को नाश करता है और अस्त होता हुआ पृथिवी में प्रवेश हुओं को। जो कार्य्य सूर्य्य अपने प्रकाश से करता है वही कार्य्य अग्नि अपने तीव्र ताप से करता है।

यदि यहां यह प्रश्न हो कि जब सूर्य्य इस कार्य्य को नित्य करता ही है फिर इतने श्रम से इस काल में इस कार्य्य करने की क्या आवश्यकता प्राप्त हुई। उत्तर इसका यह है कि व्याधियों के कारण सामान्य और विशेष भेद से दो प्रकार के

पाये आते हैं। सूर्य्य सामान्यता से उत्पन्न व्याधियों का विनाश नित्य करता है परन्तु जब दोष विशेषता से उत्पन्न होने की सम्भावना होती है वा होजाती है तब विशेष क्रिया करने की आवश्यकता होती है क्या पाठक गण इस से अपरिचित हैं कि हमारे शरीरों में नित्य व्याधियां उत्पन्न होती हैं जिन को शान्ति नित्य ही सूर्य्य अग्नि जल वायु के द्वारा नित्य ही होती रहती है किन्तु सामान्य रूप से विशेष रूप में परिणत होने पर चिकित्सा द्वारा ही शान्ति होती है। इसी प्रकार इस समय रोगों की विशेषता हटाने के अर्थ इस क्रिया विशेष की आवश्यकता प्राप्त हुई। प्लेग के प्रकोप के समय पाश्चात्य विद्वानों ने भी यही निश्चय किया था कि प्लेगाक्रान्त गृहों में अग्नि जलाना अच्छा है, पुरा आचार्य्यों के विचारों के अनुकूल ही वर्त्तमान वैद्यवरों की सम्मति है। दो विद्वानों की सम्मति एक होने से यह ज्ञात होता है कि व्याधि विशेषों के मूल कीटाणुओं की उत्पत्ति के समय अग्नि से कार्य्य लेना लाभदायक है। इस विषय में सम्मति तो दोनों विद्वानों की एक पाई जाती है किन्तु कार्य्य क्रम में भेद पाया जाता है, इस का कारण दोनों महानुभावों के ज्ञान की न्यूनाधिकता है जिसका जितना विशेष ज्ञान होता है उस का किया कार्य्य उतना ही उत्तम और विशेष लाभ दायक होता है। पाश्चात्य विद्वानों को यह ज्ञान तो होगया कि रोगकारक कीटाणुओं के विनाश के अर्थ अग्नि की शरण लेना कृतकार्य्यता है, किन्तु यह ज्ञात नहीं हुआ कि समूल नष्ट करने का अमुक उपाय होना योग्य है। इन दोनों विद्वानों के कार्य्य क्रम में उतना ही भेद है जितना कि एक नेत्रों वाले और बिना नेत्रों वाले के कार्य्य में। नेत्र हीन पुरुष शिर टकराने पर आघात के पदार्थ

से हटता है किन्तु फिर भी दूसरी किसी वस्तु से टक्कर खाता है, दैवात् ही सर्वथा आघात से छुट्टी पाता है । नेत्रों वाला आघात से दूर से ही बचता है और नेत्रों के बल से सर्वथा ही सरल मार्गों में जाता है ।

पाश्चात्य विद्वानों को यह पता तब चला जबकि सहस्रों कुलों के दीपक शान्त हो सर्वदा को अन्धकार करगये, उपाय तो सूझा किन्तु रहा फिर भी अधूरा । पाठकगण सोचिये कि हमने एक गृह में कीटाणुओं के शान्त करने अर्थ अग्नि को जलाया परन्तु पार्श्ववर्त्तीय का गृह शान्त है इस तप्त गृह के कीटाणु उस ठण्डे गृह में चलेगये एक गृह से हटाकर दूसरे गृह में प्रवेश कर उसको भी रोगाक्रान्त कर दिया इस प्रकार सर्वथा अभाव न होकर रोग बनाही रहा । रोग शान्त न होने से उपाय भी निष्फल ही हुआ अब थोड़ा ध्यान ऋषियों के गम्भीर और सार्थक विचार पर भी देना योग्य है । ऋषिगण की पहिली दीर्घदर्शिता तो यही है कि बिना टक्कर खाये इङ्गित ज्ञान वाली बुद्धि के बलसे ज्ञात करलिया कि इस समय अमुक दोष के होने की सम्भावना है, इस समय प्राणहन्ता भयङ्कर रोगों के मूल का विनाश और जनता को प्राण संकटसे बचाना अपना परमकर्त्तव्यही नहीं अपने परमपिता परमात्माकी आज्ञा का पालनकर उसकी परम पवित्र दृष्टि में सदैवके लिये अपना निवास स्थान बनाना है जो अनेकों समाधियों तथा बहुत तप जपों से भी होना दुस्तर है ।

ऋषिगण का यह विचार कि परमात्मा की प्राप्ति के अर्थ जितना सुगम उपाय जनता की सेवा है उतना और नहीं इस विषय में योगीराज कृष्णचन्द्र की भी यही सम्मति पाईजाती है । यह एक किंवदन्ती है कि श्री कृष्णचन्द्रजी से जब कभी

अर्जुन मिलते तब कृष्णचन्द्र आदर पूर्वक यही कहते कि आओ भक्त अर्जुन और जब युधिष्ठिर जाते तब कहते कि आइये राज राजेश्वर। इस व्यवहार को देखते हुए युधिष्ठिर महाराज यही कहते थे कि इसमें क्या भेद है, कृष्णचन्द्र मेरे को कभी भी भक्त कहकर नहीं पुकारते चिरकाल के पश्चात् एक दिन युधिष्ठिर महाराज आखेट के अर्थ गये मार्ग में एक स्त्री प्रसव शूल पीड़ा से पीड़ित एक वृक्ष के नीचे पड़ी हाहाकार कर रही थी युधिष्ठिर महाराज उसके आर्त्तनाद को सुनकर और अश्व से उतर उसके समीप गये और देखा कि उस स्त्री के बालक का कुछ भाग ही बाहर निकला है शेष भाग किसी कारण से निकल नहीं सकता उसी पीड़ा से वह विकल थी युधिष्ठिर महाराज को देख वह प्रसूता बड़ी लज्जिता हुई युधिष्ठिर महाराज ने कहा देवी मैं राजा युधिष्ठिर हूं प्रजा मेरी पुत्र पुत्री है लज्जा मत करो यह सुन स्त्री ने अपना अंग राजा के सामने खोल दिया महाराज युधिष्ठिर ने उस स्त्री का बालक अपने हाथ से निकाल उसको प्राणदान दिया और जलादि से अपनी तथा उसकी शुद्धि कर आखेट को चलेगये। सायंकाल को स्थान पर आकर श्रीकृष्णचन्द्रजी से मिले आज श्रीकृष्णचन्द्रजी युधिष्ठिर महाराज के प्रति बोले कि आइये भक्त युधिष्ठिर! यह सुन युधिष्ठिर महाराज कहने लगे कि भगवन्' मैं इस आश्चर्य्य में था कि श्रीमहाराज अर्जुन को भक्त कहते और मुझे राजराजेश्वर इसका क्या कारण है। आज क्या कोई ऐसा गुण मुझमें पायागया जिस से मुझे भी भक्त कहागया यहसुन कर श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि राजन् आज का ही आपका कार्य्य भक्ति पद का अधिकारी है।

पाठकगण इस दृष्टान्त से आपको यह विदित हुआ होगा

कि वस्तुतः ऋषिगण का यही विचार उनको ऐसे उपकारी कार्यों की ओर प्रेरित करता था जब ऋषिगण ने यह निश्चय करलिया कि यह समय इस कार्य्य के अर्थ बहुत उपयोगी है तब फिर यह उपाय आरम्भ हुआ। पाठक वर्ग को यह जान लेना भी यहाँ अवश्य है कि इस उपाय के द्वारा ऋषिगण का क्या अभिप्रायः था ऋषिगण ने यह विचार कि पृथक् वा दिनों के अन्तर से कार्य्य में यही बाधा होगी कि एक स्थानसे दूसरे में और दूसरे से फिर उसी में वा किसी अन्य में प्रवेश हो समूल नष्ट न होंगे समूल नष्ट करने के अर्थ एकही काल में और समस्त देश में अग्नि जलाना अच्छा है। पाठकगण यह देखते होंगे कि होली घर २ और मौहल्ले २ बहुत काष्ठ के योग से लगाई जाती है और दाह के अर्थ सब स्थानों पर एकही समय होता है। समय भी होलिका दाह का रात्रि ही रक्खागया है। यदि यहाँ यह वक्तव्य होकि रात्रि का समय रखने में क्या कोई कारण विशेष है तब यह कहना होगा कि मलिन प्रकृति के जन्तुओं की वृद्धि का समय रात्रि का अँधकार ही माना गया है। जिस समय उन जन्तुओं की पूर्णवृद्धि का समय हो उनको समूल नष्ट करने का वही समय अच्छा माना जाता है। पाठकगण को यह भी विदित होकि अन्धकार की वृद्धि का समय भी अर्द्धरात्रि पर्य्यन्त ही माना गया है, प्रायः यही समय होलका दाहका भी होता है। अतएव यही समय होना भी चाहिये।

यदि यहाँ किन्हीं महानुभावों को यह शङ्का उत्पन्न होकि अबतक जो कुछ होलाका वा वसन्तोत्सव के विषय में कहा वह सब युक्ति युक्त है बुद्धि उसको अच्छी प्रकार ग्रहण करती है किन्तु यह बात बुद्धि में नहीं आती कि इसको अमावस्या

के दिन न रख पूर्णिमा में क्यों रक्खा गया, कारण कि जितना अँधकार अमावस्या को होता है उतना और तिथियों में नहीं पाया जाता। अतएव अपने अभिप्रायों का पूर्णतया पोषक उत्तम काल अमावस्या को रात्रि का ही रखना योग्य था। यह सन्देह किसी अँश में ठीक होता है किन्तु जिन महानुभावों के विचार इतने गम्भीर हों उनका विचार इस छोटे विषय पर पहुंचे आश्चर्य्य है। अवश्य इसमें भी कोई रहस्य होगा विचार करने से यह विदित होता है कि अमावस्या में अँधकार विशेष की रात्रि होने से इस प्रकार के जन्तुओं का बल विशेष होता है किन्तु जिस एक शक्ति की इस कार्य्य की पूर्णतया सफलता के लिए आवश्यकता है उसका अमावस्या की रात्रि में अभाव रहता है। ऋषिगण का विचार इस ओर घूमा कि जिन जन्तुओं का विनाश इस कृत्य के द्वारा अभिप्रेत है चाहे वे कितने ही सूक्ष्म हैं किन्तु फिर भी उनका समुदाय मलिनता का ही समूह है। अग्नि अपने उद्धर्व ज्वलन स्वभाव से उन्हें गगन मण्डल में व्याप्त देवगण की शुद्धि को किसी अँश में अशुद्ध करने वाली होगी। अतएव उस मलिन उष्ण को शान्त करने वाली चन्द्रमा की निर्मल अमृतमय चाँदनी की भी आवश्यकता है चाँदनी अमावस्या की रात्रि में प्राप्त नहीं होगी अतएव पूर्णिमाही अपने अभिप्राय की पोषकहै। इत्यादि विचारों ने ऋषिगण को यह काल नियत करने के अर्थ बाधित किया इस कृत्य के सब अवयवों पर विचार होकर अब इस के दाह समय के कृत्यों की विधि पर यह विचार हुआ कि किस प्रकार करना चाहिये जिस अभिप्राय को लक्ष्य में धर यह कार्य्य किया गया है उसके अतिरिक्त और कार्यों की सिद्धि भी इससे कर्त्तव्य है इस हेतु से इसमें नवान्न जो अर्द्धपक्वान्न होला कहागया उससे हवन करना भी योग्य जानागया।

पाठक गण देखते होंगे कि प्रायः होलिका दाह के समय मनुष्य ऊख के गन्ने में यव की बालों को बांधकर परिक्रमा करते जाते हैं और यवों को अग्नि में छोड़ते जाते हैं। हमने जहां तक इस पर विचार करके देखा यही पता चला कि यह कार्य्य बड़े गम्भीर विचार वाले पुरुषों ने बड़े उपकार के अर्थ इसको चलाया था किन्तु जनता के विचारों ने इस को इस रुप में परिणत कर दिया कि जिस से सज्जनों को इस से इतनी घृणा होगई कि उस का वर्णन करना भी कठिन है इस कृत्य की वर्त्तमान दशा का वर्णन करना घोर नरक के दुखों के समान दुखों से हृदय को दुःख देना है इस कृत्य के जो कार्य्य महीनों से आरम्भ होते थे उनसे यही पाया जाता है कि वे सब काष्ठ के संग्रह के अर्थ होते थे जो पुरुष इस कार्य्य में नियुक्त होते थे वे इतस्तत से याचना के द्वारा काष्ट संग्रह अपना कार्य्य समझते थे इस कार्य्य की समाप्ति से अगले दिन धुलहड़ी कहते हैं परस्पर आल्हाद के साथ एक दूसरोंके स्थान पर प्रेमालाप के अर्थ जाते हैं वे महापुरुष भी आये हुए सज्जनों का आदर सत्कार बड़े प्रेम भाव से करते थे इस प्रकार यह महाकृत्य समाप्त होता था इस पर सज्जन विचार करें कि यह कार्य्य कितने सारों के गर्भ वाला था इस रहस्य को न समझ अपने २ विचारों द्वारों कितनी असत्य गाथा घढ़ डाली एक महाशय ने अपने विचारों को प्रकट करते हुए कहा कि यह होली क्यों हुई इस का कारण यह है कि ढुंढा नाम की एक राक्षसी पुराकाल में होगई है वह बालकों को बहुत भय दिखाती थी आज के दिन बालकों ने उसे पकड़ कर उस की बहुत दुर्गति की और अनेक दुर्वाक्य कहे . सायंकाल में उसे भस्म करदिया वा उसे देश से निकाल

यह आनन्द मनाया यह षड्‌न्त्र बिना शिरपदों वाली पुराण में पाई जाती है पाठकगण को इस ग्रन्थ की लेख शैली से यह विदित हुआ होगा कि इस में किसी व्यक्ति विशेष पर पक्ष रूप से आक्रमण नहीं किया पुराणों की जिन गाथाओं में सार रूप अलंकार रूप से ऐसी गाथा पाई गई कि जनता जिन को अपने अज्ञान से केवल प्रलाप जान बैठी थी उन का प्रतिपादन किया है किन्तु यह हमें इष्ट नहीं कि जो वस्तुतः निराधार हो उसका भी येन केन प्रतिपादन ही कर के अपने को कलंकित करें इतना अंश तो इस गाथा वाले का समझ में आता है कि एक यातुधानी को भस्म किया कारण कि यह एक पीड़ा देने वाली राक्षसी अवश्य थी जिसको हम ने इस काल में उत्पन्न होने वाले कीटाणु कहा है पुराकाल की बोल चाल में इस को पीड़ा देने वाली यातु धानी शब्द से ग्रहण किया है। ऐसा सम्भव है यातुधान शब्द नाम राक्षस का ही कोशों में आया है शब्द तो ठीक है परन्तु प्रयोग कर्त्ता की बुद्धि का टोटा है यातु नाम पीड़ा का है और धान धारण के अर्थ में है जो पीड़ा को अपने में रखने वाला हो वह यातु धान है चाहे वह चेतन हो वा अचेतन वेद में यातुधान शब्द बहुत स्थलों में आया है वहां श्री सायण महाशय ने व्यक्ति विशेष के ही अर्थ किये हैं उन्हीं की छाया इस गाथा के कर्त्ता महाशय ने ग्रहण की है।

इन महानुभाव ने पीड़ा देने वाली मानकर स्त्री लिंग बना लिया और राक्षसी नामकरण कर डाला आगे गाथा बिना शिर पदों वाली रचदी इनकी गाथा तर्कों के समक्ष में कपूर हो जाती है यदि कोई इनसे पूछे कि वह राक्षसी उसीकाल में हुई थी वा प्रति वर्ष होती है यदि उसी काल में होकर नष्ट

करदी गई तब फिर प्रति वर्ष लक्षों के व्यय से इस कार्य्य के करने की क्या आवश्यकता हुई फिर यह सन्देह होता है यदि यह यातुधानी पीड़ाप्रद थी तब इसके दाह के समय परिक्रमा क्यों ? परिक्रमा तो किसी इष्ट की होती है और नवान्न यहां डालने का क्या अभिप्राय है किञ्चित यहभी ध्यान देना योग्यहै कि परिक्रमा करते और यव छोड़ते बोल, होलाका, मइया, की जय, यह शब्द क्यों बोला जाता है क्या दुष्ट के प्रति भी इतने प्रेम का शब्द कहा जा सकता है।

फिर यह सोचना भी योग्य है कि यदि उस दुष्टा को अश्लील शब्दों से उस समय लज्जित किया गया तब तो ठकी है कारण कि वह इसी योग्य जानी गई होगी किन्तु वर्त्तमान में जो अपनी तथा अन्यों की माता बहिनों तथा स्त्रियों के प्रति अश्लील शब्द क्यों कहे जाते हैं क्या ये भी उसी यातुधानी की स्थानापन्न हैं। इत्यादि कारणों से यह गाथा जनता में अच्छे भावों को उत्पन्न न कर बुरे भावों को उत्पन्न करने वाली होने से हेय है। किन्हीं महाशयों का कथन है कि यह हिरण्यकशिपु के समय से चला है सुना जाता है कि कृत युग में कोई हिरण्यकशिपु व्यक्ति विशेष हुआ है यह नास्तिक था उसका विचार था कि ईश्वर कोई नहीं है उसके पुत्र प्रल्हाद का विचार उसके विपरीत था हिरण्यकशिपु ने आज के दिन प्रल्हाद को भस्म करने के अर्थ बहुत सा काष्ट एकत्रित कर प्रल्हाद को भस्म किया है। इस गाथा का भी शिर पद न होने से हेय है। यदि यह दुष्टता नास्तिक हिरण्यकशिपुने आस्तिक प्रल्हाद भक्त के प्रति की तो अच्छा किया वा बुरा यदि कहो कि बुरा तब फिर जनता बुरा कार्य्य क्यों करती है। और जो कहो कि अच्छा किया तब अपने को आस्तिक

मानना वृथा है। इत्यादि कारणों से यह विचार भी जनता की मूढ़ता ही कही जा सकती है इन गाथाओं ने इस कार्य्य के तत्वस्वरूप को जनता के हृदय से निकाल महाअनर्थ किया था इन विचारों की तरंगोंमें पड़ी हुई जनता महापाप कर रही है। जैसे व्यवहार जनता वर्त्तमान में करती देखी जाती है ऐसे व्यवहार एक लज्जावान् से इस जन्म में असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हैं सज्जनों का उपदेश है कि पापियों के पाप कर्म्म का वर्णन करके हर्ष मत मनाओ शोक करो कारण यह है कि उसने तो पाप करके अपने को पापी बनाया और इस कहनेवाले ने वृथाही अपने को पापी बनाया इसलिये इस महा परोपकारी कर्म्म के स्वरूप को भूल कर वर्त्तमान जनता जो कुछ व्यवहार करती है उसका वर्णन करते हुए भी लज्जा आती है। उसका फल भी भारत की जनता भोग ही रही है। मनु महाराज का कथन है कि जिस देश वा जाति तथा समाज में (अपूज्या यत्रपूज्यन्ते पूज्या यान्ति ह्यपूज्यतम् त्रीणि तत्र भविष्यन्ति दारिद्र मरणं भयम्) आदर योग्यों का अनादर और अनादर योग्यों का आदर होता है वहां दरिद्र मरण और भय ये तीन बहुतायत से उत्पन्न होते हैं। सम्प्रति भारत की जनता में उक्त तीनों का बाहुल्य है। इन तीनों दुःखों का मुख भारत की जनता में उक्त तीनों को इसी घोर पापने दिखाया है कि जनता पूज्यों का निरादर करती है यह मंगल कार्य्य जिस आदर के योग्य था सम्प्रति उससे उलटा भर भेट इसका अनादर होता है।

जहां यह कार्य्य परम पवित्रतासे होना योग्य था वहां इस को विष्टा मूत्र के संपर्क से मलिन बनाना जनता ने अपना धर्म मान रक्खा है। जिस यज्ञ में परस्पर एक दूसरे का आदर से

प्रेमालाप कर्त्तव्य था वहाँ एक दूसरे का अनादर भरभेट करके महाकष्ट देना धर्म्म कहा जाता है। जिस पवित्र यज्ञ के अर्थ प्रकट रूप से पदार्थों की याचना अभिष्ट थी वहाँ आज स्वामी के पदार्थ को मारपीट करके छीनना परम धर्म्म है। अश्लील शब्दों के विषय में कहते अधिक लज्जा आती है। उसका चित्र सज्जन स्वयं ही आकर्षित करलें। सज्जनो सुख अभिलाषा करना तभी शोभा देगी जब शुभ कार्यों का आरम्भ करोगे किसी कवि का वचन है बबूल वपन करके आम्र फलकी इच्छा करने वाला नितान्त मूढ़ माना गया है। पवित्र कार्य्य को पवित्र बनाओ परस्पर प्रेम करो मंगल के समय सब कार्य्य मंगलरूप होने योग्य हैं इस समय में उज्वल मुख को श्याम करके कलङ्कित मत करो पुष्पों की माला वाले गले के स्थान में पुराने सड़े हुए जूते मत डालो प्रभु ने तुम्हें पद दिये हैं अपने पदोंसे चलो खराकूढ़ मत हो यह प्रतिष्ठा भङ्ग का कारण है। उत्तम २ उपदेशों वाले भजन गाओ माता भगिनियों के सामने अश्लील शब्द मत कहो। सज्जनो क्या तुम ने यह नहीं सुना कि माता बहिनों के साथ मैथुन करना पिशाचता है इस प्रकार अश्लील भाषण भी विद्वानों ने मैथुन ही माना है इन्द्रिय से इन्द्रिय का स्पर्शमात्रही की न्यूनता है मन वाणी से तो स्पर्श हो ही गया। तुम्हारे पुराचार्यों ने भी

स्मरणं कीर्त्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणं संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेवच। एतन्मैथुन मष्टाङ्गम् प्रवदन्ति मनीषिणः॥

ये आठ मैथुन (स्त्री संग) ही माने हैं। स्त्री का स्मरण कहना अर्थात् स्वरूप का वर्णन, हँसी करना, देखना, एकान्त

में भाषण करना, संकल्प, (अन्य स्त्री का प्राप्ति की इच्छा करना) उत्साह प्रकट करना और क्रिया करना, इन्हीं आठों मैथुनों के अन्तरगत यह अश्लील भाषण भी मैथुन ही है शिखा धारियों यज्ञोपवीत धारियों तुम्हारे अज्ञान ने तुम्हें यवनों से भी नीचे फेंक दिया भगिनियों के साथ विवाह करने वाले यवनों को तुम कौन से मुँह से बुरा कह सकते हो यदि भगिनि के सहवास से तुम यवनों को नीचा कहो तो उन्होंने पाशविक वृत्ति का आनन्द उठा करही पाप भोगने का प्रयत्न किया। किञ्चित् अपनी ओर भी तो निहारना योग्य है निरर्थक ही यम यातना के भागी बने धर्म शास्त्रों को उठा कर देखो वा श्रवण करो अगम्यागमन पापहै। इन पाशविक व्यापारोंसे अन्य जातियाँ तुमको अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखती हैं। प्यारे मित्रो मैंने यह जो कुछ कहनेकी धृष्टता करीहै वह आपके द्वेषसे नहीं की भलाई में मेरा मन है। आप जिस दिन इन कर्म्मों से घृणा करेंगे उसी दिन भारत की ध्वजा का मुख गगनमण्डल की ओर लहराता दृष्टिगोचर होगा। सदाचार ही देश को उन्नत करता है सदाचारी बन देश को उठाकर पुण्य के भागी बनो।

॥ इति वसन्तोत्सव ॥३६॥

अथ परिशिष्टम्।

पाठकगण को विदित हो कि इस ग्रन्थ में मङ्गलदिवसों का आरम्भ चैत्र शुक्ला से हुआ है और समाप्ति फाल्गुण शुक्ला पौर्णिमा पर कीगई है। इस परिशिष्ट भाग का आरम्भ और समाप्ति भी इसी प्रकार करने का विचार है यदि यहाँ किन्हीं महाशय को यह वक्तव्य होकि जब वर्ष के आदिसे अन्त पर्यन्त सभी मङ्गल दिवस पूर्ण होगये तब फिर इस परिशिष्ट भाग में और क्या विषय होगा। इसके उत्तर में केवल इतना ही कहा

आसकता है कि अबतक जिन मङ्गल दिवसों का वर्णन हुआ है वे सब स्त्री पुरुषों के साझे के मङ्गल दिवस थे। इस परिशिष्ट भाग में उन मङ्गल दिवसों का वर्णन होगा जिनका सम्बन्ध केवल स्त्रियों तथा बाल बालिकाओं से है। जिन महापुरुषों ने पुरुषों तथा स्त्रियों के अर्थ श्रम किया है उन्हीं हितैषी सज्जनों बाल बालिकाओं पर अपनी कृपा कटाक्ष का पात्र किया है। अतएव उनपरही इस परिशिष्ट भाग में विचार होगा।

अथ शीतला विचारः।

यह कृत्य चैत्र कृष्णा सप्तमी वा अष्टमी में होता है। इसका दूसरा नाम बसौड़ा भी पड़गया है इस में शीतला का पूजन होता है इस कृत्य का सम्बन्ध केवल कुमार कुमारियों से ही कहा जाता है कृत्य का काल और नाम तथा क्रिया देखने से तो विदित होता है कि यह कार्य्य बहुत उपयोगी था किन्तु अज्ञता के समावेश ने इसको इतना भ्रष्ट कर दिया कि जिससे सज्जन इसे नितान्त मूढ़ताका कार्य्य समझ घृणा करने लगे। इसके विषय में महिलागणका यह विचार उत्पन्न होगया है कि शीतला कोई स्त्री विशेष है जो गुप्त रूप से बाल बालिकाओं का हनन करती है। इस प्रकार पूजन से उसे प्रसन्न करना चाहिये जिससे कि वह हमारे बाल बालिकाओं को हानि न पहुंचाये। यदि महिला मण्डल का यह विचार सत्य मान लिया तब यह सन्देह शेष रहता है कि फिर इसकी प्रसन्नता तुम्हारे लिये फलीभूत क्यों नहीं होती। क्या उन स्त्रियों के बाल बालिका इस रोग से मुक्त रहते हैं जो आये वर्ष शीतला का पूजन करती हैं। ऐसा नहीं देखा जाता शीतला को पूजने और न पूजने वाली सभी के बाल बालिका इस रोग से आक्रान्त होते हैं।

इसलिये महिलागण का यह विचार कि यह कोई व्यक्ति विशेष है नितान्त मूढ़ता है। महिला गण का इस विषय में यह विचार बाल बालिकाओं को हानिकर तो है किन्तु लाभदायक नहीं। शीलता कोई व्यक्ति विशेष नहीं एक रोग विशेष है। जिस का सम्बन्ध माता के रज से है पिताके वीर्य्य का दोष न होने और केवल माता के ही दोष से एक रोग का नाम माता भी पड़गया है। आधुनिक वैद्यों ने इस रोग का ग्रहण विस्फाटक और मसूरिका राग में किया है। किन्तु न यह विस्फोटक है और न मसूरिका कारण इस का यह है कि विस्फाटक और मसूरिका रोगों की उत्पत्ति का कारण कुपथ्य बताया गया है। इस रोग का सम्बन्ध उन बालकों से भी देखा जाताहै जो कुपथ्य नहीं करते कभी २ तो इस रोग का आक्रमण गर्भस्थ बालकों पर भी होता देखागया है। यदि कुपथ्य इसका कारण होता तो बड़े पुरुषों को भी किसी न किसी कालमें अवश्य होता किन्तु ऐसा नहीं देखा जाता अतएव इस रोग का सम्बन्ध केवल बाल बालिकाओं से ही है इसलिये यह रोग माता के रज दोष से प्रत्येक बालक को होता है प्रति सैकड़ा एक बालक भी ऐसा नहीं देखा जाता जिसको यह रोग न होताहो यह दूसरी बात है कि किसी को न्यूनता वा किसी को अधिकता से हो यह माता के रज दोष की न्यूनाधिकता का भेद है। जिस स्त्री का रज अधिक उष्मा वाला और गाढ़ा होताहै उनके बालकों को यह रोग तीव्रतासे होता है ज्यों २ रक्त शुद्ध और हलका होता जाता है त्यों त्यों इस रोग में भी लघुता होती है। इत्यादि कारणों से यही विदित होता है कि यह रोग माता के रज से ही होता है। शीतला न कोई स्त्री है और न कोई किसी काल विशेष में होने

वाला रोग है । सर्वदा ही सब बाल बालिकाओं को होता रहता है । जिस इंगित ज्ञान वाली बुद्धि से पूर्वजों ने जनता की रक्षा के अर्थ अन्य कार्य्यों पर प्रकाश डाला है उन्हीं महा पुरुषों ने इस रोग पर भी ध्यान देकर यह उपाय बताये थे कि जिससे बाल बालिका इस दुष्ट रोग का आखेट न हों । किन्तु जनता की अज्ञता ने उन उपदेशों का उलंघन कर सहस्त्रों नहीं असंख्यों अपने आत्मजों को इस रोग का भक्ष्य करा स्वयं निर्वंशता प्राप्त की । पाठक गण आपको शास्त्रों के देखने से विदित होगा कि पुरा आचार्य्यों ने भविष्य ज्ञान के द्वारा इस बात पर पूरा प्रकाश डाल यह निश्चय करलिया था कि यदि यह उपाय न किया जायगा तब अपनी सन्तानों को अमुक भावी रोग के मुख में झोंक पछताना पड़ैगा । अतएव इस दुःखों से बचाने के अर्थ जनता को इस की विधि न बताना अपने को महा पाप में डालना अच्छा नहीं अतएव भविष्य के ज्ञाता ऋषिगण उपाय बतागये हैं । मनु धर्म्म शास्त्र के इस बचन का

(त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्य्यृतु मतीसती उर्ध्वन्तु कालादेतस्माद्विंदेत सदृशं पतिम्)

यही तो अभिप्राय है कि स्त्री रजोधर्म्म होने से तीन वर्ष पर्य्यन्त सन्तानोत्पत्ति की इच्छा न करै धर्म्म शास्त्र का अभिप्राय स्त्रियों को इस धर्म्मधारा द्वारा दण्ड देना अभिष्ट नहीं था यह आशय था कि रजका जितना दोष निकल जायगा उतनी सुन्दर निरोग और दीर्घजीवि सन्तान होगी पाठकगण को यह भी विदित हो कि सन्तान उत्पन्न करने वालों के अर्थ यह भी उपदेश है कि रजोदर्शन की चार रात्रियों को छोड़ कर अगली रात्रियों में भी उत्तरोत्तर का ग्रहण है उनमें से भी सबसे पिछली रात्रि ग्रहण करनी चाहिये इस का अभि-

प्राय भी यही है कि एक मास का पुरातन रज उष्मा विशेष वाला और सान्द्र होता है। वह जितना हलका होगा उतना ही अच्छा है स्त्रियां स्वयं भी इस बात को देख सकती हैं कि वस्तुतः यह बात कितनी गहरी और उपयोगी है क्या महिला-गण को कभी कुसुंभ की रैनी चढ़ाने का अवसर न मिला होगा यदि मिला होगा तो वे देख सकती हैं कि पहिला रंग जबतक कि उस की गाद् अच्छी प्रकार नहीं बैठ जाती कितना श्याम और गाढ़ा रंग होता है। उसमें रंगा हुआ वसन उत्तम रंग वाला नहीं होता ज्यों २ वह रंग हलका होता जाता है उस का रंगा हुआ वसन कितना उत्तम और डहडहे रंग वाला होताहै। यही दशा मासिक धर्म्म के रज की होती है ऋषि गण ने इस का भविष्य चित्र पूर्व ही अपनी इंगित ज्ञान वाली बुद्धि से आकर्षित कर यह उपाय बताये थे किन्तु जनता ने अजितेन्द्रियता से इन उपदेशों का पालन न कर इस रोग रूपी अग्नि में अपने बाल बालिकाओं को स्वयं ही झोका। यह निश्चय रूपसे कहाजा सकता है कि यदि जनता ऋषिगण के बताये मार्ग का अवलम्बन कर उसी नियमानुकूल व्यव-हार करे तब फिर यह रोग शान्त होना सम्भव है। किन्तु ऐसा होना सम्प्रति तो असम्भव ही प्रतीत होता है। जनता की अनियमता से जब यह रोग उत्पन्न होगया तब उस काल के आयुर्वेदविदों ने इसकी शान्ति के उपाय सोचे सुना जाता है कि पहिले भी इस रोग की शान्ति के अर्थ पर्वतीय लोग टीका लगाते थे और वर्त्तमान में भी टीकाही से अधिक सफ-लता प्राप्त की जाती है पुराने वैद्यों का कथन है कि वह चिकि-त्सा उत्तम कही जाती है जो रोग को सर्वथा के लिये शान्त करके रोगान्तर रोग को उत्पन्न न करे जिस चिकित्सा से

एक रोग शान्त हो कर दूसरे रोगों की उत्पत्ति होजाय वह चिकित्सा निन्दनीय है वर्त्तमान टीका लगाने की विधि गौ के स्तनों से निकली है ऐसा सुना जाता है जबतक यह चिकित्सा गौ के स्तनों से निकले योग द्वारा होती रही तबतक तो कुशल रही किन्तु जिसकाल से इस योग में अदीर्घदर्शी चिकित्सकों की बुद्धि का समावेश हुआ उसी काल से इस टीका की क्रिया ने एक गुप्त भयंकर रूप धारण कर भारत बाल बालिकाओं की अनेक प्राणहन्ता रोगों का आखेट बना दिया पाठकगण को विदित होगा कि पुराकाल और वर्त्तमान काल के मध्यकाल में टीका लगाने का योग (लिम्फ,) बालकों के टीकाही से लिया जाता था इस अदीर्घदर्शिता ने यह गुप्त अवगुण प्राप्त किया कि एक जाति के नियत भयंकर रोग दूसरी जातियों में पहुंचा दिये जिसने शीतला रोग से भी अधिक गृहों के दीपक सर्वदा को शान्त करदिये अब सुना जाता है कि वर्त्तमान पाश्चात्य चिकित्सकों की बुद्धि में यह विचार घूमा कि वस्तुतः यह टीका का योग (लिम्फ) हानिकर है अतएव न लिया जाय।

सुबह का भूला सायंकाल को यदि गृह पर आजाय वह भूला नहीं कहा जाता किन्तु यह बात भी पाठकगण को स्मरण रखनी योग्य है कि जो कुछ विकृति पिछले अदीर्घदर्शियों की कृपाकटाक्ष से प्राप्त हो चुकी है वह एक शताब्दी पर्य्यन्त किसी न किसी अंश में व्याप्त रही होगी। यह अद्भुत गुण ऋषियों की बुद्धियों में पाया जाता है कि कार्य्य की भावी विकृति का अनुमान कारण के दर्शन मात्र ही से कर लेते थे कारण ज्ञान से ही उनके किये कार्य्य ऐसे होते थे कि उनमें सुख के सिवाय जनता को दुःख भोगने का अवसर प्राप्त ही नहीं

होता था चैत्र मास में शीतला रोग की पूजन विधि भी उन्हीं दीर्घदर्शी ऋषियों की आज्ञा विशेष है पाठकगण को यह विदित हो कि ऋषिगण की रोग निश्चय की शैली विचित्र ही प्रकार की देखी जाती है ऋषिगण प्रथम तो दोषों के संचय तथा प्रकोप और शमन काल का यह विचार करते कि कौन काल दोष के संचय प्रकोप और शमन होने का है। फिर यह देखते थे कि यह दोष किस स्थान पर पहुंच कर किस रोग को उत्पन्न करता है। इस प्रकार रोग की उत्पत्ति का ज्ञान कर फिर यह देखते थे कि यह दोष किस स्थान के द्वारा सुगमतासे निकलना चाहिये तदनन्तर उसका वही योग निश्चित करते थे। पाठक गण को यह भली भांति प्रकट है कि शीतला रोगकी उत्पत्ति का स्थान शरीर की त्वचा है। प्रायः इस रोग का स्वाभाविक निकास त्वचा के ही द्वारा होता है इस की उष्मा को त्वचा के द्वारा ही निकालना इसकी उत्तम चिकित्सा मानी गई है वर्त्तमान कालमें टीका भी त्वचा पर ही लगाया जाता है। यह हम पूर्व कह आये हैं कि रोग की वृद्धि पर तो चिकित्सा विशेष का आश्रय लेना ही पड़ता है किन्तु साधारण रोगों की शान्ति में वा रोग की उत्पत्ति की संभावना में साधारण चिकित्सा ही कर्त्तव्य है ऐसा विचार उन व्यक्तियों का है जो आयुर्वेद की उच्च कक्षा के वैद्य माने गये हैं। यह क्रिया जो इससमय बालबालिकाओं की माताओं को बताईगई है उसकी शान्ति के अर्थ है जो व्याधि वीजरूप से शरीर में व्याप्त रहती है। यह ऋतु उसके प्रकोप का काल भी माना गया है। पाठकगण आप को यह विदित है कि इस काल में प्रायः रक्त तथा श्लेष्मा के ही रोग विशेषता से होते हैं। श्लेष्मा से उत्पन्न होने वाले यक्ष्मा के गर्भ उत्पादक प्रतिश्यायादि

और रक्त संबंधी व्रणादि रोग इसी समय होते हैं पाठकगण को यह भी स्मरण होगा कि जिस रक्तग्रीवी (निमोनिया) का पूर्व वर्णन हुआ है पाश्चात्य वैद्य जिसको असाध्य ही कहते हैं वह भी एक श्लेष्मा के विकार वाला रोग इसी काल में विशेषता से होता है।

यह भी सभी जानते हैं कि प्रायः रक्त संबंधी व्रणादि रोगों की उत्पत्ति त्वचा के ही द्वारा होती देखी जाती है। और उसकी साधारणता में शान्ति के उपाय भी प्रलेप तथा उवटनादि होते हैं। इत्यादि अनेक कारणोंसे यही निश्चयहुआ कि यदि बाल बालिकाओं के बीज रूप दोष का इस समय प्रकोप रोका जाय तब कुछ काल के लिये सुख होना सम्भव है इन विचारों से यही काल इस कृत्य का अच्छा जाना गया। पाठक गण को यह भी विदित हो कि वस्तुतः इस कृत्य में होता क्या है। इस कृत्य के पूजन की सामग्री स्वयं यह बता रही है कि मैं अमुक कार्य्य के अर्थ नियत हुई थी। जनता की अज्ञता से मेरा प्रयोग उलटा होने लगा। इस स्थान पर यह जान लेना भी योग्य है कि जिस योग के द्वारा शीतला का पूजन होता है वह योग कैसा विचित्र है इस पूजन की सामग्री कार्पास्थि (खिनौला) हलदी और मसूर की दाल है भला यह तो विचारिये कि यह योग क्या भक्षण के योग्य होना सम्भव है। योग के तीनों द्रव्य मर्दन के अर्थ ही आयुर्वेद में आते हैं। यदि खाने के अर्थ भी मानलें तब यह कहना होगा कि किसी रोग के अर्थ हैं। आहार किसी दशा में भी नहीं कहा जायगा। आयुर्वेद में उक्त तीनों द्रव्य मर्दन तथा प्रलेपादि कार्य्यों में बहुधा आते हैं और जिन रोगों में ये योग आते हैं फल भी पूरा करते हैं। चिकित्सा शास्त्र में एक रोग कहा गया है जिसका नाम लूत

रोग है (लोक में मकड़ी फलना) मसूर की दाल को दुग्ध में पीस कर उसको लगाना बताया गया है इस योग से लूत रोग शीघ्र शान्त होता है। इसी प्रकार एक रोग होता है जिसका नाम क्षीप रोग है। केले के पत्र की भस्म के साथ हलदी को नीबू के जल में लगाने से क्षीप रोग नष्ट होजाता है। जिन दोनों रोगों का वर्णन पिछली पंक्तियों में हुआ है वे दोनों रोग त्वचा में ही उत्पन्न होते हैं।

त्वचा के द्वारा ही उनकी चिकित्सा भी होती है। इससे भली प्रकार यह निश्चय होता है कि जिस विज्ञ ने महिला गण को शीतला की शान्ति के अर्थ यह योग बताया था उसका तात्पर्य्य यह होगा कि यदि यह योग दुग्ध में घोट कर लगाया जायगा तो त्वचा के द्वारा शीतला के दोष का विनाशक होगा। योग का जानने वा बताने वाला चिकित्सा शास्त्र का विज्ञ था ऐसा प्रतीत होता है। मसूर की दाल दुग्ध के साथ घुटी हुई त्वचा के दोषों की अत्युत्तम औषधि है। इसके प्रयोग त्वचा के रोगों में ही विशेषतया आते हैं। स्त्रियों के मुख धोने के विषय में एक योग है। उसमें भी केवल मसूर की दाल ही का योग है। जो स्त्रियां मसूर की दाल को दुग्ध में घोटकर अपना मुख नित्य धोयें उनका मुख सदैव चन्द्रमा सरीखा उज्वल स्निग्ध और मृदु बनारहे और न उनके मुखपर पिडिकादि होती हैं। मसूर की दाल त्वचा के सुन्दर बनाने और त्वचा के रोगों शान्ति करने में अच्छी मानी गई हैं।

फिर इसके साथ हरिद्रा और बिनौलों का योग सोने में सुहागा होजाता है। पाठकगण बाल बालिकाओं की त्वचा से शीतला रोग को विध्वंस करने वाला यह योग जो सर्वसाधारण को थोड़े व्यय से प्राप्त जिस बुद्धि से आविष्कृत हुआ है

वह बालबालिकाओं का कितना हितैषी था माताओं को अपने बालबालिकाओंके हितैषी सराहना उठतेबैठते सोते जागते सदा ही कर्त्तव्य है। और साथ ही में अपने उल्टे कार्य्य और निर्बुद्धिता को अष्टप्रहर धृकार दो, महिलागणों तुमने कार्य्य को उलटा समझा परमहितैषी चिकित्सक ने तुम्हारे बाल बालिकाओं को प्राण संकटसे बचाने का प्रयत्नकिया था तुमने उसका प्रयोग उलटा करके अपने आत्मजों को अपने हाथ से हलाहल विष पिलाया ऐसी माताओं को यदि डायन कहा जाय तब भी अनुचित न होगा यह डायन पद भी तुम पर अच्छा नहीं घटता कारण कि लोक की यह कहावत इसकी बाधक है कि माता में यदि डायनता प्राप्त होजाय तब भी वह अपने बाल बालिकाओं को नहीं खाती तुमने अपने अज्ञान से स्वयं अपने बालबालिकाओं को मृत्यु के मुखमें झोका अतएव डायन पद का समावेश तुम्हारे कर्त्तव्य में ठीक नहीं बैठता। तुम्हें तो सरपिणी कहना ठीक बनता है सरपिणी ही अपने बच्चों को प्रेम में खाजानी है। तुमने द्वेष से नहीं अज्ञता के प्रेम से ऐसा करा। महिलाओं अब भी सोचो कार्य को सीधी रीति से करो तुम्हारी सन्तानों का कल्याण होगा तुम्हारा मातृपन सफल होकर वन्श वृद्धि होगी शीतला का पूजन करो यदि तुम्हारे पति देव पाश्चात्य प्रवाह में बहते हुए तुम्हें निषेध भी करें तब भी इस कृत्य को मत छोड़ो और उन्हें समझादो कि पतिदेव आप जिस रीति नीति का अनुकरण करके हमें निषेध करते हो उस रीति नीति के मानने वाले डाकृरों को बहुत कुछ मानते हैं। यह कृत्य भी डाकृरों द्वारा बताया गया है अतएव कर्त्तव्य ही होगा। महिलाओं इस कृत्य की अवहेलना तुमने अपने हाथों कराई है यदि तुम इस कृत्य

को उसी रीति से करतीं जो इसके संचालक ने बताई थी तो तुम्हारे पतिदेव तो इसका निषेध क्या करेंगे पाश्चात्य चिकित्सक भी तुम्हारा यश गान करने लगेंगे। जिस दिन इस कृत्य को करना समझो उस दिन इस योग को रात्रि के समय ई इतने दुग्ध में भिगोदो जिससे कि यह योग फूल जाय फिर प्रातःकाल स्नानादि की शुद्धि भले प्रकार करके इस योग को बहुत सूक्ष्म करो शिल बट्टे वा कूँडी सोटे से ऐसा घोटो कि जिससे दरदरा न रहे बालकों की नम्र त्वचा पर आघात न करे। दुग्ध भी इसमें इतना डाला कि बहुत पतला न हो जाय इस योग से बाल बालिकाओं के शरीरों पर मर्दन करो मर्दन भी सावधानी से हल्के हाथ से करो तत्पश्चात् उन्हें कुछ उष्ण जल से स्नान करा उत्तम वस्त्र आभूषण पहिनाओ इस प्रकार करने से बाल बालिकाओं के त्वग्गत रोग शान्त होकर सुखी रहेंगे यह मत समझो कि त्वचा के मर्दन से क्या फल होगा प्रथम तो शीतला रोग का स्थान ही त्वचा है त्वचा द्वारा अनेक रोगों की शान्ति होती है। त्वचा को केवल शरीर का ढकना मान लेना अज्ञता है त्वचा का कारण है मांस और मांस का कारण है रुधिर त्वचा के रोगों को उपेक्षा करना मांसग तथा रुधिरगत रोगों को उत्पन्न करना है। कुष्ट रोग की भूमि त्वचा ही मानी गई है अतएव त्वचा की शुद्धि बड़े २ रोगों से रक्षा करती है। यह मत वर्त्तमान के वैद्यों का नहीं पुराकाल के आयुर्वेद आचार्य्यों का है यह कृत्य कुल दीपकों के प्रज्वलित करने के अर्थ है। पुरा आचार्य्यों के कार्य्यों की अवहेलना करना अज्ञता है महिलाओं क्या तुमने यह नही सुना कि जिस शीतला को तुम पूजती हो उसका वाहन गधा बताया गया है ऐसा प्रतीत होता है कि

तुमने इस वाहन से ही शीतला को स्त्री समझा प्रतीत होता है इसमें केवल तुम्हारी ही अज्ञता नहीं इस अज्ञता ने तो बड़े २ विद्याभिमानियों को भ्रान्ति के भ्रमर में डाला और अब तक डाल रही है। जब तक यह ज्ञान न होगा कि ऋषिगण की कथन शैली का क्या प्रकार है तब तक इस भ्रान्ति के भ्रमर से निकलना कठिन ही नहीं असम्भव प्रतीत होता है। ऋषिगण अलंकार रूप से कथन करने की शैली वाले दृष्टिगोचर होते हैं। यहां भी एक अलंकार ही जाना जाता है वह यह है कि गधा के शब्द की तीव्रता शीतला के कीटाणुओं को अपने में समावेश करने वाली मानी गई है। गर्धव की वाणी पर असवार होकर शीतला के कीटाणु उसके साथ साथ चले जाते हैं अतएव गधा शीतला का वाहन माना गया पाठकगण कभी आपने शब्द के विषय में भी विचार किया है व नहीं यदि किया है तब यह तो बताइये कि शब्द की आवश्यकता क्या है यदि कहो कि शब्द का प्रयोजन केवल मन के भाव प्रकट करना है। तब यह प्रश्न होता है कि मन के भाव प्रकट करने की आवश्यकता केवल मनुष्य को है अन्यों को नहीं पशु पक्षियों के शब्द से उनके क्या मनोभाव विदित होते हैं प्यारे थोड़ी देर को यह भी मानलें कि शब्दों से मनोभाव जाना जाता है तब फिर शब्दों में भिन्नता क्यों पाई जाती है किसी का तीव्र किसी का मृदु उनमें भी किसी का अतितीव्र और किसी का अतिमृदु होता है इत्यादि कारणों से यह नहीं कहा जाता कि शब्द केवल मनोभाव जताने के ही अर्थ है यदि शब्द मनोभाव जताने के ही अर्थ है तब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि फिर ऋतु २ के प्रति ही क्यों उत्पन्न होता है कोकिल वसन्त ही में अपने मनोभाव क्यों प्रकट करती है क्या और ऋतुओं में

कोकिल के मनोभाव उत्पन्न नहीं होते। इत्यादि अनेक तर्क वितर्क शब्द के विषय में यही साक्षी देती है कि मनुष्य के शब्दों के अतिरिक्त अन्यों के शब्द किसी अन्य ही कार्य्य के अर्थ हैं इस शब्द विषय पर विचार करने से यह विदित होता है यह भावों के प्रकट करने के अतिरिक्त किसी अन्य बड़े कार्य के अर्थ हैं।

प्रथम तो शब्दोच्चारण की विधि का वर्णन वेद ही बतारहा है यदि केवल वाणी से निकला शब्द कार्य्य साधक होता तब फिर शब्दों के साथ उदात्त अनुदात्तादि भेदों की क्या आवश्यकता थी इससे सिद्ध होता है कि शब्दोच्चारण में भी कुछ न कुछ रहस्य अवश्य है। पशु पक्षियों के सुहावने और भयावने शब्द भी किसी हेतु विशेष के गर्भ वाले अवश्य हैं शब्दों के द्वारा मनुष्यों के जीवन की वृद्धि और ह्रास का सम्बन्ध है आयुर्वेदविदों का मत है कि हर्षप्रद शब्द वा अन्य द्रव्य जीवन वृद्धि को करता है तद्विपरीत शब्द वा द्रव्य आयु का नाशक है हर्ष से मन प्रफुल्लित होता है मन की प्रफुल्लितता रक्त की वर्द्धक और स्वच्छता का कारण है। शोक! मन को संकुचित करने वाला होने से आयु का नाश करने वाला मानागया है मीठा शब्द हर्ष प्रद है अतएव आयु को हित है भयानक शब्द मनमें भय और कंपको उत्पन्न करके आयु को अहित होता है तीव्र स्वरों से भी अनेक अभिप्राय हैं तीव्र स्वर से वा शब्दों से छोटे २ जन्तुओं का विनाश होता है मेघ का गर्जन केवल मनुष्यों के डराने के ही अर्थ नहीं वर्षाऋतु में उत्पन्न होने वाले अनेक अदृश्य रोगों के कीटाणुओं का हनन करने वाला विदित होता है भाद्रपद महीने में मेघ की गर्जनसे मक्खी मच्छरों का विनाश होते देखा जाता है यह प्रत्यक्षही

है कि जिस मेघ की गर्जन मनुष्यों के कर्णों को असह्य हो हृदय को कँपा देती हैं उस तीव्र हृदय विदारक गर्जन का शब्द छोटे जन्तुओं के हृदय किस प्रकार सहन करसकतेहैं। पूर्वजों ने शब्द की महिमा और उसके अतुल प्रभाव को जानकर ही बड़े २ शब्द वाले वाद्य निर्माण किये हैं जन समूह में जबकि प्रश्वासों के द्वारा मलिन जन्तुओं की उत्पत्ति का भय रहता है तब बड़े २ उच्च स्वर के वाद्य, ढोल, तुरही, शंख, घड़ियाल, झन्ने आदि बजाये जाते हैं।

पाठकगण आप यह देखते होंगे कि जब कभी नगर तथा ग्रामों में महामारी आदि रोगों का आक्रमण होता है तब नगर वा ग्राम के मनुष्य तीव्र स्वरों वाले वाद्य बजाते हैं ऐसाभी देखा जाता है कि महामारी के समय में शतचँडी करने की प्रथा है।। इस शतचंडी में एक बृहत् हवन होता है और जिस दिन इसकी समाप्ति का दिन मानाजाता है उसदिन एक महिष को चित्रित करके नगर की परिक्रमा देते हैं।

इस परिक्रमा में बहुत जनता साथ होती है। इस समूह के साथ बड़े तीव्र शब्द वाले वाद्य रहते हैं। मद्य की धार छोड़ते हुए नगर की परिक्रमा समाप्त होती है। सम्प्रति यह व्यवहार बड़ी घृणा की दृष्टि से देखा जाता है इस व्यापार में संमिलित होनेवाले पशु कहे जाते हैं परन्तु यह प्रथा जबकभी जिसने भी चलाई है उसका अभिप्राय किसी गम्भीर आशय को लिये हुए था इस स्थान पर हमें यह अभिप्रेत नहीं कि इस प्रकार के कार्य्य जनता करने को उद्यत होजाय अपना अभिप्राय कार्यों के स्वरूप को दिखाकर उनके ऊपर अपना विचार प्रकट करना है। मानना न मानना वा उनमें उटंकना करना जनता के अधिकार में है रचना के अन्तरगत जो व्यव-

हार दृष्टिगोचर होते हैं उन सब में कुछ न कुछ जनता का हित अवश्य पाया जाता है। जनता अपने अज्ञान से उसे समझे वा न समझे ऋतु में होनेवाले कार्य्य जो मनुष्योंका ओर से नहीं होते उन में केवल सृष्टिकर्त्ता काही हाथ होता है। मानव मण्डल के हितार्थ ही पाये जाते हैं। पाठकगण यह प्रत्येक ऋतु में देखते होंगे कि गधे इसी ऋतु में आनन्द को प्राप्त होते हैं। इसी ऋतु में आनन्दित होने से गर्धव का नाम वैशाखानन्द भी पड़गया है। इस समय गर्धव बड़े उच्चस्वर से यत्र तत्र चीत्कार मारते फिरते हैं।

यदि यहाँ यह वक्तव्य होकि यह इस समय आनन्दसे चीत्-कार करता है तब यह कहना होगा कि क्या अन्य पशु इस कर्म से रहित हैं वे क्यों नहीं इस प्रकार शब्द करते अतएव यह विदित होता है कि इसी ऋतु में गधे को यह मद प्राप्त होना और अन्य पशुओं के शब्द से कई गुणा उच्चस्वर इस को देना किसी कारण विशेष का बोधक है। इस स्वर के द्वारा शीतला रोग के वृद्धिकारक दोष की शान्ति होती है। ऐसा विदित होता है जिस व्यक्ति विशेषने शब्दकी उच्चता के कारण को अच्छी प्रकार जाना है उसी व्यक्ति ने गर्धव के तीव्र स्वर का भी कारण जाना उसके विचार की आधार शिला शब्दकी विवेचना ही कही जासकती हैं। इस विषयपर विचार पहुंचनेसेयहभी निश्चय हुआ कि अन्य जातियोंकी अपेक्षा जिन जातियों में गर्धव पाले जाते हैं उनके बालकों पर शीतला का आक्रमण बहुत न्यूनता से होता है अन्य सज्जन भी इसका निश्चय करें। गर्धव को शीतला का वाहन बताना इसी कारण से प्रचलित हुआ है। जनता ने इस गुप्त भेदको नहीं जाना इसी कारण से यह कहावत चली आती है कि :—

यादृशी शीतलादेवी तादृशो वाहनं खरः।

जैसे मलिन दोषवाली शीतला है वैसाही मलिन स्वभाव वाला गर्धव है यह भी विदित हुआ है कि बालकों के सूखे के रोग में गधी का दुग्ध बहुत गुणकारी मानागयाहै वृद्धा स्त्रियों के मुख से यह भी सुना गया है कि यदि जन्मकालमें बालक को गर्भवी का दुग्ध पिला दियाजाय तो फिर माता रोग होने का भय नहीं रहता इत्यादि कारणों से गधे और गधी शीतला रोग में गुणकारी मानेगये हैं गर्धव और गर्धवी इस हेतु से शीतला का वाहन नहीं बताये गये कि तुम उनका पूजन करनेलगजाओ जिस जन्तु वा द्रव में परमात्मा ने जो गुण वा दोष दिया है वह गुण वा दोष पूजने वा न पूजने पर हठ नहीं सकता सर्प वृश्चिक विष वाले जन्तु हैं पूजन करो अथवा न पूजन करो उन का विष दूर होना नहीं इसी प्रकार गुणकारी जन्तुओं को जानो गर्धव में यह गुण पाया जाना कि वह शीतला रोग की एक औषधि है सन्देह नहीं हो सकता पालतु पशु बहुत से ऐसे हैं कि जो जनता के अत्यन्त हितकारी हैं प्रजा के दुग्ध तथा श्वास प्रश्वास से यक्ष्मा का नाश होता है गौ की सेवा से तथा उसके सह नित्य सहवास से एवं श्वास की गंध से प्रमेह नष्ट होता है फिर गर्धव में यदि यह अपूर्व गुण हो तो क्या आश्चर्य्य है। इस प्रकार के जन्तु परमात्मा की परम कृपा से मानव मण्डल के हितार्थ रचे गये हैं उन का पूजन इतने मात्र जानो कि उन के कर्त्ता का सदैव धन्य-वाद दो ऋषि कथन के अभिप्राय को जानो मूर्खता से कार्य्य लेना छोड़ो यथार्थ रीति से कार्य्य करके स्वयं सुख प्राप्त करो और अन्यों को सुख पहुंचाओ इस कृत्य का बसौड़ा नाम पड़ने का कारण यह प्रतीत होता है कि इस कृत्य में बाल बालि-

कार्यों का कार्य्य विशेष होना है जो विधि इस कृत्य की पूर्व कही जा चुकी है वह कुछ काल की अपेक्षा वाली अवश्य है कार्य्य का काल प्रातःकाल ही रक्खागया है बालकों की प्रकृति क्षुधा से उठते ही भोजन मांगने की होती है इत्यादि कारणों से यही अच्छा जाना गया कि भोजन रात्रि को ही बना रखना योग्य है। जिससे कि बाल बालिका भूखे न रहैं किन्हीं २ के यहां तुरंत ही बनना है इसका कारण यह है कि जिनके गृहों में कार्य्य कर्त्ता अधिक हुए उन्होंने यह विचारा कि कुछ स्त्रियां इस कृत्य को करलेंगी शेष भोजन बनालेंगी। इससे उनके यहां तुरंत ही बनने की प्रथा होगई दूसरा कारण इस बसौड़े नाम का यह भी जाना जाता है कि प्रायः द्विजातियों में रात्रि का पक्वान्न ही बनने की प्रथा है इस दिन से यह परीक्षा होजाती है कि रात्रि का पक्वान्न दुर्गन्धयुक्त तो नहीं होता यदि पक्वान्न उष्मा के कारण बिगड़ने वाला जाना जाता है तो इसकाल से फिर रात्रिका बना प्रातःकाल के अर्थ रखना छोड़ देते हैं कार्य्य के व्यवहारों से यही विदित होता है अन्य महा पुरुष भी विचार करके देखें।

॥इति शीतला अष्टमी ॥ ३७ ॥

अथ निर्जला एकादशी।

यह मंगल दिवस ज्येष्ठ शुक्ला एकादशी को मनाया जाता है इसपर विचार करनेकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती कारण इसका यह है कि इसमें कोई कृत्य विशेष न होकर केवल व्रत और ब्राह्मणों के अर्थ एक विचित्र दान किया जाता है। सामग्री उस दान की यह होती है कि एक बीजना और कुछ मिष्टान्न इसी के साथ में एक जल का छोटासा घट और इस

ऋतु के कुछ फल दक्षिणा में एक पैसा इसके अतिरिक्त और कोई विशेषता दृष्टिगोचर नहीं होती। यह हम पूर्व कह आये हैं कि पुरा काल के सद् गृहस्थो ब्राह्मणों की आवश्यकताओं का पूर्ण ध्यान रखते थे ऋतु २ की वस्तुओं को उनके स्थान पर पहुंचाना अपना धर्म्म जानते थे वा यूं कहो कि प्रत्येक ऋतु के उपभाग पदार्थों का उपभोग प्रथम ब्राह्मणों को करा पीछे आप भोगते थे। उस समय क ब्राह्मण भी जनता के हित-चिन्तक होते थे थोड़े से अपना निर्वाह करना अच्छा जानते थे सदैव विद्या पठन करना उनका कार्य्य था यही कारण प्रत्येक वर्ण का उनके साथ प्रेम करने का प्रतीत होताहै अपने हितु से सभी कोई प्रेम करते हैं। सदाचार सबकी प्रसन्नता का कारण है। पाठकगण को स्मरण रहे कि हमने और मंगल दिवसों की भांति एकादशी पर कुछ नहीं कहा केवल उन्हीं का वर्णन किया है जिन में कुछ कार्य्य विशेष होना पाया गया है प्रत्येक पक्षमें एकादशी का व्रत प्रत्येक कोही करने को आज्ञा पाई जाती है किन्तु इस पर अपना विचार पुष्टरूप से नहोने से कुछ नहीं कहा द्वितीय यह बात भी है कि प्रत्येक मास में दो वार आने से एक सामान्य सी बात होगई है इस लिये भी इसकी खोजमें विशेष ध्यान नहीं दिया यह दिन मगल दिवसों के साथ सम्बन्ध भी नहीं रखता जहां मंगल दिवसों के रूप में इसे पाया है वहां कहभी दिया है।

॥ इति निर्जला एकादशी ॥ ३८ ॥

अथ काजरी तृतीया।

ज्येष्ठ से आगे आषाढ़ तथा आधे श्रावण पर्य्यन्त कोई ऐसा मंगल दिवस नहीं होता जिसका वर्णन करने की आवश्यकता

हो। श्रावण शुक्ला तृतीया को जिस को लोक भाषा में तीजो इस नाम से कहते हैं यह मंगल दिवस होता है। यद्यपि यह मंगल दिवस श्रावण शुक्ला तृतीया को समाप्त हो जाता है किन्तु कार्य्य आरम्भ पन्द्रह बीस दिन पूर्व से होजाते हैं वैश्य जाति में माहेश्वरी जाति की स्त्रियां इस मंगल दिवस को उक्त तिथि में न मना कर भाद्रपद मास की तृतीया को मनाती हैं इस तृतीया का नाम भी वृद्धा तृतीया (बूढ़ी तीजो) ऐसा कहती हैं। चाहे श्रावण में हो वा कोई भाद्रपद में मनाये व्यवहार दोनों के समान ही होते हैं। इस मंगल दिवस में कोई कृत्य विशेष नहीं होता जिस दिन यह मंगलदिवस समाप्त होता है उस दिन स्त्रियां खान पान के अर्थ उत्तम २ भोजन बनाती हैं उस बने हुए भोजन में से कुछ भाग अन्न का प्रथम निकाल कर किसी वृद्ध स्त्री वा पुरुष को देती हैं इस भाग का नाम स्त्रियों की भाषा में वायना है इस वायने शब्द का यह पता अभी नहीं चला कि यह संस्कृत के किस शब्द का अपभ्रन्श है केवल एक कोश से इतना पता चलता है यह वायन शब्द है और अर्थ इसका यह है कि त्योहारी मिठाई आदि जो इष्ट मित्रों के गृह पर भेजी जाती है। इसके अनन्तर भोजनादि से निपट मध्यान्ह के पश्चात् झूला झूलती हैं यह दिन झूले की समाप्ति का है इसलिये आज स्त्रियों के समूह के समूह एकत्रित हो झूला झूलती हैं एक समूह दूसरों के गृह पर जाता है दूसरे समूह की स्त्रियाँ अपने यहां आई हुइयों तथा अन्यों के गृह पर जाती हैं आज के दिन स्त्रिया का मेल परस्पर अधिकता से होता है। इस प्रकार के व्यवहारों से यह विदित होता है कि यह स्त्रियों का वार्षिक उत्सव है जिस झूला झूलने का हमने वर्णन किया है वह यद्यपि आज के दिन समाप्त होता है

परन्तु पूव जो यह वर्णन होचुका है कि प्रारम्भ इस कृत्य का पन्द्रह बीस दिवस पूर्व से होजाता है उक्त दिनों में और कोई विशेष कृत्य न होकर केवल भूला ही भूला जाता है। इस भूला भूलने के समय स्त्रियां गान भी करती हैं किन्तु उसगान का बहुत सा भाग वियोगी शब्दों से पूर्ण पायाजाता है देखनेसे तो यह विदित होता है कि इस मंगल दिवस का सम्बन्ध सौभाग्य-वती स्त्रियों से है विधवा इस मंगल दिवस में भाग नहीं लेतीं जब यह सिद्ध होता है कि इसका संबन्ध सौभाग्यवती स्त्रियों से ही विशेष पाया जाता है, तब फिर इसमें विरह के गान का समावेश किस कारण से होता है। सौभाग्यवती स्त्रियों के गान में तो हर्ष प्रद मंगल गान का समावेश होना योग्य था। इस वियोग संबन्धी गान से यह विदित होता है कि यद्यपि यह मंगल दिवस सौभाग्यवती स्त्रियों का है किन्तु है उन सौभाग्यवतियों का जिनका पतियों से वियोग रहता है जिन के पतिदेव तो विद्यमान परन्तु स्त्रियों के निकट उनका निवास नहीं रहता ऐसे पुरुष दो ही प्रकार के होने सम्भव हैं एक तो वे जो व्यापार सम्बन्धी कार्य्यों में सदाही देशान्तरों में रहते हैं चिरकाल पर्य्यन्त भी जिनका अपने गृहों पर आना नहीं होता, द्वितीय वे होसकते हैं जो सेनाओं की वृत्ति से अपना निर्वाह करते हैं सम्भव है कि यह मंगल दिवस पति-यों की क्षेम कुशल मनाने के अर्थ उन स्त्रियों ने मनाना आ-रम्भ किया हो। इस विषय की अधिक छान बीन करने से कुछ विशेष लाभ भी प्रतीत नहीं होता चाहे किसी प्रकार से इस मंगल दिवस की उत्पत्ति हुई हो हमें तो इसके विषय में केवल इतना कहकर कि कार्य उपयोगी है अवश्य करना योग्य है आगे महिलागण के प्रति कुछ कहना है। निवेदन महिला

गण के प्रति यह है कि देवियों तुम्हारा यह कार्य्य मङ्गलकार्य है तुमको अपने सब व्यवहारों के द्वारा इसे मङ्गल रूप ही करना चाहिये। इस मङ्गल कार्य्य में विरह का गान हानिकर है। और न शोभा ही देता है। यह पूर्व कह आये हैं कि शोक युक्त वृत्तियां आयु का ह्रास करती हैं। केवल अपनी आयु का ह्रास मत समझो तुम्हारी शोक युक्त वृत्तियां सन्तानों की आयु का भी ह्रास करने वाली होंगी आयुर्वेदविदों का कथन है कि पिता की अपेक्षा माता की चाल ढाल तथा स्वभाव का प्रभाव बालक पर अधिक होता है। पिता केवल वीर्य्यदाता है वह वीर्य्य नवमास पर्य्यन्त तुम्हारे खान पान द्वारा पालित होता है। अतएव बालक के शरीर में तुम्हारे गुण अधिक पाये जाते हैं। देश की शोभा हृष्टपुष्ट और सदाचारी स्त्री पुरुषों से होती है वह हृष्ट पुष्टता और सदाचार तुम्हारे द्वारा ही प्राप्त होता है। महिलागण सोचो जिस समय तुम अमङ्गल उत्पन्न करने वाला गान गाती हो उस समय तुम्हारे झुंड में सभी प्रकार की स्त्रियों का समावेश होता है। ऐसी स्त्रियां भी उस समूह में अवश्य होंगी जो उस समय रजोधर्म से युक्त हों ऐसी होनी भी सम्भव हैं जिन का उसी रात्रि वा एक दो दिन पीछे गर्भधारण का समय हो ऐसी महिलाओं का होना भी सम्भव है कि जिनको मास वा दो मास का गर्भ हो। यदि तुम्हारे शोक मय गान का प्रभाव उक्त युवतियों पर पड़ गया तब सन्तति क्यों न माता की वृत्तियों के प्रभाव वाली होगी। गर्भ पर माता का प्रभाव बहुत पड़ता है यह पूर्व कहा गया है। यह बात बहुत सूक्ष्म है अतएव तुम्हारी बुद्धि में न आई होगी तुमने इस कथन को बहकाना समझा होगा। अब हम तुम्हारी समझ में आने वाले दो उदाहरण ऐसे देते हैं। जिससे तुम भली प्रकार समझ

जाओगी ध्यान देकर श्रवण करो इन उदाहरणों से माता का गर्भस्थ बालक से कितना घनिष्ट सम्बन्ध सिद्ध होता है। एक विज्ञ का कथन है कि मैंने एक बार एक स्त्री के बालक को पेट के बल इस प्रकार चलते देखा कि जिस प्रकार सर्प्प लहर मारकर चलता है। यह देख मुझे आश्चर्य्य हुआ मैंने अपने आश्चर्य्य की निवृत्ति के अर्थ बालक की माता से बालक की आश्चर्य्य मय चाल के कारण पूछने का साहस किया। मेरे इस प्रश्न करने पर कि तुम्हारा बालक अन्य बालकों की भांति न चलकर इस प्रकार क्यों चलता है स्त्री ने उत्तर दिया न जाने क्यों चलता है। इसका कारण मुझे विदित नहीं यह श्रवण कर विज्ञ ने पुनः प्रश्न किया कि क्या यही तुम्हारा पुत्र पहिलोटा पुत्र है वा और भी इसके पूर्व हुए हैं? स्त्री ने उत्तर दिया कि इससे पूर्व दो और होचुके हैं और जीवित हैं। विज्ञ ने फिर पूछा कि क्या बाल्यावस्था में वे भी इसी प्रकार चलते थे स्त्री ने कहा जी नहीं वे तो और बालकों की नाईं घुटनों से चलते रहे। यह सुन विज्ञ ने कहा कि फिर यह बालक तुम्हारा इसप्रकार चलने वाला क्योंकर हुआ। इस बालक की गर्भ दशा में तुमने कभी किसी जन्तु को इस प्रकार चलते देखा था? यह सुन स्त्री चकित होकर बोली क्या आप कोई ज्योतिषी हैं। विज्ञ ने कहा न मैं ज्योतिषी हूं न सयाना और न इस प्रकार की बात ज्योतिष बता सकता है। मैं तो केवल तुमसे यह निश्चय करा चाहता हूं कि बालक की चाल का क्या कारण है इसके उत्तर में स्त्री ने कहा कि हम लोगों का रहना विशेषता से अपने खत्रों पर ही होता है पिछले वर्ष जब मैं रजोदर्शन धर्म में थी एक बड़ा भयंकर सर्प मेरे समीप से होकर गया था उससे मेरे को इतना भय प्राप्त हुआ कि मैं अचेत होगई और बहुत काल में चेत हुआ उस सर्प की चाल

का ऐसा ध्यान बंधा कि दिन में दो चार बार उसका ध्यान आता और रात्रि को स्वप्न तो उसका बहुत काल पर्य्यन्त होता रहा। यह सुन विज्ञ ने पूछा कि यह बालक तुम्हारा इसी गर्भ का है स्त्री ने कहा जी हां ! एक दूसरे विज्ञ का कथन है कि एक स्त्री को एक वा दो मास का गर्भ था इसी समय एक यह घटना हुई कि उस स्त्री के पहिले बालक के जिसकी अवस्था दो अढाई साल की थी दैवात् उसके पैर पर गंडासा गिर गया गंडा के आघात से बालक के पैर की अंगुलिया कटगईं। यह देख वह स्त्री मूर्छित होगई अपने बालक की भी सुध न रही बालक को तो उसके पिताने ज्यों त्यों करके सावधान कर ही लिया किन्तु स्त्री को अभी चेत नहीं हुआ बहुत उपाय करने पर स्त्री को भी सावधानता प्राप्त होगई। बालक के पैर का क्षत भी पूर्ण होगया जब इस स्त्री का दूसरा बालक उत्पन्न हुआ तो उसके उसी पैर पर जिस पर कि पहिले बालक के पैर पर गंडासा गिरा था गंडासे के लगने कैसे चिन्ह थे इन दोनों उदाहरणों से आपकी बुद्धियों में यह बात अच्छी प्रकार आगई होगी कि गर्भस्थ बालक पर माता के शारीरिक वा मनोभावों का कितना प्रभाव पड़ता है। यह हम नहीं कहते कि इस प्रकार के मङ्गल दिवस मत मनाओ अवश्य मनाओ किन्तु उनमें होने वाले बुरे व्यवहारों को निकाल दो इस प्रकार के वियोगी गान हानिकर हैं उनके स्थान में हर्षप्रद गान गाओ जिनमें भक्तिरस वा वीररस का समावेश हो देश मनुष्यों की उत्तम वृत्तियों के द्वारा उन्नत होता है मनुष्यों की वे उत्तम वृत्तियां तुम पर निर्भर हैं अतएव साव-धानी से कार्य्य करो तुम्हारा और तुम्हारी सन्तानों का कल्याण होगा।

॥ इति काजरी तृतीया ३६ ॥

अथ वहुला चतुर्थी ।

यह मंगल दिवस भाद्रपद कृष्णा चतुर्थी को होता है इस में और कोई विशेष कृत्य नहीं होता केवल व्रत का ही महात्म है इस चतुर्थी का व्रत भी सभी स्त्रियाँ नही करतीं वृद्धा स्त्रियाँ इस व्रत को विशेषता से करती हैं इसकी एक गाथा भी है गाथा महाभारत में गौ के मिस से कही गई है । आशय गाथा का अच्छा विदित होता है गाथा अलङ्कार रूपसे कही गई है जिस में एक ओर सन्तान का मोह और दूसरी ओर सत्य का पालन करना बतलायागया है । और कोई विशेषता नहीं पाई जाती व्रतों के विषय में पूर्व कहआये जिनको जैसा इष्ट हो करैं न यह मंगल दिवस इतना प्रसिद्ध भी नहीं है जो कि किसी जाति विशेष में वाहुल्येन होता हो । जो इसको मंगल दिवस मानना चाहैं उनको इसकी उपयोगिता अनुपयोगिता स्वयं देखलेनी योग्य है ।

॥ इति बहुला चतुर्थी ॥ ४० ॥

अथ चन्दन षष्ठी ।

भाद्रपद कृष्णा षष्ठी को चंदन षष्ठी नाम का एक मंगल दिवस होता है इस मङ्गल दिवस की प्रथा केवल ब्राह्मण तथा वैश्यों में ही पाई जाती है इस प्रकार के व्रतों का वर्णन पुराणों में ही विशेषतया पाया जाता है जिन गाथाओं के द्वारा इनका वर्णन हुआ है वे गाथा भी किसी गम्भीर आशय वाली नहीं हैं जिनपर कुछ विचार किया जाय न इसके पूजन विधान ही से कुछ पता चलै इस षष्ठी को पाँच सात ही वर्ष की अवस्था से बालिकाओं को व्रत रखाया जाता है यह व्रत पाँच वा सात वर्ष की अवस्था से आरम्भ होकर विवाह पर्य्यन्त होता है

इस व्रत में चन्द्र दर्शन करके भोजन होता है यह ज्ञात नहीं होता कि साढ़े पाँच प्रहर का इतना लम्बा व्रत बालिकाओं से किस लाभ विशेष के अर्थ कराना आरम्भ हुआ था।

पाठकगण को यह स्मरण होगा कि जहाँतक अपना विचार पहुंचा है वहाँतक उस विषय पर विचार करके उन घृणित कृत्यों का भी सार भरा अंश खोजा जिनको वर्त्तमान के सज्जन अच्छा नहीं कहते किन्तु जहाँ कुछ सार हो ही नहीं वहाँ हठ पूर्वक कहना अपने को इष्ट नहीं निरर्थक पक्ष मूढ़ता है इस विषयको लिखने की इच्छा भी नहीं थी यह समझकर कि आगे आने वालों को पुरा प्रथा का कुछ पता ही चलेगा संभव है कि कभी कोई सज्जन इसका लाभ खोजे सम्प्रति तो कुछ विदित होता नहीं बहुत से कार्य्य ऐसे भी हैं जो विद्वानों ने किसी कारण विशेष से काल विशेष में चलाये हों यह समय उनके व्यवहार का नहीं रहा आगे फिर वही काल आजाय इस हेतु से इसे मङ्गल दिवस की श्रेणी से निकाला नहीं न करना वा करना अपने आधीन है ॥ ४१ ॥

॥ इति चन्दन षष्ठी ॥ ४१ ॥

वृद्ध बाबा की द्वितीया।

भाद्रपद शुक्ला को द्वितीया के दिन ब्रह्मा का पूजन होता है ऐसा कहते हैं। इसका भी कोई विशेष वृत्त विदित नहीं होता किन्हीं २ स्थानों पर इस तिथि को मेला है। जिसका फल व्यापार की वृद्धि कही जासकती है। ब्रह्मा के पूजन की वह सामग्री जो गृहों पर होती केवल पूप (पूड़े) मात्रही होते हैं परन्तु जहाँ मेला होता है वहाँ के चढ़ावे की सामग्री दाद फूल शूकर का कर्ण आदि हैं दाद फूल सीसा धातु के होते हैं इस

सामग्री में दाद् फूल के देखने से यह विदित होता है कि ये निमित्त मात्र हैं मुख्य शूकर का कर्ण है दाद् फूल के विषय में यह कहाजाता है कि शरीर में श्वेत कुष्ट की उत्पत्ति ब्रह्मा के कोप से होती है इन दाद् फूलों के चढ़ावे से ब्रह्मा प्रसन्न होता है अतएव श्वेत कुष्ट उत्पन्न नहीं करता इस कथन से मूढ़ता तो प्रतीत होती है सार कुछ भी हस्तगत नहीं होता शूकर का कर्ण केवल इतना विदित करता है कि यह ढोंग यवन समय में रचागया है यवन शूकर से चिढ़ते हैं उनके चिढ़ाने के अर्थ किन्हीं महाशय ने यह ढोंग रचा होगा एक बात यह भी देखी जाती है कि इस मठ के पुजारी ब्राह्मण नहीं पाये जाते प्रायः क्षत्रिय जाति के अभिमानी जाट गूजर आदि पाये जाते हैं इस के विषय में कोई पौराणिक गाथा भी नहीं देखी वा सुनीजाती इसके कर्त्तव्याकर्त्तव्य का अधिकार भी वर्त्तमान के सज्जनों की सम्मति पर ही निर्भर है ॥ ४२ ॥

॥ इति बूढ़ा बाबा की द्वितीया ॥ ४२ ॥

अथ हरि तालिका तृतीय ।

भाद्रपद् शुक्ला तृतीया को इस नाम का एक मंगल दिवस होता है इस का सम्बन्ध भी केवल स्त्री वर्ग से ही पाया जाता है। इसके विषय में यह कहा जाता है कि इस व्रत को करने वाली व्यक्ति बिधवा नहीं होती वह व्रत पार्वती जो राजा हिमाञ्चल की कन्या बताई जाती हैं उनको प्रसन्न करने के अर्थ है। इस का यह प्रभाव जिसने बताया है वह यदि एक मन मूर्ख था तब इसको सत्य मानने वाली स्त्रियाँ सवामन मूर्ख कही जानी चाहियें। कारण इसका यह है कि क्या स्त्रीगण ने यह मान रक्खा है कि जो इस जन्म में स्त्री है

यह सदैव स्त्री ही होती चली जायगी योनियाँ कर्म्म से प्राप्त होती हैं जिसका जैसा कर्म्म होगा वैसी योनि में वह भेजा जायगा इसलिये यह विचार नितान्त मूढ़ता का है हाँ इस व्रत का नाम हरितालिका है उसके अर्थ यह हैं कि आज के दिन किसी कारण विशेष से पार्वती जी अपनी सखियों के द्वारा कहीं गुप्त करदीं हैं एक राजकन्या का लुप्त होजाना शोक का कारण कहाजासकता है राजा हिमाञ्चल और उनकी राज्ञी का आज शोक रहाहै ऐसा सम्भव है कि आज शोकातुर राजा और प्रजा ने उपवास किया हो वर्त्तमानमें यह प्रथा देखीजाती है परम मान्य व्यक्तियों के सङ्कट के दिन उपवास करते हैं। फिर उनकी प्रथा प्रत्येक तिथि को पड़गई हो किन्तु जो अभिप्राय इस व्रत का बतायागया है उसको बुद्धि स्वीकार नहीं करती इस व्रत में सधवा हो वा विधवा सभीका अधिकार बताया जाता है। व्रत विधान के देखने से भी कोई बात ऐसी नहीं पाई जाती जिस पर कुछ कहने की आवश्यकता हैं। दिन में व्रत रक्खाजाता है सायङ्कालको मृत्तिका की शिवपार्वती की मूर्त्ति बनाकर पूजन होता है गाथा भी श्रवण होती है रात्रिको भजनादिगान के साथ जागरण होता है प्रातः उन मूर्त्तियों को जल में डाल देने के पश्चात् भोजन होता है। इतने कृत्यों के अतिरिक्त और कोई विशेष बात नहीं होती वर्षाऋतु होने से यदि केवल उपवास रूप से किया जाय तो बुरा नहीं किन्तु जिस विश्वास के द्वारा सम्प्रति होता है वह मूर्खता है।

॥ इति हरितालिका ॥ ४२ ॥

अथ सूर्य्य षष्ठी।

यह भी एक व्रत ही है इसका सम्बन्ध बालिकाओं से ही पाया जाता है दोनों व्रतों का फल भी समानहीहै केवल भोजन

में इतना भेद है कि चन्दन षष्ठी में चन्द्रदर्शन के पश्चात् घृत खोला जाता है और इसमें दिनही दिनमें भोजन होजाता है और कोई विशेषता नही पाई जाती।

॥ इति सूर्य्य षष्ठी ॥ ४४ ॥

अथ दूर्वाअष्टमी।

दूर्वा अष्टमी इस नाम का एक मंगल दिवस भाद्रपद शुक्ला अष्टमी को होता है इस दिवस का सम्बन्ध कम्बोह (काम्बोज) जाति में विशेष से ही पायाजाता है इस मंगल दिवस के कृत्यों की कर्त्ता धर्त्ता उक्त जाति की स्त्रियाँ ही रहती हैं, पुरुषों का इस से कुछ भी सम्बन्ध नहीं देखा जाता। दिवस के कृत्य देखने से यह विदित नहीं होता कि यह किस आशय को ग्रहण कर प्रचलित हुआ था सम्प्रति इसमें कोई कृत्य भी ऐसा नही देखाजाता कि जिसपर कुछ विचार कियाजाय इस दिवस के कृत्यों में दो कार्य्य दृष्टिगोचर होते हैं प्रातःकाल पक्वान्न का भोजन और सायङ्काल को एक थाली में मंगल द्रव्य लेकर स्त्रियों के समूह किसी ताल के समीप जाकर कुछ पूजन कर चलते समय दूर्वा लेकरचलीआतीहैं इसकी कोई गाथाभी नहीं श्रवण हुई अतएव इसके विषय में कुछ कहा नहीं जासकता जाति विशेषों में होनेवाले ऐसे बहुत कृत्य हैं जो किसी काल में किसी आशय को ग्रहण कर प्रचलित हुए किन्तु उनका करना न करना समान ही प्रतीत होता है संशोधन न होने से हुए ही चले जाते हैं अतएव उस जाति के सज्जनों को योग्य है कि यातो उन कृत्यों की ऐतिहासिक घटना को खोज कर उसके लाभ को प्रकाशित करें यदि निरर्थक प्रतीत होतो हटादें।

॥ इति दूर्वा अष्टमी ॥ ४५ ॥

अथ गूंगा नवमी।

भाद्र पद शुक्ला नवमी को गूंगा नाम वाली व्यक्ति का पूजन होता है यह व्यक्ति यवन राज्य के समय में हुआ है। ऐसा सुना जाता है कि जन्म इस व्यक्ति का चौहान वंश में हुआ है मृत्यु के समय यवन हुआ है। गूंगा नाम की छानबीन करने से इतना पता चला है कि यह किसी ग्रामाधिपति का पुत्र था ग्रामाधिपति की स्त्री सन्तान रहित होने से सदैव संतान की लालसा में लगी रहती थी सुना जाता है कि एक समय इसके ग्राम में एक गोरक्ष नाम के साधु का आगमन हुआ यह स्त्री (इसका नाम वाछल था) साधु के पास गई और सन्तान के विषय में उनसे कुछ कहा उन गोरक्ष नाम वाले महापुरुष ने इसे गूगल का बना एक योग सेवन कराया इस योग के सेवन से गर्भ रहगया जिस गुग्गल के योग से गर्भ हुआ था प्रसव होने पर उसी योग के नाम से नाम करण हुआ यूं तो इस व्यक्ति के ज़ाहिर दीवान् गूंगा पीर आदि कई नाम कहे जाते हैं किन्तु मुख्य नाम गूंगा ही कहा जाता है। पाठकगण यह बात तो सन्देह जनक नहीं है कि गुग्गुल देने से सन्तान होगई गूग्गुलु योग के प्रभाव में ऐसा पाठ आया है कि यदि गुग्गुलु का सेवन पथ्य के साथ किया जाय तो यह (पुंसामत्यजनकां वंध्या नां गर्भदस्तथा)

सन्तान रहितों को सन्तान देने वाला है तिसी प्रकार वंध्याओं को गर्भ की प्राप्ति कराने में अमोघफल का दाता है जिस व्यक्ति का नाम गोरक्ष कहा जाता है वह भी एक प्रसिद्ध वैद्य होगये हैं। औषधि के प्रभाव से सन्तान होजाना सन्देह का स्थल नहीं आगे चलकर इन की जीवनी सुनने से यह पता

चलता है कि इस व्यक्ति ने सर्प्प चिकित्सा में भी कुछ अच्छा अभ्यास प्राप्त किया है इसी कारण से जनता में यह बात प्रसिद्ध होगई है कि यदि गूगा को पूजा जायगा तो सर्प्प दंश का भय नहीं होगा एक यह कहावत भी इस बात की पुष्टि में सुनी जातो है कि (गूगा को गाली देकर सर्प्पों से कौन कटवाये) इन सब कहावतों का यही आशय निकलता है कि यह व्यक्ति सर्प्प दंश की चिकित्सा में दक्ष था इस व्यक्ति का राग रूप में एक जीवन चरित्र भी बन गया है जिससे पता चलता है कि इनके वंश का किसी तक्षक वंश के व्यक्ति से कुछ वैमनस्य भी रहा है गूगा का जन्म चौहान वंश में हुआ है इनके यवन होने की बात इतनी ही सुनी जाती है कि जब ये मरने लगे तब पृथिवी से कहा कि तू मुझे अपने में समाजा ने का अवकाश दे पृथिवी ने कहा कि मेरे में अवकाश हिन्दू को नहीं मिलता यवन मत ग्रहण करके आओ तब अवकाश दूंगी पाठक गण यह बात कैसी बे शिर पैर की है इससे सिद्ध होता है कि यह यवनों ने स्वयं घड़ी है गूंगा यवन नहीं हुआ अवस्था भर चौहान रहे केवल मृत्यु के समय यवन इस हेतु से हो कि पृथिवी मुझे जगह दे सन् ४ के भूकंप ने धर्म्म शाला नगर के सहस्रों हिन्दुओं का विना यवन हुए ही अपने गर्भ में स्थान देदिया था क्या कोई यवन जलमें डूब कर वा अग्नि में जलकर नहीं मरे क्या हिन्दुओं के बालक सदा से ही नहीं गाड़े जाते इसलिये यह बात मिथ्या है गूंगा चौहान वंश का शुद्ध क्षत्री था यवन नहीं हुआ इस व्यक्ति विशेष का विशेष मान्य शूद्र जातिही में पाया जाता है यद्यपि यह सर्प्प दंश का चिकित्सक था तथापि ग्रामीणों के चिकित्सक रहे नगरों में प्रसिद्ध नहीं हुए जिस प्रकार इनका पूजन सम्प्रति

होता है वह सर्वथा हेय है कहीं २ इस व्यक्ति के नाम से मेले भी होते हैं उनमें भी शूद्र जातियों का ही संगठन अधिक पाया जाता है ऐसे मेलों से भी कोई विशेष लाभ दृष्टिगोचर नहीं होता इसका कथन भी हमने इसी हेतु से करा है कि जिस से पुरा प्रथाओं वा व्यवहारों का पता चलजाय इस हेतु से नहीं लिखा कि यह सर्वथा मान्य ही हो जिन मंगल दिवसों से जनता के भावों में एक विशेष घटना उत्पन्न हो वेही कर्त्तव्य मानने चाहिये शेष नहीं अग्रे वर्त्तमान के सज्जनों को अधिकार है समय जैसी आज्ञा दे काल मनुष्य को बलात् अपनी ओर आकर्षित करलेता है।

पाठकगण! क्या यह आप को स्मरण न होगा कि बृटिश और जर्मन संग्राम में भारत के बड़े २ कर्मचारियों को आल्हा राग बहुत गुणकारी प्रतीत हुआ जिस आल्हाको सभी छोटे बड़े झूँठ का सागर कहते हैं न कोई माननीय इतिहास है बेपढ़े मनुष्यों में लड़ने की उमंग हो केवल इतने आशय ने उसको आदर प्राप्त करादिया वर्त्तमान में यह कृत्य भी विशेषतया अछूतों से सम्बन्ध वाला है अतएव अछूतों को प्रसन्नता के अर्थ रखना ही पड़े यह बात तो भविष्य ही के गर्भ में है अपना कार्य्य तो कार्य्य के कारणों को दिखानामात्र है बलात् प्रतिपादन करना नहीं प्रतिपादन और खण्डन काल के आधीनहै।

॥ इति गूँगा नवमी ॥ ४६ ॥

अथ गर्जे बीबी का रोट।

यह कृत्य जिसका नाम गर्जे बीबी का रोट है ऐसा कृत्य नहीं है कि जो मंगल दिवसों की पंक्ति में लिखाजाय इसकी कोई तिथि भी नियत नहीं भाद्रपद से लेकर आश्विन मास पर्य्यन्त किसी भी तिथि में जब जिसकी इच्छा होती है कर-

लेती है। कारण इसका यह है कि यह यवन समय से होना आरम्भ हुआ अतएव इसका उल्लेख द्विजातियों के मंगल दिवसों में भी नहीं हुआ प्रथम इसका समावेश छोटी श्रेणी में हुआ उन्हीं से यह द्विजातियों में आया ऐसा प्रतीत होता है इस कृत्य में जो वृत होता है उसका नाम भी रोज़ा है भोजन जो इस में बनाया जाता है वह विसूचिका का मूल है इस कृत्य से कोई लाभ प्रतीत नहीं होता हिन्दू जाति मात्र से त्यागने के योग्य है।

॥ इति गर्जे बीबी का रोट ॥ ४७ ॥

अथ सैरन्ध्री उपनाम सांझी।

इस कृत्य का नाम प्रसिद्धरूप से साँझी है इसका आरम्भ भाद्रपद शुक्ला और अन्त आश्विन शुक्ला विजयदशमी को होता है। विशेषकर यह कृत्य उन्हीं गृहों में होता है जिनके यहाँ बालिकायें होती हैं इस से यह विदित होता है कि इस का सम्बन्ध केवल बालिकाओं से ही है यद्यपि इस कृत्य के व्यापार बालिकाओं की माताही करती हैं तथापि इसका संबंध स्त्री पुरुषों तथा बालकों से नहीं पाया जाता अनन्त चतुर्दशी से छोटे रूपमें उलटा सीधा बालिकाही करती रहती हैं आश्विन कृष्णा अमावस्या को यह कार्य्य बृहत् रूपमें परिणत होजाताहै आज एक भित्ति पर गोमय से बृहत् काय स्त्री की मूर्त्ति बनाई जातीहै उसको मृत्तिकाके आभूषणों से भूषित किया जाताहै जिन आभूषणों से इसे भूषित किया जाता है वे आभूषण मृत्तिका के होते हैं उनका बनाना तभी से आरम्भ होता जबसे कि यह कृत्य छोटे रूपसे होना आरम्भ होता है चादी के आभूषणों पर श्वेत पत्र पन्नी के लगाये जाते हैं और पीतवर्ण के पत्र उन पर लगाये जाते हैं जिनको स्वर्ण के बनाने की आवश्यकता जाती

जाती है स्त्रियाँ इसको देवि का पूजन बताती हैं इस मूर्त्ति के साथ एक काणा भड़वा भी होता है इस प्रतिमा के साथ काणे भड़वे का योग तो यह बताता है कि यह किसी वेश्या की मूर्त्ति है देवि की मूर्त्ति के साथ काण भड़वे का योग अनुचित है कारण इसका यह है कि लोक भाषा में भड़वा उसे कहते हैं जो वेश्या के साथ नृत्य के समय वाद्य से योग देते हैं इस भड़वे के योगसे इसको देवि कहना अनुचितही नहीं बड़ी लज्जा की बात है अमावस्या से आश्विन शुक्ला विजयदशमी पर्यन्त मौहल्ले की बालिकायें एकत्रित होकर एक दूसरे के स्थान पर जाती हैं और सायङ्काल के समय कुछ गान करती हैं इस मूर्त्ति को आर्त्ति भी उतारती हैं स्थान पर आई हुई बालिकाओं का सत्कार धान की खीलों से होता है दस दिन यह कार्य्य इस प्रकार होकर विजयदशमी को इस मूर्त्ति का विसर्जन कर किसी खेत्र वा ताल में भिजवा देते हैं।

पाठकगण ! इस कृत्य के बहुत से अङ्ग निरर्थक से प्रतीत होते हैं सम्प्रति यह कार्य्य कुछ उपयोगी भी प्रतीत नहीं होता इस कृत्य के इस मूर्त्ति रूप से और आभूषणों द्वारा भूषित करने से इतना विदित होता है कि जब कभी भी इस प्रथा का प्रचार हुआ है वह किसी वर्ग विशेष में हुआ है उस वर्गसे ही अन्यों में फैलगया ऐसा प्रतीत होगा पाठकवर्ग को यह जान लेना भी योग्य है कि भारत में पुराकार्य्य करने की शैली किस प्रकार थी पुराकाल में धनियों तथा अन्य उच्चकुलों राजगृहोंमें प्रत्येक कार्य्य के करनेहारे पुरुष स्त्री पृथक् होते थे वर्त्तमान में भी ऐसाही प्रचार है सामान्य पुरुषों में विवाहादि तथा अन्य मंगल दिवसों में और राजगृहों में नित्य स्त्रियों के शृंगार के अर्थ एक व्यक्ति होती थी जिसका नाम सैरन्ध्री था उसका

कार्य्य ही स्त्रियों को शृंगार कराना होता था वर्त्तमान में भी मंगल दिवसों के अवसर पर शिर गोंदने के अर्थ नायिनी आती है राजगृहों वा धनिक गृहों में इनको यह कार्य्य करना होता था इस वर्ग का यही कार्य्य था यह कृत्य इस वर्ग के यहाँ से अन्यों के यहां गया यह तो प्रत्यक्ष ही है कि प्रत्येक शिल्पी अपने बालकों को अपना कार्य्य सिखाते ही हैं नायिन अपने पुत्रों को प्रथम करवा मूंडना बताते हैं एवं सैरन्ध्री अपने बालकों को शृंगार की विधि बताती थीं अब जनता यह नहीं देखा करती कि इस कार्य्य से हमें क्या लाभ होगा कार्य्य की विचित्रता उनके मनको मोहलेती है वर्त्तमान में भी ऐसा देखा जाता है यवनों की शबरातके अवसर पर हिन्दुओं के बालक अग्नि क्रीड़ा में सहस्त्रों का व्यय करदेते हैं वे यह नहीं देखते कि इससे हमें क्या लाभ है इसी अज्ञान ने इस कृत्य का समावेश द्विजातियों के गृहों में करदिया सम्प्रति यह कार्य्य निरर्थक प्रतीत होता है न इसके करने से कोई अच्छा भाव ही बालिकाओं के मन में उत्पन्न होता है यदि प्रश्न हो कि यह इसी समय क्यों होता है तब इसका उत्तर यही होगा कि अन्यत्र ऋतुओं की अपेक्षा यह ऋतु कामकाज का नहीं होता द्वितीय यह बात है कि गोमय भी एक मूल्य की वस्तु है बहुतायत के साथ मिलना कठिन होता है वर्षाऋतु का गोमय इस योग्य नहीं होता आगे चलकर गोमय फिर कार्य्य में आने लगताहै अतएव यही काल कार्य्यदायक गोमयका बहुतायत से मिलने का जानागया इस कथन से भी हमारा अभिप्राय पुराप्रथा का दिखाना और उसकी उत्पत्ति का खोज कर सन्देह मिटाना ही है।

॥ इति सैरन्ध्री ॥ ४८ ॥

अथ करवा चतुर्थी ।

करवा चतुर्थी नाम का एक कृत्य कार्त्तिक कृष्णा चतुर्थी को होता है इस प्रकार के कृत्यों का वर्णन किसी ग्रन्थ विशेष में तो पाया नहीं जाता लोक में होना अवश्य है यह भी पता नहीं लगता कि किस हेतु से किस काल में किसने चलाया कृत्यों के देखने से भी यह पता नहीं लगता कि इस कृत्य से कर्त्ता का क्या आशय था। इस चतुर्थी को सौभाग्यवती स्त्रियां उपवास करती हैं और रात्रि को चन्द्र दर्शन के पश्चात् भोजन करती हैं यदि उपवास वा चन्द्र दर्शन ही का कोई फल विशेष हो तो कहा नहीं जाता इस बात का सन्देह नहीं कि इस प्रकार के कृत्यों का कहीं उल्लेख नहीं इसलिये अकर्त्तव्य है बहुत से कार्य्य ऐसे भी दृष्टिगोचर होते हैं कि उन का उल्लेख कहीं भी नहीं किन्तु होते हैं ऐसे कार्य्य भी कर्त्तव्य हैं किन्तु देखना यह है कि इससे आत्मिक शारीरिक और सामाजिक इन तीनों लाभों में से लाभ कौनसा प्राप्त होता है इस कृत्य में केवल उपवास ही एक ऐसा विदित होता है कि जिस से कुछ शारीरिक निरोगता का लाभ हो पतियों की कुशल नित्य ही महिलागण मनाती हैं इसीदिन इस कुशल मनाने का कारण विदित नहीं होता न यह कृत्य किसी अन्य जाति का अनुकरण ही कहा जा सकता इन सब बातों पर विचार करने से इस कृत्य का पता अपने को तो कुछ चलता नहीं अन्य सज्जनों को कुछ रहस्य विदित हो तो वे इस पर प्रकाश डालें प्रचार विशेष होने से यह भी नहीं कहा जाता कि सर्वथा हेय ही है इसलिये महिलागण के प्रति यह निवेदन है कि कार्य्य न कोई बुरा है और न कोई अच्छा भावों की अच्छाई और बुराई कार्य्य को अच्छा और बुरा करदेती है अत-

एव जो कार्य्य भी तुम्हें करना इष्ट हो उसमें भावों को स्वच्छ और ऊंचा बनाने का प्रयत्न करना योग्य है। यदि किसी की कुशल क्षेम की इच्छा है तो परमात्मा की प्रार्थना करो परमात्मा के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति से प्रार्थना मत करो वह व्यक्ति स्वतन्त्र नहीं थी न जाने अब कहां और किस योनि में कहीं तुम्हारे ही आश्रय न हो ऐसे भावों से बिचार ऊंचा होता है महिलागण तुम्हारे विचार बहुत गिर गये इसी हेतु से तुम्हारे कृत्यों की अवहेलना होने लगी परमात्मा का आश्रय लेकर तुम्हारा कोई कार्य्य भी नहीं देखा जाता शुद्ध भाव से कार्य्य का फल अच्छा होता है। अतएव यदि कार्य्य तुम छोड़ना नहीं चाहती हो तो अपने सब कार्य्यों में भाव शुद्ध रक्खो और परमात्मा का ही आश्रय लो तुम्हारा कल्याण होगा।

॥ इति करवा चतुर्थी ॥४६॥

अथ हुई विचारः ॥

महिलागण का यह भी एक मंगल दिवस है इसकी तिथि कार्त्तिक कृष्णा सप्तमी वा अष्टमी नियतहै। इसका विशेषसंबंध तो स्त्रियों से ही है माता के अभाव में वा रुग्नादशा में यह पिता को भी करना होता है। यह कृत्य उन्हीं महिलाओं का कर्त्तव्य कहा गया है जिनके पुत्र होते हैं कोई २ पुत्री वाली भी करती हैं गाथा तो इस की बहुत बेढंगी है किन्तु व्यवहार देखने से आशय यह विदित होता है कि यह बालकों की वर्ष ग्रन्थी है। कारण इस का यह है कि इस मंगल दिवस को एक आभूषण बनता है उस का नाम भी हुई होता है। इस आभूषण की आकृति माला की समान होती है इस में प्रति वर्ष बालक होने पर एक दाना बढ़ता है यह आभूषण सदा स्त्रियों

के वक्षस्थल पर विद्यमान रहता है इसके देखने से यह विदित होजाता है कि इस स्त्री के इतने पुत्र हुए हैं। इस आभूषण के व्यवहार से यह विदित होता है कि यह मंगल दिवस बालकों की वर्ष ग्रन्थी के निमित्त रक्खा गयाथा इस मंगल दिवस का प्रचार बहुत काल से होता चला आता है। यह वर्ष ग्रन्थी वाला मंगल दिवस प्रायः शूद्रों में भी देखा आता है। यवन वर्ग ने भी इस को अपने यहां प्रचार दिया है भेद केवल इतना है वे लोग जन्म के दिन ही करते हैं उनके यहां समय नियत नहीं और भारत में जन्म दिन का ही निश्चय न कर एक काल नियत कर लिया है यवन वा अन्य किन्हीं पुरुषों ने एक बड़ी सूत्र तन्त्री रखनी आरम्भ की जिस में प्रति वर्ष एक ग्रन्थी लगाई जाती है यह सूत्र तन्त्री सदैव समीप नहीं रहती भारत की दीर्घदर्शी व्यक्तियों ने इसको चिरायु और आभूषण रूप से सदैव समीप रहने वाला बनाया भारत देश की महिलाओं का यह विचार नहीं था कि हम बालक के वर्ष गिनें उनका लक्ष्य तो सन्तान संख्या पर था कारण यह विदित होता है कि वेद भगवान् की आज्ञा है कि दश सन्तति से अधिक उत्पन्न मत करो न्यून करो जिससे कि इस आज्ञा का उलंघन न होजाय वेद आज्ञा का उलंघन करना पाप माना जाता है पाप से बचने के अर्थ केवल सन्तान संख्या ही का रखना योग्य जाना इस कृत्य के दिन दुई नाम से एक चित्र भी बनाया जाता है जिसमें स्त्रियां अनेक प्रकार के चित्र बनाती हैं पुराकाल में चित्रकारी के अभ्यास का प्रचार बहुत था इस दिन उस भित्ति वाले चित्र के अतिरिक्त भोजन में भी बालकों के भक्षण तथा क्रीड़ा के अर्थ उनमुने, दुनमुने, इन नामों के पदार्थ बनाये जाते थे। वर्त्तमान की स्त्रियों ने इस

आशय को बिसरा एक बेढंगी और असंभव गाथा घड़ली है। इस गाथा की असंभवता ने ही सज्जनों को इस कृत्य के हटाने पर उतारू कर दिया महिलागण को योग्य है कि उस असंभव गाथा को मन से भुलाएं उससे विचार गिरने की संभावना है सन्तान की अभिलाषा यदि अभिष्ट है तब यातो आयुर्वेद के योगों का सेवन करो वा सर्वशक्तिमान परमात्मा से प्रार्थना करो तुम्हारे मंगल दिवस मंगल रूप ही रहने योग्य हैं उनमें मलिन वृत्तियों का समावेश कर अमंगल मत करो ॥

॥ इति हुई विचार ॥ ५० ॥

अथ गोपाष्टमी।

यह मङ्गल दिवस कार्तिक शुक्ला अष्टमी को भारत महिलाओं के द्वारा ही मनाया जाता है। सम्पन्न सद्गृहस्थियों की स्त्रियां इस मङ्गलदिवस को विशेषता से मनाती दृष्टिगोचर होती हैं यह मङ्गलदिवस आज समाप्त होना है आरम्भ इसका कई तिथि पूर्व से होना है जो स्त्रियां विशेष सम्पन्न होती हैं वे इस नियम को सूर्य्य के दक्षिणायन होने से आरम्भ कर इस तिथि को समाप्त करती हैं। और जो सम्पन्न नहीं हैं और श्रद्धा वाली हैं वे मास पक्षसप्ताह वा एक ही दिन इस कृत्य को यथा शक्ति करती हैं। यह अष्टमी का दिवस गौओं के पूजन का कहा जाता है सायंकाल का वह समय जबकि गौवें चर कर आती हैं इस कार्य्य का आरम्भ होता है एक हाथ में मङ्गल द्रव्यों का थाल है जिसमें अक्षत कुकुम और साठी के चावलों के मोदक उपस्थित हैं दूसरे हाथ में स्वच्छ जल का लोटा लिये अपने२ हाथों के द्वार पर खड़ी हुई महिलायें गौओं के आने की बाट जोय रही हैं साध्वी सद्गृहस्थिनी इस समय

सतोगुणी भाव और वंश से एक विचित्र शोभा को प्राप्त हो रही हैं दुकूलसाटि का सम्थीन मत से मुख ऐसा कुमला गया है जैसे मध्याह्न के ताप से मुरझाया हुआ पुष्प ऐसे सतोगुणी अवसरों पर शृंगार वर्जित है इसलिये शिर के केश मुखमंडल पर पड़कर कुछ और ही शोभा दे रहे हैं एक ओर यह मनोहर मूर्त्ति और दूसरी ओर मनोहारिणी तरंतारणी गौ माता की मूर्त्ति विराजमान् है यद्यपि परमात्मा ने अपनी निष्पक्षता से सभी को सुन्दरता दी है तथापि चतुष्पदों में गौ को ही अधिक सुन्दरता दीगई है । चर कर आती हुई गौओं के पूजन का समय महिलागण और गौओं की शोभा का चित्र भी एक दर्शनीय चित्र है। गौ को इस समय स्वामी के गृह पर आने को उतावली है और महिलागण का मोदक अपनी ओर आकर्षित कर रहा है इन दोनों वृत्तियों ने गौओं के चित्त में ऐसी चंचलता उत्पन्न करदी है कि जिसके कारण महिलागण को भी अपनी स्वाभाविक चञ्चलता से अधिक चंचलता करने की आवश्यकता है गौ के आते ही प्रथम जल से मस्तक प्रक्षालन की विधि आरम्भ होती है उसी समय मस्तक पर कुंकुम का तिलक और शृंगों में पुष्पमाला डालीजाती है इन व्यापारों के करते समय यदि गौ चञ्चलता से चल देती है तब बीच बीच में साठी चूर्ण का मोदक देकर गौ को ठहराया जाता है महिलागण का भक्तिभाव जो इस समय दृष्टिगोचर होता है। उसकी साक्षी नेत्र ही दे सकते हैं लेखनी के द्वारा उस चित्र का आकर्षित करना कठिन है। इस प्रकार के व्यवहारों द्वारा यह कृत्य कार्त्तिक शुक्ला अष्टमी को सायंकाल के समय समाप्त होकर अगले वर्ष अपने आने की सूचना देता हुआ महिलागण से विदा होता है।

पाठकगण कभी आपने भारत की उदार मूर्त्ति महिलाओं के मर्मो के विचारों का चित्र अपने चित्त में आकर्षित किया है वा नहीं देखिये तो सही कितनी उच्च कक्षा की उदारता है। महिलागण के चित्त यदि संकीर्णता के भावों वाले होते तो यह व्यापार अपनी ही गौओं के साथ करतीं किन्तु ऐसा नहीं करतीं। इसका कारण यह है कि अपनी गौओं के साथ ऐसा करने से स्वार्थ पाया जाता है स्वार्थ धर्म्म को दूषित करता है। अतएव महिलागण धर्म को दूषित करना अच्छा न जान इस कृत्य दूसरों की गौओं के प्रति ही करती हैं। महिलागण के इस उच्च विचार की मूल बड़ी गहरी है जिसका पता चलना कठिन है। इस उच्च विचार की मूल के इधर उधर फैलने वाले नस्से बहुत हैं जिनकी खोज करना सामान्य व्यक्ति की शक्ति से बाहर है। विद्वानों ने इस मानव रचना के दो भाग किये हैं एक साधारण और द्वितीय विशेष इन दोनों भागों में पृथक्ता का कारण बुद्धि की न्यूनाधिकता नहीं इसका कारण आर्थिक दशा है। सामान्य भाग की आर्थिक दशा केवल अपने ही निर्वाह के अर्थ होती है। दूसरे विशेष भाग की आर्थिक दशा अपना और साथ ही में दूसरों का निर्वाह अनायासता से करने वाली दे॰ी जाती है। प्रचुर धन वाली व्यक्तियां अपने धन से निर्धनों की सहायता करना अपना परमकर्त्तव्य मानती हैं किन्तु इस अपने कर्त्तव्य का पालन वे इस प्रकार करना चाहती हैं कि जिससे निर्धन जनता को यह विदित न हो कि यह कार्य्य केवल हमारे ही निमित्त किया गया है इसलिये उदार चेताधनी उस कार्य्य में अपने धर्म्म को समावेश कर देते हैं। ऐसी व्यक्तियों का विचार है कि ईश्वर की कृपा कटाक्ष का यह फल है कि हमें धन दिया है

यह धन हमें अपने भोग के अर्थ नहीं मिला हम तो निर्धनों के धन के रक्षक हैं जैसे सन्तानों के विवाहार्थ धनका रक्षक पिता है इसी प्रकार निर्धनों के धन का स्वामी मैं हूं यदि यह धन मेरे ही निर्वाह के अर्थ होता तब अन्यों की अपेक्षा मेरा व्यय भी अधिक होता किन्तु ऐसा नहीं देखा जाता। यदि और अधिक विचार से देखा जाय तो यह विदित होता है कि निर्धनों की अपेक्षा धनियों का व्यय थोड़ा होता है निर्धन भोजन अधिक पाते हैं निर्धनों के शरीर धनियों से बड़े होते हैं खान पान तथा वस्त्रादि का व्यय धनियों की अपेक्षा निर्धनों का अधिक देखा जाता है यदि धनियों का धन उनके ही निर्वाहार्थ होता तब धनियोंकी क्षुधा कई मनकी होती और शरीर इतना होता कि सहस्रों गज पटवस्त्रों को लगता किन्तु ऐसा नहीं देखा जाता इससे विदित होता है कि धनियों की वे आवश्यकतायें जो जीवन यात्रा की सहायक हैं निर्धनों से अधिक नहीं इतने ही मात्र के अर्थ वेद की भी आज्ञा है। वेद का उपदेश है कि—

ईशावास्य मिदथ्ंसर्वं यत्किञ्च जगत्याञ्जगत् ।
तेन त्यक्तेनभुञ्जीथा मागृधकस्यस्विद्धनम् ॥

हे मनुष्यों इस समस्त जगत् का स्वामी परमात्मा है उसी की महती शक्ति के द्वारा यह आच्छादित है उसकी ओर से जितना तुमको दिया गया है उतने मात्र का भोग करो शेष धन जो तुम्हारे निर्वाह से अधिक है वह किसी का नहीं वह तुम्हारे पास धरोहर है उसको अपना मत समझो वह अन्यों की आवश्यकतायें पूर्ण करने के अर्थ है उसको अपना मानना मेरी आज्ञा न मानना है। वेद आज्ञा को मानने वाले स्त्री पुरुषों के

यही विचार थे कि निर्वाह मात्र धन से अधिक धन द्वारा अन्यों का निर्वाह करना ही अपना धर्म है इन्हीं विचारों वाले स्त्री पुरुषों के द्वारा भारत की अनेक संस्थायें निर्वाह करती हैं अनेक पाठशालायें भारत में ऐसे ही विचारों वाली व्यक्तियों के द्वारा चल रहीं हैं।

अनेक स्थानों पर धर्मशालायें बनी हुई हैं कूप आराम आदि अनेक हैं इस प्रकार के कार्य्यों का नाम शास्त्रों में इष्टा पूर्त्त कर्म्म कहा गया है। जिन महापुरुषों ने इस प्रकार के कर्म्मों के साथ पुण्य और स्वर्ग प्राप्ति का लालच बताया है उनका अभिप्राय जनता के परमहित के अर्थ था महिलागण के कर्णगत यह करना कि जो इस प्रकार गौओं का पूंजन करेगी वह अन्न व धन सन्तान से परिपूर्ण हो स्वर्ग की प्राप्ति करेगी इन वाक्यों के अन्तर में गौओं का हित प्रथम रक्खा गया था। इस निमित्त से उन व्यक्तियों की गौओं की पुष्टि सुगमता से होजाती है जो गौओं को पालते तो हैं किन्तु केवल भूसे के अन्य और कुछ देने में असमर्थ हैं इस प्रकार के कार्य्यों का प्रचार अधिकता से हो तो और अच्छा है इस प्रकार के कार्य्यों की अवहेलना करना अच्छी नहीं अच्छे कार्य्य हटाने की अपेक्षा करने ही योग्य हैं यह हमने माना कि इस प्रकार के कृत्यों की आधार शिला जिन विचारों के आश्रय से रक्खी गई थी वे विचार इस समय जनता के नहीं पाये जाते उन विचारों को उजालना विद्वानों के हाथ में है जनता के विचार सदैव से विद्वानों के ही द्वारा उत्पन्न होते हैं। विचार के साथ यदि कार्य्य होता रहता है तब तो फल की आशा भी होती है कार्य्य रहित विचार निरर्थक ही कहा गया है। विचार कार्य्य का पूर्व भाग है जब तक उत्तर भाग कार्य्य नहीं होता तब तक

महापुरुषों ने जनता की स्वस्थता का भार अपने ऊपर लिया है उन्होंने दोषों की वृद्धि तथा क्षय का काल भी निश्चित किया आयुर्वेद के मत से कफ़ वात पित्त ही रोगों का कारण माने गये हैं वर्ष की पूर्ति बारह मासों पर मानी गई है इन बारह महीनों पर तीनों दोषों का विभाग इस प्रकार किया गया है ६ महीने वात कोप के और चार मास पित्त के और दो महीने कफ़ कोप के होते हैं दोनों अयनों में दोषों का प्रकोप होता है दक्षिणायन में वात कोप के आषाढ़, श्रावण भाद्रपद ये तीन मास हैं और उत्तरायण में मार्गशिर पौष और माघ ये तीन मास प्रकोप के समय के हैं यह माघ का महीना शीत का बाहुल्य होने से वात के रोगों का कर्त्ता है वात कोप को शमन करने के अर्थ तिल एक ही वस्तु उत्तम माने गये हैं तिलों का आहार रूप से व्यवहार करना वात व्याधि से अपनी रक्षा के अर्थ है। तिल दान का विधान इस मास में बहुतायत से पाया जाता है तिल स्त्रियों के लिये अत्यन्त हित-कर होता है रजोदर्शन को शुद्ध करता है रज में सन्तान उत-पादकता का करने वाला है मनु में जहां अन्य दानों का वर्णन है वहां तिल भी दान की वस्तुओं में ग्रहण हुआ है। अत-एव तिल का भक्षण स्वयं करना और औरों को कराना अच्छा माना गया है।

जिन वैद्यवरों ने इस प्रकार के व्यवहार चलाये हैं उनका विचार अब जनता को रोग मुक्त करना था ऐसा प्रतीत होता है। अपना फिर भी यही कथन है कि व्यवहारों को हटाने की अपेक्षा जनता के विचारों का शुद्ध करना योग्य व्यवहारों के हटाने से सम्प्रति ऐसे उत्तम व्यवहारों का होना कठिन है। माघ मास के आरम्भ ही से इस मंगल दिवस से तिल भक्षण

यह अपने फल का दाता भी नहीं होता विचार रहित कार्य्य तो फल वाला होता देखा जाता है किन्तु कार्य्य रहित केवल विचार निरर्थक है इत्यादि कारणों से कार्य्य को हटाना अच्छा प्रतीत नहीं होता आगे सज्जनों को अधिकार है जैसे उचित समझें करें।

॥इति गोपाष्टमी ॥५१॥

अथ सकट विचारः।

सकट नाम वाला एक मंगल दिवस माघ कृष्णा चतुर्थी को होता है। इस मंगल दिवस में केवल व्रत और तिल भक्षण काही महात्म अधिकतर वताया जाता है इस मंगल दिवस में तिल भक्षण की आज्ञा होने से यह विदित होता है कि यह किसी दोष विशेष की शान्ति के अर्थ हैं यह हम पूर्व कह आये हैं कि इस प्रकार के कार्य्यों का प्रचार उस काल में हुआ है जिस काल में देश के रक्षक वे आयुर्वेदविद् थे कि जो अपना परमकर्त्तव्य यह समझते थे कि (व्याध्युपसृष्टानां व्याधिः परि मोक्ष स्वस्थस्य रक्षणञ्च) रोगियों के रोगों का नाश और स्वस्थों की रोगों से रक्षा। यह भी पूर्व कहा जाचुका है कि उत्तम वैद्य वही कहा गया है कि जो

(विनापिभेषजैर्व्याधिं पथ्यादेव निवर्त्तयेत्)

बिना औषधि के पथ्य से ही रोग को शान्त करे।

पाठकवर्ग को यह भी स्मरण रहे कि व्याधि की उत्पत्ति दोषों के बिना नहीं होती और दोष बिना हेतुके नहीं होते हेतु जनता के आहार विहार के आधीन रहता है जिस आहार के आधीन हेतु है उस आहार विहार का नियमपूर्वक करना हेतु का हटाना है हेतु हटने पर रोग स्वयं ही हटेगा जिन

का आरम्भ होकर माघ के अन्त पर्य्यन्त रहता है यह मंगल दिवस जिन विचारों से प्रचलित हुआ था वह हेतु इसके व्यापारों से प्रत्यक्ष होता है इसमें संचालक का दोष तो कहा नहीं जासकता जनताके विचारों का उलटा होजाना ही दोष कहा जासकता है कार्य्य किसी हितैषी का बताया हुआ है करना न करना वर्त्तमान सज्जनों के हाथों में है।

॥ इति सकट विचारः ॥ ५२ ॥

अथ मौनी अमावस्या।

माघ मास में अमावस्या भी एक मंगल दिवस मानागया है इसतिथि में भी तिल दान ही का कृत्य विशेषता से होता है अतएव कुछ विशेष वक्तव्य की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती केवल एक इस बात पर कहने की आवश्यकता है जो आज के दिन विशेषता से होता है वह यह है कि इसदिन जो दान होता है वह मौन धारण करके किया जाता है यह मौन उठने के समय से उस समय पर्यन्त धारण किया जाता है जब तक तिलों का दान नहीं होजाता यूँ तो उन व्यक्तियों को सदाही थोड़ा बोलना लाभकारी है जो सदा असंबद्ध प्रलाप के अभ्यासी हैं दूसरों को उपताप करने वाले वाक्यों का न बोलना भी मौन ही है किन्तु मौन शब्द के वास्तविक अर्थ हैं (मुनेर्भावो मौनम्) मुनियों के व्यवहारों का नाम मौन है। किन्तु सम्प्रति मौनीका अर्थ न बोलने ही में ग्रहणहोता है इसीसे इसका नाम मौनी अमावस्या पड़गया है।

॥ इति मौनी अमावस्या ॥ ५३ ॥

अथ मकर की संक्रान्ति।

मकर की संक्रान्ति भी पर्व्व मानी जाती है यह पूर्व कह आये हैं कि संक्रान्ति की कोई तिथि नियत नहीं होती जिस दिन भी आजाय वही दिन पर्व रूप माना जाता है मकर की संक्रान्ति में प्रयागराज कुम्भ का मेला होता है इस प्रकार के संगठनों का वही अभिप्राय है जो मेषी के संगठन में कहाजा चुका है इस संक्रान्ति को पर्व रूप मानने का कारण यह है कि यहां से उत्तरायण होता है यह एक परिवर्त्तन विशेष है यही कारण इस के पर्व्व मानने का है।

॥ इति मकर की संक्रान्ति ॥ ५४

अथ पुष्प हरा द्वितिया।

यह कृत्य फाल्गुण शुक्ला द्वितीया को होता है न यह कोई बड़ा मंगल दिवस है और न इस में होने वाले कार्य्य बहुत लम्बे चौड़े हैं देखने मात्र से एक बालिकाओं की क्रीड़ा है। वर्त्तमान के सज्जन इस प्रकार के कार्य्यों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं यद्यपि यह बालिकाओं की क्रीड़ा है परन्तु इसके मूल में एक भारी रहस्य दृष्टिगोचर होता है। प्रथम इस मंगल दिवस में होने वाली क्रीड़ा पर ध्यान देना योग्य है यह क्रीड़ा विशेषकर कुमारी कन्याओं के द्वारा होती हैं जिस दिन यह क्रीड़ा होती है उस दिन प्रत्येक महल्ले की बालिकायें वासा वृक्ष के पुष्प तोड़कर लाती हैं और उन पुष्पों को अपने सम्बंधियों तथा अन्य पार्श्व वर्त्तियों के स्थानों पर बखेरती हैं। इतने मात्र के अतिरिक्त और कोई कृत्य नहीं होता अब देखना इस क्रीड़ा में यह है कि क्या यह क्रीड़ा अबोध बालिकाओं ने स्वयं ही अपनी बुद्धि

से निकाली वा किसी ने इनके द्वारा कराई पाठकगण यह तो कहने का साहस हो ही नहीं सकता कि यह अबोध बालिकाओं का कार्य्य है यह कहा जासकता है कि इस कार्य्य में किसी ऐसी व्यक्ति का हाथ है जो किसी विद्या का मर्मज्ञ है कारण कि वासा वृक्ष के पुष्प जो राजयक्ष्मा की एक ही प्रधान औषधि कही गई है उसके पुष्पों का योग और कौन कर सकता था यह ऋतु राजयक्ष्मा के उत्पन्न होने की है देखो होलाका वाला विषय पुरा काल के आयुर्वेदविद क्रीड़ा में भी जनता की रक्षा का ध्यान रखते थे कुमारियों के द्वारा यह क्रीड़ा नहीं है जनता के अर्थ प्राण दान है यदि यहां प्रश्न उपस्थित हो कि यह कार्य्य तो पुरुष भी कर सकते थे बालिकाओं के द्वारा क्यों कराया गया महाशय गण इस में भी एक गुप्त बात है वह बुद्धि में आनी कठिन है बात यह है कि शरीरों के द्वारा जो कुछ कार्य्य भी होते हैं उन सब में शारीरिक विद्युत का समावेश अवश्य होता है शारीरिक विद्युत के दो रूप माने गये हैं एक क्षत द्वितीय अक्षत जब दो विद्युतों का परस्पर मेल होजाता है तब वह विद्युत क्षत कही जाती दूसरी विद्युत के मेल से रहित विद्युत की अक्षत संज्ञा है क्षत की अपेक्षा अक्षत विद्युत का प्रभाव अमोघ होता है क्या यह आप लोगों से अप्रकट है कि आयुर्वेदविदों ने जहां गौ के गोमय और मूत्र के प्रयोगों का वर्णन किया है वहां अप्रसूता गौ का ही ग्रहण किया है पुंसवन संस्कार में वटशृंग को कुमारी कन्या के हाथ से पिसवाने की आज्ञा है कुमारी कन्याओं का विद्युत कार्य्य से तो क्या अभी विचारों से भी क्षत नही हुआ उन के हाथ से तोड़े हुए और बखेरे हुए पुष्प अतुल प्रभाव वाले माने गए हैं इत्यादि कारणों से जनता की एक भयंकर

रोग से रक्षा के अर्थ देश के परम हितैषी आयुर्वेदविदों ने कन्याओं के द्वारा इस क्रीड़ा का व्यवहार कराना योग्य जाना था वासे के विषय में वैद्यवरों की एक मुख होकर यह सम्मति है कि

(वासायांविद्यमानायां माशायां जीवि तस्यच रक्त पित्ती चयीकासी किमर्थमवसीदति)

जहां वासा बूटी विद्यमान है वहां रक्त पित्त के तथा राज यक्ष्मा के रोगी क्यों दुःख पाते हैं इसी श्लोक के आशय वाली एक पञ्जाबी कहावत भी है

(जित्थेवणा विसूटी वरना तित्थे माणस क्यूं कर मरना)

इन दोनों वाक्यों से यह पाया जाता है कि वासा यक्ष्मा को एक ही प्रधान औषधि हैं कार्य्य अवहेलना के योग्य नहीं हैं आदर के योग्य हैं भारत हितैषी वैद्य जनता का धन बटोरना पाप समझते थे उनका धर्म था कि वह बिना धन के अधिक व्यय के केवल परिश्रम ही से जनता के संकट निवारण करें उनका धन्यवाद देना योग्य है और उनके बताये हितकारी कार्य्यों को आदर के साथ करना चाहिये।

॥ इति पुष्पलता द्वितीया ॥ ५५ ॥

पाठकगण की सेवा में निवेदन।

परमात्मा की कृपा से और आप लोगों के सौभाग्य से यह श्रम सफल हुआ जिस प्रकार चैत्र से आरम्भ कर के फाल्गुण पर्य्यन्त ग्रन्थ के पूर्व भाग का वर्णन हुआ है उसी प्रकार परिशिष्ट भाग के मंगल दिवसों का वर्णन किया गया जिन मंगल

दिवसों का वर्णन इस पुस्तक में हुआ है वे सब मंगल दिवस ब्रह्मर्षि देश के हैं मंगल दिवसों की इयत्ता बांधना ठीक नहीं कारण कि संसार परिवर्त्तनशील है काल की गति और जनता के विचारों द्वारा अनेक उत्पन्न हो गये और होंगे कितने ही लोप होगये पूर्व कथित मंगल दिवसों में बहुत से तो ऐसे हैं जो महापुरुषों के स्मरणार्थ हैं वर्त्तमान के महापुरुषों के स्मरणार्थ भी कितने ही नवीन होगये और होंगे प्रमाण के लिये आर्य्य समाज प्रवर्तक श्री स्वामी दयानन्दजी महाराज के दो मंगल दिवस तो आर्य्य जनता ने मनाने आरम्भ कर ही दिये दीपावली का मरण और शिवरात्रि का ऋषि बोध और तृतीय शताब्दी वाला होने को है इसी प्रकार श्री पं० गुरुदत्त जी तथा श्री प० लेखराम जी एवं श्री स्वामी विरजानन्द आदि को वर्षिय रूप से मनाने आरम्भ होही गई अन्य महा पुरुष भी ऐसे ही होंगे जिनके मंगल दिवस मनाने की आवश्यकता होगी इत्यादि कारणों से मंगल दिवसों की यह संख्या बांधनी कि इतने ही हैं ठीक नहीं आर्य्य सज्जनों की सेवा में यह निवेदन है कि वे अपने मंगलदिवसों को मंगलरूप बनाने के अर्थ अपने पूर्वजों की चाल ढाल का उलंघन न करें इस पुस्तक के देखने से यह पता चलेगा कि जन्मदिन के अतिरिक्त मरणदिन का एकभी उत्सव न मिलेगा वर्त्तमान के नेताओं की भूल से जिन महापुरुषों के मरणदिन मनाने की प्रथा पड़गई है उनके जन्मदिनों के उत्सव मनाने की प्रथा डालनी योग्य है पुरुष आचार्य्यों ने जन्मदिन को ही मंगल दिवस माना है मंगल दिवस इस हेतु से मनाया जाता है कि जिससे उस व्यक्ति के जीवन भरके कार्य्यों का यह पता चले कि अमुक ने अमुक २ कार्य्य इतनी अवस्था से आरम्भ करके इस अवस्था

(इह खल्वायुर्वेदोनाम यदुपाङ्गमथर्व वेदस्य)

यह जो लोक में आयुर्वेद के नाम से विख्यात है पूर्णायुर्वेद नहीं पूर्ण आयुर्वेद अथर्व का उपांग है जब यह अंग भी नहीं उपांग है तब इसको आयुर्वेद मानना वा कहना विचारों की संकीर्णता नहीं तो और क्या है। मंगल दिवसों के आविष्कर्त्ता आयुर्वेद के ज्ञाताओं को ही जानना चाहिये स्वार्थियों से दूसरों का उपकार होना असम्भव है वर्त्तमान समय के वैद्यों की जो दशा है वह प्रत्यक्ष है जो यह किसी काल में जनता का रक्षक था वह आज भक्षक हो रहा है जनता का धन हरण करना ही वैद्यों का वैद्यत्व है आये दिन विज्ञापनों के द्वारा सहस्रों का अपना व्यय करके लक्षों जनता के हड़प होते हैं भला ऐसे आयुर्वेदविदाचार्य्यों से जनता के सुख की आशा करना बंध्या पुत्र का दर्शन करना है हमारा अभिप्राय उन्हीं महापुरुषों से है जो अथर्व के पूर्णज्ञाता थे इस प्रकार के ज्ञान का भंडार अथर्व ही निश्चय हुआ है आत्मिक शारीरिक और सामाजिक सुखों का श्रोत अथर्व ही माना वा कहा गया है अथर्व के बिना जाने इस प्रकार के कार्य्य होने कठिन हैं अतएव अथर्वविदों को ही आयुर्वेदाचार्य्य मानना चाहिये।

अथ पूजन प्रकार।

पहिले हमारा विचार था कि मङ्गलदिवसों का पूजन प्रकार भी लिखा जाय, अब यह विचार शिथिल कर दिया कारण इसका यह है कि आर्य्यसज्जनों के पूजन के अर्थ संस्कारविधि का सामान्य प्रकरण पर्य्याप्त है अन्य पुरुषों का पूजन प्रकार पृथक होता ही है इसलिये जिनको जैसा इष्ट हो वैसा करें। इस स्थान पर पूजन प्रकार कहना उपयोगी प्रतीत

नहीं होता न हमारे विषय के लिये पूजन प्रकार की विधि की आवश्यकता है कारण यह है कि इसमें मङ्गलदिवसों की खोज की गई हैं महात्म्य नहीं बताया गया।

पाठकगण के प्रति निवेदन।

जो महाशय इस ग्रन्थ का अवलोकन करें यदि उनको इसमें कुछ किन्तु प्रतीत हो तो प्रथम उसके विषय में मुझसे पूछलें यदि मुझसे उसका समाधान न हो तब पीछे जैसा उचित हो वैसा करें। एक यह प्रार्थना भी स्वीकार हो कि पहिले आद्योपान्त देखलें सम्भव है कि किसी अगले पिछले लेख में स्वयं ही सन्देह का समाधान निकल आये। जैसे मैंने निष्पक्ष भाव से लिखा है वैसे ही निष्पक्ष भाव से पाठकगण भी देखने की कृपा करें। एक यह भी विचार मेरा है कि मैं किसी एक व्यक्ति को इसका समालोचक न बना सभी को समालोचक बनाना अच्छा जानता हूं इस ग्रन्थ के देखने वालों का जो विचार अच्छा वा बुरा इसके विषय में हो निष्पक्षता से प्रकाशित करदें। अपने दोष दिखाने वालों को मैं परममित्र मानता हूं। अतएव अपने विचार प्रकट करने में संकोचता न करें।

इस ग्रन्थ के बनने का कारण।

कुछ तो पहिले कहा जा चुका है यहां विशेषता से कहने की आवश्यकता है सन् १९२७ ई० में एक विज्ञापन प्रधान आर्य्यप्रतिनिधिसभा संयुक्तप्रान्त श्री ठा० हुकुमचन्द जी की ओर से आर्य्यमित्र के किसी अंक में यह छपा था कि आर्य्यसमाजों के लिये एक त्यौहारपद्धति की महती आवश्यकता है। इस विज्ञापन को देखते ही मैंने अपने विचार

लिखकर श्री प्रधान जी की सेवा में भेज दिये थे। एक वर्ष पर्य्यन्त यह लेख श्री प्रधान जी के पास ही पड़ा रहा बहुत कहने सुनने के पश्चात् श्री पं० नन्दकिशोरदेव शर्माजी के पास भेजा गया। श्री पं० जी ने देखकर अपनी सम्मति लिखी कि यदि ग्रन्थकर्त्ता इसमें से अमुक २ बात निकाल दे तब ग्रन्थ उपयोगी है अवश्य छपजाना चाहिए। यह पत्र और लेख मेरे पास आया मैंने श्री पं० जी की आज्ञा का पालनकर लेख को द्वितीयवार शुद्ध करदिया। इसके पश्चात् एक पत्र मन्त्री महाशय का आया कि पुस्तक शीघ्र भेजो मैंने मन्त्री महाशय की आज्ञा का पालन कई कारणों से नहीं किया। इतने लेख से पाठकगण को यह जानना चाहिए कि पुस्तक एक प्रकार से श्रीमती आर्य्यप्रतिनिधि से स्वीकृत ही है किन्तु मैंने इस बात को कि प्रतिनिधि छपाये इस कारण से अच्छा नहीं समझा कि सभा एक पवित्र संस्था है उसके स्वीकृत विचार बहुमूल्य होने चाहियें यदि कहीं तेरे विचार जनता को न रुचे वा कोई दोष हुआ तो उन दोषों का भार सभाके शिर पड़ेगा। अतएव यह दोष व्यक्तिगत ही रहे तो अच्छा है। एक यह बात भी देखी जाती है कि आर्यप्रतिनिधिसभा को वस्तुतः आर्य्यमन्तव्यों में न्यूनाधिक करने का अधिकार भी नहीं है। कारण इसका यह है कि सभा समाजों की प्रबन्धकर्त्री है मन्तव्यों में न्यूनाधिक करने का अधिकार परोपकारिणीसभा के आधीन है यतिवर स्वामी दयानन्द ने अपना स्थानापन्न उसी को बनाया है। प्रतिनिधिसभा को यह अधिकार न होने से यदि वह मन्तव्यामन्तव्य में अपना अधिकार समझती है। तब उसकी यह भूल है इत्यादि कारणों से यही अच्छा जाना कि स्वतन्त्ररूप से ही छपाया जाय। पुस्तक के विचार अ

और जनता को रुचिकर होने पर सब सभाओं को अपनाने का अधिकार है विचारों में भेद होने से उस दोष का भार कर्त्ता ही पर रहकर सभा का पल्ला हल्का रहेगा। सम्प्रति आर्य्यसमाजों की पद्धति यतिवर स्वामी दयानन्द की धर्म्म पद्धति से कुछ पृथक् भी दृष्टिगोचर होती है उसका कारण यतिवर कृत ग्रन्थों का स्वाध्याय न होना है। जो व्यक्तियां श्रीस्वामी जी कृत ग्रन्थों को देखने की अभ्यासी हैं उनकी अपेक्षा कि जो स्वाध्याय की अभ्यासी नहीं विचारों में अन्तर पाया जाता है यतिवर ने जिन सिद्धान्तों को बड़ी प्रशंसा से अपनाया है समाजों में उनका लेश भी नहीं पाया जाता यदि कोई सज्जन उस उपयोगी अंग का प्रचार करने का साहस करते हैं तब उसके विषय में यह कहा जाता है कि अभी इनके विचार पौराणिकीय गंध से लिप्त चले जाते हैं। अतएव समाज से पृथक् कर देना चाहिये ऐसी दशा में यदि विचार विरोध हो तो क्या आश्चर्य्य है सम्भव है कि ऐसा विचार विरोध इस पुस्तक में भी निकल आये तब तो वह दोष सभा का ही माना जायगा। इत्यादि कारणों से यही अच्छा जाना कि पुस्तक स्वतन्त्र रूप से ही छपना अच्छा है। इससे जो कुछ भी दोष होगा उसका भार ग्रन्थकर्त्ता ही पर रहेगा कर्त्ता ही उसका उत्तरदाता समझा जायगा।

पाठकवर्ग के प्रति एक विशेष सूचना।

महाशयगण आपको विदित हो कि जिस समय से इस पुस्तक के लिखने का आरम्भ किया उसी कालके लगभग मैंने अथर्ववेद भाष्य करने का आरम्भ भी कर दिया था जिसके चार काण्डों का भाष्य मेरे पास उपस्थित है किन्तु धना-

भाव के कारण छपाने का अवसर नहीं मिला कई बार छपाने का साहस भी किया किन्तु साहस निष्फल ही रहा एक बार १५०) के लगभग व्यय करके प्रथम काण्ड का एक अनुवाक छपाया भी था जिसका मूल्य केवल पाँच आने मात्र इसीलिये रक्खा था कि यदि यह थोड़े मूल्य से निकल जाय तब इसके दामों से दूसरा अनुवाक छपादिया जायगा किन्तु यह विचार भी निष्फल ही रहा केवल २०० वा २५० के लगभग प्रतियाँ निकली होंगी फिर यह विचार हुआ कि इसको मासिकरूप से निकालाजाय इस विचार की पूर्त्ति इसलिये नहीं हुई कि ग्राहक महाशय इतने न मिलसके इत्यादि कारणों से यह श्रम पूर्ण करना जनता के हाथ में है यदि अथर्वभाष्य के लिये इतने ग्राहक पर्याप्त हो जांय कि जिससे वह मासिक रूप से निकले तो मासिकरूप से निकाला जायगा यह विचार जनता के सामने इसीलिए रक्खा गया है कि इस विषय में जैसा उचित समझे करें। मुझे बहुतकाल से यह व्यसन है कि जब जिस विषय पर कुछ विचार उठें उनको लिखडाला यह व्यसन मुझे विक्रमी संवत् १६५५ से है एक यज्ञ विषय मेरे पास लिखा लिखाया पड़ा है जिसमें यह दिखाया गया है यज्ञ संसार में किस प्रकार आया दूसरा लेख संस्कारों का है जिसमें यह दिखाया गया है प्रत्येक संस्कार में अमुक काव्य किस कारण से रक्खे गये हैं यदि अपने सब विचार जो इस समय लेखबद्ध उपस्थित हैं प्रेस में देदिये जांय तब कई सहस्र की आवश्यकता है। एक श्राद्ध प्रश्न जो इसी ग्रन्थ में पूर्व था जिसको इस समय इस ग्रन्थ में से निकाल दिया है लिखा लिखाया तयार है। यदि जनता ने इस ग्रन्थ को अपनाया तब तो शनैः २ सब को छपाने का प्रयत्न किया जायगा और नहीं तो सब

रद्दी में ही निवास कर सदा को मृतिका में मिल जांयगे यह सब कालकी गति के गर्भ में है। किन्तु शोक इस बातका है कि जनता उच्च विचारों को देखने की उत्सुक तो है परन्तु व्यवहार में शिथिल देखी जाती है। मोटे विचारों के भजनादि पुस्तक प्रातःकाल से सायङ्काल तक सैकड़ों नहीं सहस्रों बिक-जायें किन्तु विचारयुक्त लेख वाला एक भी बिकना कठिन है। हाँ एक बात तो जनता में देखी जाती है कि यदि कोई आर्य्यसमाज के विरुद्ध कुछ लिखदे तब उसके निवारणार्थ तो आपा धुनडालेगी और जब वह कार्य्य होजाय तब वह भार कर्त्ता के शिर पर छोड़ ऐसी पग फैला कर सोती है कि कुछ सुध नहीं रहती।

पाठकगण को स्मरण होगा कि पिछले वर्षों में एक पुस्तक पं० अखिलानन्द ने लिखा था जिसका नाम था अथर्ववेदालोचन इस पुस्तक के निकलने ही आर्य्यसमाजों में जो कुछ आन्दोलन हुआ वह सबको विदित ही है। इस का सब मर्म्म श्री पं० नरदेव जी को भले प्रकार विदित है कारण कि उक्त पं० जी ने इस के उत्तर लिखने के अर्थ मुझे नियत किया था। जब मैंने इसका उत्तर लिखा और शास्त्रीजी को दे दिया तब उन्होंने समस्त पुस्तक का आधा भाग छपाया न जाने उसका फिर क्या हुआ आधा भाग अभी मेरे ही पास पड़ा है एक बार मैंने श्री पं० घासीराम जी को लिखा था कि मेरे पास अथर्ववेदालोचन का उत्तर अथर्ववेदा-लोचनमीमांसा उपस्थित है सभा छपाये तो लेले इसका उत्तर मिला कि सभा में धन नहीं है जनता की यह गति यही सिद्ध करती है कि जनता सिद्धान्त रूप विचारों को विचार से तो अच्छा समझती है किन्तु प्रचार करने में

शिथिलता करती है। मैंने भी यह समझा कि तू भी अपने विचारों को बाहर निकालकर डालदे समय आने पर जैसा होगा हो ही रहेगा काल का परिवर्त्तन बड़ा बलवान् होता है बुरे हों या भले सभी विचारों को अवसर मिलता है यह इतना लेख भी इसलिये लिख दिया कि जनता जाने तो सही कि मेरी गति क्या है।

॥ इति समाप्तः ॥

लेखक—

हरिशंकर दीक्षित

गौड़ कौशिक वैद्य

सम्प्रति प्रधान आर्यसमाज

नगीना ज़ि० बिजनौर.

विक्रमीय संवत १९८० प्रथम ज्येष्ठकृष्णा ३।

भौमवार तदनुसार १५ मई

सन् १९२३ ई०